# युगन युगन योगी

## सद्गुरु की महायात्रा

अरुंधति सुब्रमण्यम

**अरुंधति सुब्रमण्यम** तीन काव्य पुस्तकों की लेखिका हैं। उनका हाल ही में प्रकाशित एक कविता संग्रह है : *न्यू ऐंड सिलेक्टेड पोयम्स*। उन्होंने *द बुक ऑफ़ बुद्धा* नामक पुस्तक गद्य रूप में लिखी है। एक संपादक के रूप में, उनकी पुस्तकों में धार्मिक यात्राओं का संकलन *पिलग्रिम्स इंडिया* एवं भारतीय कविताओं का संग्रह *अनदर कंट्री* शामिल हैं। उन्होंने समकालीन भारतीय प्रेम कविताओं के संकलन *कन्फ्रंटिंग लव* का सह-संपादन भी किया है। वे स्वयं को 'विस्मयपूर्ण, प्रतिवादी, लेकिन ईशा योग की एक प्रतिबद्ध साधिका' और 'एक भक्त' बताती हैं।

# पुस्तक की प्रशंसा में

'*ऑटोबायोग्राफ़ी ऑफ़ ए योगी* के साथ इस पुस्तक की तुलना अपरिहार्य है, लेकिन यह पुस्तक मुझे कहीं ज़्यादा छूती है, क्योंकि यह हमारे समकालीन माहौल के बारे में चर्चा करती है। हर बीतते पल के साथ यह कहानी परत-दर-परत खुलती जाती है। सुब्रमण्यम भले ही एक शिष्या हों लेकिन वे स्पष्ट तौर पर संदेह जताना नहीं छोड़ती हैं। वे सद्‌गुरु के प्रति आदर रखती हैं लेकिन समानांतर रूप से प्रश्न करना नहीं छोड़ती हैं। यह एक रोचक पुस्तक है जिसे ज़रूर पढ़ा जाना चाहिए।'

**—सतीश पुरोहित, *लाइफ़ पॉज़िटिव***

'उल्लेखनीय रूप से एक करिश्माई व्यक्ति के बारे में प्रभावशाली, अंतर्दृष्टि से पूर्ण और ज़बरदस्त ईमानदारी से भरी पुस्तक। मिथक या मतान्तर से बिलकुल अलग। यह एक ऐसी लेखिका द्वारा लिखी गई है, जो वास्तविकता जानने के लिए पर्याप्त रूप से बुद्धिमान और स्वतंत्र है।'

**—प्रह्लाद कक्कड़, विज्ञापन फ़िल्म निर्माता**

'एक पवित्र पुस्तक। इसमें मुझे उन सवालों के जवाब मिले हैं, जिन्हें मैं वर्षों से तलाश रही थी। अदृश्य प्रश्नचिन्ह विलुप्त हो गए हैं। मैं स्वयं की खोज की रोमांचक यात्रा पर निकलने की उत्तेजना महसूस कर रही हूँ। एक अति उत्तम रचना।'

**—फ़ैज़ा सिन्धी, सी.एन.बी.सी.**

'यह पुस्तक जीवंत है। यह ज़िंदगियों को बदल सकती है।'

**—अनाहिता दि वित्र, शिक्षाविद्**

'एक उल्लेखनीय व्यक्ति की उल्लेखनीय ज़िंदगी के बारे में बेजोड़ बुद्धिमत्ता, अंतर्दृष्टि और ईमानदारी से भरा विवरण। एक शंकालु शिष्या का लेखन, जो सूचनात्मक और आनंददायक है।'

**—इयान ला फ़्रेने, पटकथा लेखक एवं निर्माता**

'मैंने कुछ वर्षों पहले सद्‌गुरु का साक्षात्कार पढ़ा था और उन्हें दूसरा ओशो बनने की कोशिश करने वाला कहकर खारिज कर दिया था। काश! यह पुस्तक तब उपलब्ध होती। इससे वर्षों की निराशाजनक खोज और उसके बाद होने वाली परेशानी से बचा जा सकता था। लेखिका स्वयं जिज्ञासु हैं, और वे ऐसे कई सवालों को मुखर रूप देती हैं, जिन्हें कोई संदेहवादी जिज्ञासु उठा सकता है। जवाब ज्ञानवर्द्धक हैं, और गुरु तथा आध्यात्मिकता के बारे में बनी धारणाओं को चूर-चूर कर देते हैं।'

**—नन्यार, एमेज़ॉन**

‘मेरे मन में इस गुरु-धंधा को लेकर कई मिश्रित भावनाएँ थीं, लेकिन इस पुस्तक के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते मुझ में जग्गी वासुदेव को देखने के लिए आंध्रप्रदेश के चित्तूर ज़िले में स्थित अपने गाँव से कोयम्बतूर की यात्रा करने की प्रेरणा जागी। शानदार ढंग से लिखी गई पुस्तक।’

**—उमा शंकरी, किसान एवं सामाजिक कार्यकर्ता**

‘इस पुस्तक में जिस तहर से ज्ञान, सूक्ष्मता और चतुराई का सद्‌गुरु के उपदेशों की स्पष्टता तथा तर्क के साथ पूरी तरह तालमेल बैठाया गया है - यह बात मुझे बहुत पसंद आई। यह पहली बार है, जब मैंने उनके बारे में जो पढ़ा है वह मेरी समझ से मेल खाता है। यह एक ही समय में विस्मय और संशय पैदा करता है।’

**—पीटर लैन्यन, फ़र्नीचर डिज़ाइनर**

‘यह किताब पढ़ने में एक जासूसी कहानी जैसी है। यह सभी खोजियों को ध्यानलिंग के दर्शन के लिए विमान, ट्रेन, बस या जो भी साधन मिले उससे जाने को प्रेरित करती है। एक जुनूनी और सत्यवादी लेखिका द्वारा लिखी गई यह पुस्तक न केवल सद्‌गुरु के शिष्यों बल्कि सभी अदीक्षितों और जिज्ञासुओं के लिए उपहार है। मुझे महसूस हुआ जैसे मैंने अपने हाथों में जीवन थाम लिया हो।’

**—उर्मिला बैनर्जी, लेखिका**

‘मैंने इस पुस्तक को शुरूआत से लेकर आख़िर तक - प्रत्येक शब्द, वाक्य और पैराग्राफ़ को ध्यानपूर्वक पढ़ा है। यहाँ ऐसा कुछ नहीं है, जिससे मैं पूरे दिल से सहमत न हो सकूँ या जिसके बारे में विवाद करने की ज़रूरत महसूस करूँ... संशय और विश्वास के बीच संतुलन बनाते हुए ख़ूबसूरत ढंग से लिखी गई पुस्तक।’

**—जॉनाथन मॉसे, लेखक और छायाकार**

‘लेखिका न तो अंधविश्वासी हैं और न ही शंकालु, न ही विस्मयाभूत और न ही प्रतिमाभंजक। यह पुस्तक आध्यात्मिक गुरु की गूँज और जीवंतता, शक्ति और अखंडता, दृढ़ता और साहस का विवरण देती है।’

**—ज्योति स्वरूप, शिक्षाविद्**

‘यह पुस्तक मुझे विनम्र बना देती है। सद्‌गुरु के जीवन की प्रचुरता और विशालता की जानकारी इसके ऊर्जा भरे शब्दों से मेरी प्यास और गहरी, मेरी जानने की इच्छा और तीव्र हो जाती है और ज़िंदगी को अधिक जीने के लिए प्रेरित करती है।’

**—शिवानी अग्रवाल, कलाकार**

# युगन युगन योगी

## सद्‌गुरु की महायात्रा

अरुंधति सुब्रमण्यम

मंजुल पब्लिशिंग हाउस

**मंजुल पब्लिशिंग हाउस**

*कॉरपोरेट एवं संपादकीय कार्यालय*

द्वितीय तल, उषा प्रीत कॉम्प्लेक्स, 42 मालवीय नगर, भोपाल-462 003

*विक्रय एवं विपणन कार्यालय*

7/32, भू तल, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002

वेबसाइट : www.manjulindia.com

*वितरण केन्द्र*

अहमदाबाद, बेंगलुरू, भोपाल, कोलकाता, चेन्नई,
हैदराबाद, मुम्बई, नई दिल्ली, पुणे

मूल अंग्रेजी पुस्तक *मोर देन अ लाइफ़ : सद्‌गुरु* का हिन्दी अनुवाद

यह हिन्दी संस्करण 2017 में पहली बार प्रकाशित



हिन्दी अनुवाद : ईशा पब्लिकेशंस

मुद्रण व जिल्दसाज़ी : थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड

# अनुक्रम

# प्रस्तावना

इस पुस्तक में मैंने अपने अनुभवों के आधार पर एक व्यक्ति की जीवन-यात्रा या ठीक-ठीक कहूँ, तो जीवन-यात्राओं का वर्णन किया है। अगर आप तिथियों, समय व घटनाओं की सूची को जीवनी मानते हैं, तो फिर यह जीवनी नहीं है। यह पुस्तक सद्‌गुरु से और उनके जानने वालों से हुई मेरी बातचीत व ईशा योग केंद्र, कोयम्बतूर के संग्रहालय में मिली सामग्री पर आधारित है।

जब हम किसी आध्यात्मिक हस्ती के बारे में चर्चा करते हैं, तो विषय व्यक्तिपरक हो जाता है। मेरी अधिकतर प्रस्तुति सद्‌गुरु के जीवन के शुरुआती वर्षों से जुड़ी अंदरूनी और बाहरी घटनाओं पर आधारित है। इसके बाद मैंने, एक गुरु के रूप में उनके मिशन से जुड़े, उनके इर्दगिर्द रहने वाले लोगों के नज़रिए और राय को आधार बनाया है।

फिर मैंने सोचा कि क्यों ना ख़ुद की यात्रा को भी इस कहानी में प्रासंगिक बना लूँ। ख़ुद को सब कुछ जानने वाला कथाकार मान लेना तो झूठ ही होता ना! इसलिए मुझे यही ठीक लगा कि पाठकों को अपनी वास्तविक स्थिति से (पूर्वाग्रहों और सीमाओं के साथ) परिचित करा दूँ। जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ी, मेरे सामने तसवीर साफ़ होती गई कि किसी तीसरे पक्ष के तौर पर तटस्थ होकर कहानी सुनाना असंभव होगा। इसलिए मैंने कहानी के कुछ मोड़ों पर जानबूझ कर ख़ुद के लिए अपने हिस्से के प्रश्न और प्रति-प्रश्न पूछने के लिए जगह बनाई। मुझे लगता है कि बहुत से पाठकों के मन में भी ऐसे प्रश्न उठते होंगे।

मैं ईशा योग केंद्र से जुड़े उन लोगों की आभारी हूँ, जिन्होंने निजी यादों में बसे अपने जीवन के गहरे अनुभव मेरे साथ बाँटे। उनकी उदारता, उनकी साफ़गोई, उनके अंतर्ज्ञान के बिना यह पुस्तक संभव न होती। सद्‌गुरु को जितने जानने वाले हैं, उनके बारे में उतने ही ख़याल और नज़रिए भी हैं, और इस दौरान मेरी मुलाक़ात ऐसे कई होनहार जीवनीकारों से भी हुई।

इस पुस्तक में, मैंने सद्‌गुरु के जीवन व ईशा के उदय की कहानी को अपनी समझ व नज़रिये के आधार पर अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। आशा है, इस विषय पर कुछ अन्य पुस्तकें भी आएँगी।

मैं ईशा अभिलेखागार से जुड़ी माँ ज्ञाना को विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहूँगी, जिन्होंने अपने शांत स्वभाव और सहज मुस्कान के साथ मेरे कितने ही अनुरोधों को माना और सहयोग दिया।

सबसे बढ़कर मैं सद्‌गुरु की आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस पाण्डुलिपि के लिए पूरी स्वतंत्रता से काम करने की अनुमति दी। उन्होंने मुझे निजी तौर पर अपने बारे में बेबाक जानकारी दी। वे भरपूर जोश और जीवंतता से अपने जीवन को 'खुली' किताब-सा छोड़ देते हैं, ताकि हर तरह की धारणा वाले पाठक अपने निष्कर्षों पर पहुँच सकें।

**— अरुंधति सुब्रमण्यम**

# परिचय

मैं अक्सर सोचती थी कि गुरु कुछ ख़ास तरह के लोगों के लिए ही होते हैं। अपने इस दंभ को मैं बिना किसी हील-हुज्जत के स्वीकार करती हूँ। मेरी सोच थी कि गुरु कुछ ख़ास तरह के सफ़ारी सूट पहनने वाले भारतीय पुरुषों और उनकी आज्ञाकारी विनम्र पत्नियों के लिए होते हैं। मुझे लगता था कि गुरु तो कर्मकांड की बारीकियों और पंडितों के रीति-रिवाज की जानकारी रखने वालों के होते हैं। ऐसे लोग, जिन्हें पवित्र चरणों में सिर झुकाना और सत्संगों की मस्ती में झूमना आता हो।

एक हद तक यह सच भी है। लेकिन मेरा मानना है कि यह कुछ हास्यास्पद-सा है। मुझे यह भी कहना है कि एक अण्वेषक के रूप में (मेरी अपनी पीड़ा और उत्सुकता के साथ), बहुत अध्ययन के बाद मैंने यह जाना था कि गुरु तभी मिलते हैं, जब शिष्य तैयार हो। लेकिन क्या गुरु कभी भी और कहीं भी प्रकट हो सकते हैं? जैसे : किसी लोकल ट्रेन के सबसे ज़्यादा भीड़ भरे डिब्बे में प्रकट होने के कितने संयोग हैं? या किसी कविता पाठ के दौरान? या फिर किसी शहरी बुकस्टॉल, थिएटर या कैफ़े में उनके प्रकट होने के कितने संयोग हैं? और इसके कितने संयोग हो सकते हैं कि कोई गुरु मेरे जैसी भाषा बोले, वह मेरी आंतरिक जटिलता का अनुमान लगा ले - कि मुझे मार्गदर्शन की आवश्यकता भी है और साथ ही मार्गदर्शकों से नफ़रत भी, मुझे ऐसे शब्दों की ज़रूरत है जो पवित्र भी हों और धर्मनिरपेक्ष भी; और अपने शुभचिंतकों को अत्याचारी समझ लेने की मेरी ख़ासियत को आप क्या कहेंगे?

नहीं, गुरु आज की शहरी औरतों के लिए नहीं होते। उनके लिए मनोचिकित्सक होते हैं। किताबें होती हैं, बातचीत होती है। बड़े-बड़े दार्शनिकों के दर्शन बघारने वाले मित्र होते हैं। जबकि गुरुओं का संबंध दूसरे युग और दूसरी दुनिया से होता है। एक बहुत ही साधारण दुनिया, जहाँ मार्गदर्शक और अनुयायियों के बीच का फ़ासला बहुत कम होता है। तब एकमात्र गुरु जिसकी मैं कल्पना कर सकी, वह था सफ़ेद दाढ़ी वाला इंसान, जो किसी

बी ग्रेड की भारतीय पौराणिक फ़िल्म में अपने चेहरे पर संकीर्ण उदारता का भाव लिए नज़र आता है।

वे गुरु अच्छे होते हैं जो अपने पीछे प्रेरक, चुनौती भरे उपदेश छोड़कर दुनिया से जा चुके हैं। यह विरासत सँभालने लायक़ होती है। पर जीवित गुरु मेरी कल्पना से परे थे। अगर दूसरे शब्दों में कहूँ, तो मुझमें उनके लायक़ सामाजिक, सांस्कृतिक या ऐतिहासिक योग्यता नहीं थी।

अगर अभाव को भी योग्यता मान लिया जाए, तो मैं कह सकती हूँ कि मुझमें भी कुछ योग्यता थी। मुझमें बेचैनी और असहजता की अनुभूति थी, मन में कुछ सवाल भी उठते थे, 'इन सबसे क्या होता है' और मेरे अंदर मृत्यु से अचानक भय भी पैदा होता था। ऐसे लम्हे बहुत उबाऊ होते थे, फिर भी उनमें से कुछ को कविता, प्रेम, यौनक्रिया, यात्रा, एक किताब या चॉकलेट के माध्यम से टालना संभव हो सकता था। पर मैं जानती थी कि कुछ ऐसे लम्हे भी हैं, जिनसे निपटा नहीं जा सकता।

और योगी? मैं सोचती थी कि वे किसी पौराणिक प्राणी की तरह होते हैं, जिनके सिर पर सींग होते हों। मैं सोचती थी कि वे हिमालय की कंदराओं में या अनोखे आध्यात्मिक साहित्य (जैसे : परमहंस योगानंद की *'ऑटोबायोग्राफ़ी ऑफ़ ए योगी')* में पाए जाते हैं। मैं तो सिर्फ़ ऐसे योगियों को जानती थी, जो तनाव कम करने या मधुमेह से लड़ने के बारे में सप्ताह में दो दिन प्रवचन देते हैं।

तभी मेरी मुलाक़ात सद्‌गुरु से हुई।

छह साल पहले हुई उस मुलाक़ात के बाद मेरे जीवन में बहुत से बदलाव आए। मैंने जाना कि योगी होते हैं। मेरा मतलब है, असली योगी। मुझे पता चला कि वे केवल शरीर को तोड़मरोड़ कर तमाशा दिखाने वाले नट नहीं होते और न ही उन न्यू एज गुरुओं की तरह होते हैं, जो दावा करते हैं कि उनके पास समय की कसौटी पर खरी उतरने वाली रूपांतरण की आधुनिकतम तकनीक है, जो साधक को आत्म-साक्षात्कार की राह पर आगे बढ़ने के लिए भरपूर शक्ति देगी।

मैंने जाना कि निर्वाण पर बुद्ध, ईसा मसीह, अक्का महादेवी, रामकृष्ण जैसे दिवंगत महापुरुषों का ही केवल अधिकार नहीं है। मैंने जाना कि ऐसे

व्यक्ति का मिलना संभव है, जो पूरे अधिकार के साथ जन्म और मृत्यु से जुड़े मुद्दों पर चर्चा कर सकता है। साथ ही बालसुलभ उत्साह के साथ मोटरसाइकिल, सलमान रुश्दी के उपन्यास या गोल्फ़ जैसे विषयों पर भी बात कर सकता है। एक ऐसा इंसान, जो मन की बात जान ले, निरोग कर दे, बीते और भावी जीवन के बारे में बात करे, फिर भी बौद्धिक, वैज्ञानिक, व्यावहारिक और तार्किक बना रहे। एक ऐसा शख़्स जो कर्म, निर्वाण और आध्यात्मिक परंपराओं के बारे में तर्क-वितर्क कर सके, फिर भी उदार, प्रेरक, समकालीन बना रहे।

*मैंने जाना कि निर्वाण पर बुद्ध, ईसा मसीह, अक्का महादेवी, रामकृष्ण जैसे दिवंगत महापुरुषों का ही केवल अधिकार नहीं है। मैंने जाना कि ऐसे व्यक्ति का मिलना संभव है, जो पूरे अधिकार के साथ जन्म और मृत्यु से जुड़े मुद्दों पर चर्चा कर सकता है।*

एक वेबसाइट पर उन्हें 'आत्मज्ञानी योगी, हमारे समय के महान दिव्यदर्शी, युगद्रष्टा, मानवतावादी एवं प्रमुख आध्यात्मिक नेता' बताया गया है। इन सबके अलावा वे और भी बहुत कुछ हैं। सद्‌गुरु ईशा फ़ाउंडेशन, कोयम्बतूर, के संस्थापक हैं। इसके भारत और विश्व के अन्य देशों में 100 से भी अधिक केंद्र हैं। आज देश के विभिन्न हिस्सों के अलावा अमेरिका, इंग्लैंड, और यूरोप में करोड़ों लोग ईशा योग का अभ्यास कर रहे हैं। अपनी पैनी बुद्धि, हाज़िर जवाबी, आधुनिक शब्द भंडार और अनेक सामाजिक कार्यों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को लेकर एक अंतर्राष्ट्रीय वक्ता के रूप में सद्‌गुरु की माँग बढ़ती जा रही है। वे हर जगह सहज बने रहते हैं, चाहे भारत में हज़ारों साधकों के साथ सत्संग हो, या दावोस में विश्व आर्थिक मंच पर कोई चर्चा हो रही हो। वे तमिल किसानों या क़ैदियों के बीच भी उतने ही सहज देखे जाते हैं, जितने संयुक्त राष्ट्र के सहस्राब्दि शांति शिखर सम्मेलन में।

पर यह तो सिर्फ़ एक व्यक्ति के तौर पर उनका विवरण व चित्रण है। इससे उनकी शख़्सियत के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। वे एक

ऐसे इंसान हैं, जो आध्यात्मिक होकर भी पराभौतिकवादी नहीं है। जो ज्ञानी हैं, केवल विद्वान नहीं। गुरु हैं, कोई गॉडमैन नहीं। वे भरपूर जीवंत और जोशीले इंसान हैं, चेहरे पर चमक ओढ़े संत नहीं।

यह पुस्तक ऐसे शख़्स के बारे में है, जिनसे मिलने की मुझे कभी उम्मीद नहीं थी। एक ऐसा इंसान जिसे मैं गुरु मानती हूँ, क्योंकि उन्हें किसी दूसरी श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। मैंने इस संबंध को एक नाम देने की कोशिश की, तो मित्रता शब्द ही सबसे क़रीब का लगा, हालाँकि यह सिर्फ़ मित्रता भी नहीं है।

मैं आमतौर पर आदर व श्रद्धा जैसी भावनाएँ व्यक्त करने की आदी नहीं हूँ। लंबे अरसे तक, मैं एक व्यथा से पीड़ित रही, जिसे मैं 'अनाधीनता' कहती हूँ, मैं किसी की अधीनता किसी भी रूप में स्वीकार नहीं कर पाती थी। मैं किसी भी तरह के अधिकारियों व द्वारपालों के साथ सहज नहीं हो पाती। मुझे भावुकता, बड़ाई-प्रशंसा करने वाले शब्द, चरणकमल जैसे अलंकारिक भाषा के प्रयोग कभी पसंद नहीं थे। ये सब मुझे सामंती प्रथा लगती थी, जो मुझे ज़रा भी नहीं सुहाती थी। मैं धर्म को तर्क की कसौटी पर परखते हुए बड़ी हुई हूँ। हाँ, कला प्रेम के कारण मेरे तर्क करने की ज़िद में कुछ नरमी तो ज़रूर आई, पर मैं कई मुद्दों पर अभी भी व्यावहारिक सोच की हिमायती हूँ।

इन सभी चीज़ों के बावजूद, मैं यह स्वीकार करती हूँ कि कई मौक़ों पर वे मुझे हैरान कर देते हैं। वे मुझे हैरान करते हैं, इसलिए नहीं कि वे ज्ञानी हैं, बल्कि जिस सहजता के साथ वे ज्ञान को धारण किए हुए हैं। इसलिए नहीं है कि वे करुणामय हैं, सबको समय देते हैं, उनका ख़याल रखते हैं और अपनी ऊर्जा से सराबोर कर देते हैं, बल्कि इसलिए कि बिना किसी को हीनता का अहसास कराए, वे ख़ुद को बाँटते हैं। इसलिए नहीं कि उनकी एक प्रबल उपस्थिति होती है, बल्कि उस उपस्थिति में एक ग़ज़ब का अहसास है, उससे भी बढ़कर जिसे आजकल करिश्मा कहा जाता है। इसलिए नहीं कि गुरु के रूप में उनका सम्मान किया जाता है, बल्कि इसलिए कि किसी तरह की उपाधि व शोहरत में उनकी कभी रुचि नहीं रही। वर्षों से चली आ रही गुरु शब्द से मेरी खीझ अब ग़ायब हो गई।

मैं अब तक जितने लोगों से मिली हूँ, उनमें वे सबसे ज्यादा जीवंत हैं और सबसे अधिक उदार भी। वे पल भर में कठोर से शिष्ट, ऊर्जावान से

निश्चल और भौतिक से सूक्ष्म बन जाने की क्षमता रखते हैं। इन्हीं ख़ूबियों की वजह से वे मेरे लिए सर्वाधिक विलक्षण इंसान हैं।

कविता मेरे लिए बहुत मायने रखती है। मैं उसकी भाषा-शैली और रूप-रचना की क़द्र करती हूँ। यह मुझे विज्ञापनों के भुलावे से सावधान रखती है। हालाँकि, इस मामले में एक बात पूरी ईमानदारी से स्वीकार करना चाहूँगी कि मैं अपने जीवन को दो अलग हिस्सों में बाँट सकती हूँ - 'सद्‌गुरु से पहले' और 'सद्‌गुरु के बाद।' मैं 'बाद' को क्यों महत्त्व देती हूँ - यह बताने से पूर्व 'पहले' के विषय में कुछ बताना सार्थक समझती हूँ।

कई दूसरे लोगों की तरह मैंने भी अपने जीवन का ख़ासा समय जानने की चाहत में बिताया। मेरे अंदर एक मौलिक खोज थी, एक गुरु की खोज। मुझे लगता है कि इसको लेकर मेरी उम्मीदें बहुत ज़्यादा नहीं रही हैं। सब कुछ जानने वाला? नहीं। असल में, मुझे इसका पहले ही भान हो चुका था कि जिनके पास हर सवाल का जवाब होता है, वे ढोंगी होते हैं। भ्रष्टाचार एक कठोर शब्द है, पर इसका अनुभव मुझे सबसे पहले शिक्षकों के बीच ही हुआ। मैं स्कूल और विश्वविद्यालय में ऐसे बहुत शिक्षकों को जानती थी, जो खुलेआम धौंस जमाने वाले थे। टीचर पहले धौंसिये थे, जिनसे मेरा वास्ता पड़ा। बाद में मैंने भी उनसे यह खेल सीख लिया, पर मैंने यह खेल ज़रा होशियारी से खेला। बिना ज़ोर-ज़बरदस्ती के, ख़ुशमिजाज रहकर। मैंने विनम्र होने का दिखावा करना सीख लिया। मेरा सामना दस साल की उम्र में ही कई धौंस दिखाने वाली बहनों से भी हो चुका था, जिनसे मैं लोकतंत्र के सूक्ष्म अर्थों को ख़ूब समझने लगी थी।

मैंने अपनी नौकरी की शुरुआत एक कॉलेज में पढ़ाने से की थी जिससे मैंने दो महीनों में ही पीछा छुड़ा लिया। पर इस नौकरी से मुझे प्रजातंत्र को चलाने की चुनौतियों का अहसास ज़रूर हुआ। मुझे यह भी महसूस हुआ कि एक कक्षा में अपनी कट्टरता का छूत फैलाना बहुत आसान होता है, भले ही आपकी विषय वस्तु ख़ूब उदार ही क्यों न हो। फिर मुझे समझ आया कि ऐसी स्थिति में ख़ुद के बचाव के लिए किसी विद्यार्थी के पास बस, एक ही तरकीब बच जाती है कि वह इसका जवाब अपने ही ढंग से ज़िद व हठपूर्वक

दे। नतीजतन बहुत बाद में जाकर उसे यह अहसास होगा कि उसने जो सीखा है, उसे भुलाने में उसकी बाक़ी सारी ज़िंदगी बीतेगी।

मुझे बहुत थोड़े से शिक्षक मिले, जो वाक़ई अच्छे थे। मैं कह सकती हूँ कि मुझे उनके व्यक्तित्व ने नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व की अनुपस्थिति ने बहुत प्रभावित किया (हालाँकि तब मुझे इस बात का अहसास नहीं था)। उन्होंने मार्गदर्शक व सलाहकार बनने की कभी कोशिश नहीं की। उन्होंने हमारे लिए ऐसी जगह बनाई थी जिसमें पर्याप्त लचीलापन था, जिस पर खड़े होकर हम कोशिश कर सकते थे, हाथ-पैर मार सकते थे, लड़खड़ा सकते थे और ख़ुद को सँभाल भी सकते थे।

मैं आख़िर जानना क्या चाहती थी? वही आम बातें। जन्म, मृत्यु और कष्ट के रहस्यों को, ब्रह्मांड और हर तरह के भय के पीछे के राज़ को। मैं जानना चाहती थी उन सवालों को, जिनकी खोज में बुद्ध, उनसे पहले और उनके बाद का हरेक युवा अपनी यात्रा शुरू कर तब तक चलता रहता है, जब तक कि वह औपचारिक और सांसारिक शिक्षा के भ्रम में नहीं उलझ जाता। मैंने विद्यालय और विश्वविद्यालय में जो भी सीखा, उससे इन सवालों का जवाब नहीं मिला, बल्कि इस शिक्षा ने तो कई और सवाल खड़े कर दिए। इन सवालों ने मुझे लंबे समय तक उलझाए रखा।

पर कहीं न कहीं पुराने सवाल बने रहे और मुझे कुरेदते रहे। शायद इन्हीं सवालों ने अन्य कई लोगों की तरह मुझे भी मानवशास्त्र पढ़ने और आगे चलकर विशेष रूप से साहित्य के अध्ययन के लिए प्रेरित किया। कला ही एक ऐसा क्षेत्र था, जहाँ मुझे जीवन के अर्थ की खोज में भटकना उचित लगा। ऐसा लगता है कि दूसरे हर क्षेत्र में अस्तित्व के बारे में सवाल करना सेक्स से भी अधिक वर्जित है। हैरानी की बात है कि आजकल जहाँ सेक्स चर्चा उदारता को दर्शाती है, वहीं ऐसे अस्तित्वगत सवालों की चर्चा को अपवित्र व नापाक माना जाता है। अस्तित्वगत यात्रा तो कुंभ मेले में राख़ लपेटे साधुओं का (जो अक्सर मेज़ पर सजीं सचित्र पुस्तकों में पाए जाते हैं) या फिर शानदार कारों में सवार रॉलेक्स घड़ी चमकाने वाले महात्माओं का पर्याय बन गई है। अगर अध्यात्म को नए ज़माने का पाखंड माना जा रहा है, तो वह बेवजह नहीं है।

अपनी शिक्षा पूरी होने तक मुझे एहसास हो गया कि साहित्य-समालोचना से मानसिक गुदगुदी तो होती है, पर मेरे पास अब भी ऐसे सवाल थे जिनके

जवाब शिक्षाशास्त्रों में नहीं थे। मैंने महसूस किया कि ज्ञान व दर्शन से जूझने की बजाय रचनात्मक लेखन करना मेरे लिए सहज है और हमेशा मेरे क़रीब रहा है। मेरा अंतर्बोध मुझे बता रहा था कि बड़ी-बड़ी, लुभावनी ज्ञान चर्चाओं पर अविश्वास करना मेरे हित में था, जिसे मैं एक महत्त्वाकांक्षी युवा शिक्षक के तौर पर तेज़ी से अपना रही थी। कम से कम कविता में बौद्धिकता से बढ़कर कुछ और भी है। लगता था कि इसमें मन के लिए एक व्यापक जीवन होता है और सबसे बढ़कर इसमें हकलाने, संदेह करने, ठहरने और ख़ामोश रहने की गुंजाइश होती है।

एक लंबे अरसे तक ऐसा लगा कि यह जुनून हमेशा बना रहेगा। फिर मैंने उस जादू को देखा जहाँ रूपक यथार्थ होकर संपूर्ण हो जाते हैं, अमूर्त और मूर्त, विचार और मनोभाव, पास आकर आपस में जुड़ जाते हैं। मुझे लगा कि इसमें और दर्शन में मेरी रुचि काफ़ी है। एक लेखक की हैसियत से भीड़भाड़ वाले शहर में रचनात्मक मित्रों से घिरकर रहना और कलाओं पर लिखकर रोज़ी कमाना चुनौती भरा जीवन था। मुझे एहसास था कि जितनी रोमांचकारी, जोखिम भरी, संस्कृति-विरोधी ज़िंदगी मैं चाहती थी, वह मुझे मिली है। पर इतना काफ़ी नहीं था।

> *मैं अब तक जितने लोगों से मिली हूँ, उनमें वे सबसे ज्यादा जीवंत हैं और सबसे अधिक उदार भी। वे पल भर में कठोर से शिष्ट, ऊर्जावान से निश्चल और भौतिक से सूक्ष्म बन जाने की क्षमता रखते हैं। इन्हीं ख़ूबियों की वजह से वे मेरे लिए सर्वाधिक विलक्षण इंसान हैं।*

1997 में एक निर्णायक घटना घटी - शांतिपूर्ण ढंग से, पर अपने आप में बेहद महत्त्वपूर्ण। मैं नेपाल में सप्ताह भर की सुकून भरी छुट्टी मना कर दिल्ली से ट्रेन द्वारा लौट रही थी। दुनिया भी अपनी पटरी पर चल रही थी। कुछ भी बिगड़ा नहीं था, सब कुछ सामान्य था। तभी एक नया सिलसिला शुरू हुआ, जो कई दिनों तक चलता रहा।

मैं मरने लगी थी, शारीरिक रूप से नहीं। ना मैं बीमार हो रही थी ना किसी बीमारी से उबर रही थी। मैं मानसिक रूप से भी ठीक थी। मुझे अवसाद भी नहीं था। मैं उदासी व निराशा भरे पलों से पहले भी गुज़र चुकी थी, इसलिए मैं जानती थी कि यह कोई वैसी हालत भी नहीं है। लेकिन मुझे पता था कि मेरी मौत हो रही है। यह स्पष्ट था। कुछ परिचित मददगारों की सहायता से मैं घर लौटी। मैंने अपने पार्टनर और अपनी बिल्लियों को परछाईं की तरह काल्पनिक रूपों में बदलते देखा। उन सभी लम्हों को जिन्हें मैं अनमोल मानती थी - अपनी जीत, उल्लास और यहाँ तक कि आक्रोश को भी - सबको खोखला होते देखा। मैंने ख़ुद को धीरे-धीरे निचुड़कर ना उम्मीद होते देखा। मुझमें अपनी दैनिक ज़िंदगी जीने की लालसा जगी, यहाँ तक कि भूले-बिसरे सदमों के पुराने घावों की ललक भी जगी। मैं हर रात इस उम्मीद के साथ सोती थी कि अगली सुबह एक बदले हालात को लेकर आएगी। लेकिन जागने पर पाती कि मेरा शरीर मुर्दे जैसा अकड़ा पड़ा है। इसके बावजूद मैं इतनी जीवंत थी, जितनी पहले कभी न थी। जो कुछ रहस्यमय हो रहा था, उसे मैं ज़बरदस्त हैरानी से देख रही थी।

सबसे बुरी स्थिति यह थी कि भाषा मेरा साथ छोड़ रही थी। जो चल रहा था, उसे बताने के लिए मैं शब्द तलाशती, तो वे मेरी बुद्धि की पकड़ से दूर छिटक जाते। अपनी सामान्य अवस्था में लौटने की प्रार्थना के अलावा मैं और करती भी तो क्या! पर ऐसा करते हुए मेरे अंदर एक हल्का-सा बोध था कि जो कुछ चल रहा था वह अब तक के मेरे अनुभवों से कहीं अधिक वास्तविक था। साँसों को आते-जाते देखना तब कोई कठिन आध्यात्मिक तप नहीं था। एक लम्हे से दूसरे लम्हे तक का सफ़र तय करने का यही एक रास्ता बचा था।

यह अनुभव स्थायी नहीं रहा। जब मैंने उस हालत से उबरना शुरू किया, तो मेरे अंदर एक तरह की शांति थी। लंबी बीमारी के बाद स्वास्थ्य लाभ जैसी शांति। सब कुछ खो चुकने के बाद यह जानना कि खोने के लिए अब और कुछ नहीं बचा, एक अजीब-सी शांति का एहसास देता है। यह ऐसी ही शांति थी। भले ही मैंने आराम से इस अनुभव को घटते हुए देखा, मैं जानती थी कि इसका याद रहना मेरे लिए महत्त्वपूर्ण था। मौत से इस विचित्र मुठभेड़ के साथ उसकी एक स्पष्ट तसवीर उभरी, जो वाकई महत्त्वपूर्ण थी। पुस्तकें, प्रेम, यात्रा, कला आदि सब बहुत अच्छे थे। पर अब

मैंने जाना कि जो वाक़ई महत्त्वपूर्ण है, वह यही हो सकता है कि मृत्यु के अर्थ को समझा जाए और इस प्रक्रिया में जीवन के अर्थ को भी।

मैं बेशक सब भूल गई। असल में वह अनुभूति मेरी याद की गहराइयों में कहीं गुम हो गई और उसकी तीव्रता को मैंने किसी तरह से संभाल लिया था। यह एहसास समय-समय पर मुझे उकसाते रहा, पर अब मेरा जीवन पहले की तरह सुलझा नहीं रहा। अपनी रोज़ की नाराज़गी, ईर्ष्या, अभाव और दुख के चपेट में आकर मेरा ग़लतियाँ करना जारी रहा। पर इस राह पर एक तरह का बदलाव ज़रूर आया। अब मेरी मूल पहचान एक कवि के बजाय खोजी की, एक जिज्ञासु की हो गई।

इसके बाद मेरे अध्ययन में एक नई उत्तेजना आ गई। दर्शन व पराभौतिकी अब मेरे लिए काफ़ी नहीं रही। अब मुझे योगियों व ज्ञानियों की वाणी की तलाश थी। सूली के संत जान से लेकर रामकृष्ण तक, कृष्णमूर्ति से महर्षि रमण तक, निसर्गदत्त महाराज से लेकर मेइस्टर एक्हार्ट एवं अन्य दूसरे आध्यात्मिक गुरुओं की वाणी की। मुझे कथानक उबाऊ लगने लगे, इसलिए उपन्यासों को मैंने ठंडे बस्ते में डाल दिया। कविता अहम बनी रही, पर इसमें सीमितता का अहसास हुआ। मैं इस नतीजे पर पहुँची कि अगर यह ख़ुद को जानने का एक गहन मार्ग है, तो यह गहनता काफ़ी नहीं है। रिल्ख़, स्टीवन्स और नेरुदा वगैरह एक ख़ास हद तक तो ले जा सकते थे, पर अपनी सभी ख़ूबियों के बावजूद वे भी मेरी तरह खोजी ही थे। मुझे आस्तिकों के अंधविश्वास की ज़रूरत नहीं थी, न ही नास्तिकों की सुविधाजनक अनिश्चितता की। मुझे तलाश थी एक शख़्स की, जो सचमुच जानता हो, जिसमें स्पष्टता हो। मुझे तो तूफ़ानों को झेल चुके किसी अडिग दृष्टा की तलाश थी।

आगे चलकर ऐसी नौबत आई कि अध्ययन भी अधूरा लगने लगा। मैंने महसूस किया कि मुझे एक ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता है, जो मेरे लिए उपलब्ध हो, जिसे पता हो कि यात्रा पर निकलना क्या होता है। कोई संयोगवश यात्रा नहीं, पूरे होशोहवास में शुरू की गई यात्रा - उन मंज़िलों की यात्रा जो मन की समझ की सीमाओं से परे हैं। वह शख़्स, जिसे अंतरतम के आयामों के बारे में किसी कलाकार या वैज्ञानिक से अधिक ज्ञान हो। मुझे मालूम था कि मेरे अनुभव की दर्जनों तार्किक व्याख्याएँ की जा सकती हैं।

पर मैं यह भी जानती थी कि जो घटित हुआ उस रहस्य को न तो तर्क छू सकता था, न कला। तर्क या कला तो शून्य के उस नीरव आयाम में प्रवेश भी नहीं पा सकते थे। केवल कोई दिव्यदर्शी ही उस रहस्यमय आयाम की मेरी समझ के मुताबिक़ व्याख्या कर सकता था। पर क्या मेरी दुनिया में ऐसे शख़्स का अस्तित्व था?

मैं दक्षिण मुंबई में रहने वाले एक स्थानीय वेदांती, जो एक सेवानिवृत्त बैंक कर्मचारी थे, के घर पर नियमित रूप से जाने लगी। उन्होंने बड़े-बड़े दावे नहीं किए, बल्कि उन्होंने अपना एक निजी अनुभव कि 'मैं कर्ता नहीं हूँ', साझा किया जो उन्हें किसी तरह से छू गया था। इन मुलाक़ातों से मुझे बहुत मदद मिली। मैं उस इंसान का बहुत आदर करती थी। उनके नज़रिये में स्पष्टता थी, सरलता थी। लेकिन अब सवाल मेरी अपनी यात्रा का था। उनकी कही हर बात बुद्धि के स्तर पर खरी उतरती थी, पर मैं यह महसूस करने लगी थी कि मेरा ख़ुद का एक विस्तृत आयाम है, जो बुद्धि से बहुत परे है।

आज के कई साधकों की तरह मैंने भी बौद्ध धर्म के प्रति लंबे समय तक लगाव महसूस किया और विपश्यना ध्यान आज़माने का फ़ैसला किया, पर मैंने दस दिनों के मौन कार्यक्रम को तीन दिनों में ही छोड़ दिया। जहाँ आत्म-अवलोकन के लिए साँस पर ध्यान केंद्रित करने की धारणा ठीक लगी, वहीं मैंने महसूस किया कि मैं इस स्तर की तपस्या के लिए तैयार नहीं थी। मैं यह सोचकर लौट आई कि कमी उस कार्यक्रम में नहीं, स्वयं मुझ में थी। जो दिमाग़ में था, वह अभी भी गले नहीं उतरा था।

इसके बाद मैंने प्रसिद्ध क्रिया-योग भी किया। यह भी मददगार सिद्ध हुआ। शरीर में एक नई ऊर्जा का संचार और कुशलता का एहसास हुआ। पर जल्दी ही किसी बंद गली में पहुँचने जैसी स्थिति हो गई। वह मार्गदर्शन नहीं मिला, जिसकी मुझे तलाश थी। यह एक विरोधाभास था। अपने बौद्धिक अड़ियलपन और गुरुगिरी में पूरे अविश्वास के साथ ही मुझे किसी ऐसे इंसान के मार्गदर्शन की भी तलाश थी, जिस पर मैं पूरा विश्वास कर सकूँ।

मैं इसी कशमकश में थी। फिर एक वक़्त आया जब मैंने सोचा कि अब बहुत हो गया। अपनी विपरीत इच्छाओं में मैं ख़ुद को उलझा रही थी। औरों की तरह मैं भी समझती थी कि अगर इसके समाधान हैं, तो वे मेरे अंदर

ही हैं। काश! मेरा अंतर इतना बेचैन और तार-तार न होता, थोड़ा और अधिक शांत होता। अंतर्मन में ताज़गी देने वाले संगीत और एयर फ्रेशनर की मेरी खोज फ़िज़ूल थी। अंतर में कोई सामंजस्य बैठते दिख नहीं रहा था। मैं हालात के मुताबिक़ ख़ुद को ढाल नहीं पाती थी, न ही कभी ऐसा कर सकूँगी। मैं एक विषम चतुर्भुज की तरह थी, बस। अब समय आ गया था अपने विषम कोणों को स्वीकारने और एक ठाँव पाने का।

*1997 में एक निर्णायक घटना घटी - शांतिपूर्ण ढंग से, पर अपने आप में बेहद महत्त्वपूर्ण। मैं मरने लगी थी, शारीरिक रूप से नहीं। ना मैं बीमार हो रही थी ना किसी बीमारी से उबर रही थी। लेकिन मुझे पता था कि मेरी मौत हो रही है।*

तभी मई 2004 में, मैं एक व्याख्यान सुनने गई। व्याख्यान देने वाले इंसान का नाम था - सद्‌गुरु।

उस शाम दक्षिण मुंबई के उस हाल में मैं कोई ख़ास उम्मीद लेकर नहीं गई थी। पर उत्सुक ज़रूर थी। आर्ट्स सेंटर, जहाँ मैं काम करती थी, के अपने साथियों के साथ मैं पहली पंक्ति में बैठी।

कुछ साल पहले मैंने पूरे चेन्नई में इस शख़्स के पोस्टर लगे देखे थे। सफ़ेद दाढ़ी लहराते हुए इस शख़्स को इन पोस्टरों में बड़े दिलकश अंदाज़ में आसमान की ओर निहारते दिखाया गया था। वह असली कम और किताबी ज़्यादा लग रहा था। उसी समय मेरी माँ ने उनकी एक क्लास में भाग लिया था और उन्होंने मुझे बताया कि वह काफ़ी प्रभावित हुई हैं। माँ की सिफ़ारिश पर सद्‌गुरु की पुस्तक *'एनकाउंटर द एनलाइटेंड'* मैंने पढ़ी तो इस नतीजे पर पहुँची कि वे इतने रूखे और दंभी हैं कि मैं उन्हें पसंद नहीं कर सकती। एक समाचारपत्र के रविवारीय में मैंने उनकी तसवीर देखी। जिस अदा से वे मोटरसाइकिल पर सवार थे, उससे मुझे लगा कि उनमें मर्दानगी का गुरूर कुछ ज़्यादा ही है। मैंने ख़ुद से कहा कि मेरे आध्यात्मिक गुरु में

कुछ स्त्रियों वाले गुण तो होने ही चाहिए, भले ही वह संयोगवश पुरुष रूप में जन्मा हो।

उस शाम की वार्ता के बारे में मुझे अधिक याद नहीं, पर मैं मंत्रमुग्ध थी। उनकी बातें बड़ी अर्थपूर्ण थीं। उसका सीधा संबंध मेरे वर्तमान से था, जहाँ मैं थी। उनकी संवाद शैली से मैं और भी प्रभावित हुई। उसमें न तो व्यर्थ की औपचारिकता व दंभ था और न ही आध्यात्मिक ग्रंथों के प्रसंग थे। उनकी शैली सहज-सरल होने के साथ-साथ विनोदप्रिय और भावुकताहीन भी थी। यह स्पष्ट था कि वक्ता किसी पंथ का अनुयायी न था। न ही उसे श्रद्धा या अनुयायियों की चाह थी।

माइक के सामने बड़ी शालीनता से बैठे उस शख़्स ने मुझे बेहद प्रभावित किया। उनकी वाणी में दृढ़ स्पष्टवादिता थी। उनके व्यक्तित्व में मज़ाक के रूखेपन के साथ मानवीय सहानुभूति का जो तालमेल था, उससे मैं हतप्रभ रह गई थी। उनके बारे में कुछ बातें मुझे चिर-परिचित सी लगीं। मुझे याद है, तब मैं सोचने लगी थी कि उनसे जुड़ सकती हूँ। मुझे पता है कि वे कहाँ से आते हैं। वे मेरे मित्र भी हो सकते हैं। एक ऐसा मित्र जिससे मैं बहुत कुछ सीख सकती हूँ। शायद इसी कारण वे शिक्षक भी हो सकते हैं। मेरे प्रिय शिक्षक, जो समानतावाद को समझते हैं, जो दंभी नहीं लगते और सबसे बड़ी बात यह कि मैं उन पर विश्वास कर सकती हूँ।

उनके बात करने का प्रजातांत्रिक रवैया, आध्यात्मिकता को गूढ़ बनाने से उनका इंकार, सांसारिक और आध्यात्मिक, अपवित्र और पवित्र में किसी तरह का कोई भेद न करना, मुझे ख़ासतौर पर पसंद आया। 'हर इंसान आध्यात्मिक होता है। आप पूरे होशो हवास में आध्यात्मिक हैं या अनजाने में - बस, इतना ही विकल्प है। सवाल यह है कि आप अपनी आँखें खोलकर चलना चाहते हैं या मूँदकर?'

उनका एक ख़ास अंदाज़ था, वे हमारा ध्यान दैनिक जीवन में हो रहे चमत्कार की ओर खींच रहे थे। उदाहरण के लिए वह प्रक्रिया, जिसके जरिए कोई आदमी केला खाकर उसे अपना ख़ुद का हिस्सा बना लेता है। उन्होंने कहा कि यह चमत्कार अनजाने में ही हो रहा है। अगर आप सचेत होकर केले को इंसान बना लेते हैं, तो आप ख़ुद सृष्टिकर्ता बन जाते हैं। वे हमें ऐसी राह पर आमंत्रित कर रहे थे, जो विवशता से विकल्प की ओर, आदतन

से सचेतन की ओर और बेख़बरी से जागरूकता की ओर ले जाती है। यह वाक़ई रोचक था। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि यह साफ़-साफ़ समझ आ रहा था कि वे जो कुछ कह रहे थे, उन्हें उसका ज्ञान था।

मुझे सिस्टर निवेदिता द्वारा लिखित पंक्तियाँ याद आईं, जो उन्होंने स्वामी विवेकानंद से हुई अपनी पहली मुलाक़ात के बारे में लिखी थीं, "... मैंने देखा कि यद्यपि वे एक ख़ास विचारधारा पेश करते हैं, पर अगर उन्हें लगे कि सत्य का मार्ग कहीं और जाता है, तो वे पल भर में ही उस विचारधारा से ख़ुद को अलग कर सकते हैं।"

उनका मतलब क्या था, यह मैं समझती थी। मुझे पता था कि अगर सच्चाई की सुगंध आए, तो अपने सारे अविश्वास के बावजूद मैं उसे पहचान सकती थी। मैंने उस सप्ताह के अंत में होने वाले दो दिन के इनर इंजीनियरिंग प्रोग्राम में अपना नामांकन करा लिया।

कार्यक्रम के अंत में मैं इस अनोखे शख़्स के पास टहलती हुई पहुँची, जिसके सिर पर पगड़ी, कंधों पर शॉल, लहराती दाढ़ी, लग रहा था जैसे समय की घुमड़ती धुन्ध से बाहर निकलकर आया हो। फिर मैंने कुछ अटपटे ढंग से उनसे पूछा कि क्या हम कॉफ़ी पर मिल सकते हैं? उन्होंने अपने उत्सुकता भरे अंदाज़ में मेरी तरफ़ देखा और कहा कि मैं सितंबर में आश्रम आकर उनसे मिलूँ।

उस शाम मैंने अपनी माँ को फ़ोन पर बताया, 'संभवतः मुझे "गुरु" मिल गए हैं।' शब्द का रूप अभी भी बदला हुआ था, रवैए में अभी भी सतर्कता थी।

चार महीने बाद मैं आश्रम पहुँची। कॉफ़ी तो नहीं हुई, बातचीत हुई (हालाँकि उन्होंने मुझे बताया कि वे कैफ़ीन रहित कॉफ़ी पसंद करते हैं।) अगले कुछ महीनों में बातचीत गहराती गई। पाँच साल और कई कार्यक्रमों के बाद वह और गहरी हो गई।

उन्हें सद्‌गुरु कहते हुए मुझे अभी भी परेशानी होती है। औपचारिक संबोधन मुझे असहज कर देते हैं। पर मेरे मन में उनके गुरु होने के बारे में ज़रा भी संदेह नहीं है। इतना काफ़ी है, उस शब्द की मुझे अब बहुत चिंता नहीं रही। मुझे यह एक विवरण से कुछ अधिक नहीं लगता। एक ऐसे शख़्स के बारे में यह शब्द पूरा नहीं लगता, जिसे आंतरिक जीवन की

कार्यप्रणाली का गहन ज्ञान हो और जो जानता हो कि कैसे और कब दूसरों के आंतरिक जीवन में ज़िम्मेदारी पूर्वक दख़ल देना है और आवश्यक काँट-छाँट करना है। उनका ज्ञान सैद्धांतिक नहीं है। सद्गुरु यह स्वीकारने में जरा भी नहीं हिचकिचाते कि आध्यात्मिक तौर पर वे एक अशिक्षित गुरु हैं, जिन्होंने योग पर कोई भी ग्रंथ पूरी तरह नहीं पढ़ा। अपने अंतर्ज्ञान के लिए उनको किसी ग्रंथ की प्रामाणिकता की ज़रूरत नहीं है। उनका कहना है कि उनके आंतरिक अनुभव ने कभी उनको निराश नहीं किया।

मैं हमेशा से ही शिष्यों के लक्षण माने जाने वाले समर्पण, श्रद्धा-भक्ति, जोश व भावुकता जैसे गुणों के प्रति असहज रही हूँ। पर मैंने यह भी महसूस किया है कि कुछ हद तक ये सच्ची भावना से प्रेरित होते हैं। ख़ुद गुरु ने कभी लचर भक्ति की माँग नहीं की। वे तो सशक्तिकरण की राह दिखाते हैं। यह राह समय की कसौटी पर सदा ख़री उतरी है। वे समय-समय पर इसे ही दोहराते हैं कि यही तुम्हें तुम्हारे भाग्य का स्वामी बना सकता है। एक बार जब मैंने उनसे पूछा कि वे आत्म-अवहेलना वाली हरकतों को क्यों सहन करते हैं, जैसे कि कुछ साधक पादुकाएँ पहनने में उनकी मदद करते हैं। उन्होंने सहज जवाब दिया, 'केवल देना और ग्रहण न करना अश्लीलता है। इस संस्कृति में, कुछ लोगों के लिए ख़ुद को प्रकट करने का यह एक ख़ास जरिया है। उनके अंदर कृतज्ञता का एक बहुत गहरा भाव है, जिसे वे प्रकट करना चाहते हैं। देने वाले के लिए यह बहुत मायने रखता है, इसलिए मैं उनसे यह छीनना नहीं चाहता।'

ईशा में भावुकता को बहुत महत्त्व नहीं दिया जाता, बल्कि वहाँ भावनाओं के लचीलेपन पर जोर दिया जाता है। गुरु के प्रति प्रेम स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है और यह हमेशा से आध्यात्मिक रूपांतरण का प्रबल स्रोत भी रहा है, पर ईशा योग के अभ्यासियों को भक्त के बजाय ध्यानी या साधक कहा जाना बेवजह नहीं है। सद्गुरु कई बार गुरु के प्रति शिष्यों के प्रबल भावों के संदर्भ में तटस्थ अंदाज़ में बोलते हैं, 'यह एक पौधे की तरह है, जो भावनात्मक व मानसिक रूप से पानी की इच्छा नहीं करता। अगर कहीं पानी की एक बूँद भी है, तो जड़ वहाँ तक अपनी पहुँच बना लेती है। उसमें भावुकता नहीं, मन भी नहीं, बल्कि ऊर्जा के स्तर पर एक गहरी तड़प होती है। उसमें एक अलग ही क़िस्म की बुद्धि होती है... यह सिर्फ़ जीवन की तड़प है, ख़ुद जीवन के लिए।'

साधना का एक मार्ग है - योग। पर सद्गुरु कहते हैं कि किसी जीवंत गुरु के होने पर बहुत कुछ हो सकता है। इसके लिए सही स्तर की ग्रहणशीलता की ज़रूरत है। उनकी मौजूदगी में बैठे लोगों में रूपांतरण की साक्षी होने और उसका ख़ुद अनुभव करने के बाद, अब मुझे उनकी योग्यता पर संदेह नहीं रहा। एक बार उन्होंने कहा कि गुरु रास्ते का जीता-जागता मानचित्र होता है। उसी छवि से मैं ख़ुद को ज़्यादा जोड़ पाती हूँ। वे कोई उत्तराधिकार प्राप्त मसीहा नहीं हैं, न ही उनके पास किसी आध्यात्मिक मंडल का पहचान-पत्र है। वे तो एक मानचित्र हैं, एक मार्ग हैं, जो अपनी मंज़िल पाने को इच्छुक लाखों यात्रियों के पैरों तले घिसने को तैयार रहते हैं।

*मैंने महसूस किया कि मुझे एक ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता है, जो मेरे लिए उपलब्ध हो, जिसे पता हो कि यात्रा पर निकलना क्या होता है। कोई संयोगवश यात्रा नहीं, पूरे होशोहवास में शुरू की गई यात्रा - उन मंज़िलों की यात्रा जो मन की समझ की सीमाओं से परे हैं।*

मैं अब भी ख़ुद को ऐसे चतुर्भुज की तरह महसूस करती हूँ जिसके सारे कोण अलग हों, विषम हों। लेकिन अब कोणों की विषमता मुझे कम परेशान करती है। कुछ विषमताओं से तो छुटकारा भी मिल गया है। अब अधिक व्यापकता महसूस होती है, और दुनिया के दूसरे विषम चतुर्भुजों के लिए संभावना भी दिखती है। मुझे दिमाग़ के सीमित दायरे से निकलकर दिल के अधिक व्यापक ठिकाने की ओर यात्रा शुरू करने की शक्ति का एहसास होता है। हृदय क्षेत्र अधिक उन्मुक्त और कम विवेचनीय है। (हालाँकि ख़ुद सद्गुरु मेरी इस दिमाग़ से दिल की यात्रा वाली बात को घिसी-पिटी कहकर ख़ारिज कर देते हैं।) अभी तो मैं उसके कहीं आसपास भी नहीं हूँ। लेकिन उस दिशा में कोशिश करना सार्थक लगता है। यह ठिकाना शायद ख़तरनाक हो, पर अधिक प्रामाणिक महसूस होता है। अभी भी दिमाग़ ही वह स्थान है, जहाँ मैं अपना अधिकतर समय बिताती हूँ, लेकिन मुझे लगता है कि अब इसमें पहले से कम स्वार्थ निहित हैं।

ग़लतफ़हमियाँ अभी भी हैं, जो मुझमें उठती हैं, गिरती हैं और पुनः उठ जाती हैं। उदाहरण के लिए संस्थानों वाली आध्यात्मिकता से मैं असहज हो जाती हूँ। संस्थान के स्वयंसेवी जन, जब नव धर्मांतरित लोगों जैसा उत्साह का दिखावा करते हैं, तो मुझे असहजता होती है। बाज़ारीकरण के तौर-तरीक़ों (हालाँकि यह ईशा में दूसरी संस्थानों के मुक़ाबले बहुत कम हैं) से भी मुझे असहजता होती है।

पर हर बार जब मैं सद्‌गुरु से मिलती हूँ, तो मेरी यह दोहरी मानसिकता ग़ायब हो जाती है। हालाँकि ईशा की नई गतिविधियाँ और ईशा साधक, जिनमें मैं भी शामिल हूँ, विकास की एक प्रक्रिया में हैं, लेकिन सद्‌गुरु की मौलिकता बार-बार मेरे दिल को छू जाती है। यहाँ कुछ बनावटी, दिलासा देने वाली पिटी-पिटाई उक्तियाँ नहीं हैं। यह जनमानस को लुभाने वाली आध्यात्मिकता भी नहीं है। उनकी मौजूदगी में ऐसा उमंग और निश्चलता है, जिस पर मुझे सहज भरोसा हो जाता है।

एक बार उन्होंने मुझे बताया था, 'यह एकदम ग़लत धारणा है कि कुछ करने के लिए जोश और उत्तेजना की आवश्यकता होती है। क्षुद्र चीज़ें ही कुछ करने के लिए उत्तेजित हो उठती हैं। मैं तो एक ठंडी आग हूँ। अस्तित्व भी इसी तरह काम करता है। यह ठंडा है, पर रचनात्मक। अस्तित्व में पाई जाने वाली महानतम चीज़ें कभी भी उत्तेजित नहीं होतीं। आप सृजनकर्ता का ही उदाहरण ले लें। आप जन्मते हैं, मरते हैं, वह हर हाल में ठीक ही रहता है।'

हालाँकि, उनसे बातचीत के दौरान मैं कभी शांत नहीं रह पाती, उत्तेजित हो जाती हूँ और मुझे पता है कि दूसरे भी ऐसा ही महसूस करते हैं। उनकी तीव्रता बड़ी संक्रामक लगती है। किसी ने एक बार कहा था, 'वे फ़ास्ट-फ़ार्वर्ड गुरु हैं।' वे मुझे एक पावर हाउस की तरह लगते हैं, जिनका किसी शक्ति स्रोत से सीधा संपर्क है, और उसमें प्लग-इन करना बहुत सार्थक प्रतीत होता है।

क्या मैं यह मानती हूँ कि गुरुओं का ईश्वर के साथ हॉट लाइन पर सीधा संपर्क होता है? बिलकुल नहीं। यह तो काफ़ी हास्यास्पद लगता है कि आध्यात्मिक जीवन कुछ चुनिंदा लोगों के लिए आरक्षित है। स्वयं सद्‌गुरु ने भी कभी ऐसा कोई दावा नहीं किया, बल्कि वे हमेशा इससे विपरीत बात कहते आए हैं। ऐसे में गुरु से जुड़ने की आवश्यकता ही कहाँ है? मैंने कई

बार 'सद्‌गुरु संक्रमण' के विश्लेषण की कोशिश की है। सद्‌गुरु के आसपास होने पर मुझे और दूसरे लोगों को भरपूर जीवंतता की तीव्र अनुभूति होती है, इसकी वजह क्या है?

मुझे ताजुब्ब होता है, क्या यह उनका व्यक्तित्व है? पर जिन 'व्यक्तित्वों' से मैं परिचित रही हूँ, उनसे उनके अहं की बू आती है और कुछ समय के बाद मैं उनसे ऊब जाती हूँ। तो क्या यह उनकी बुद्धि है? पर मैं तो उनसे बड़े बुद्धिजीवियों से मिल चुकी हूँ और कदाचित ऐसे और कई लोगों से मिलना चाहती रही। अंत में मैं इस नतीजे पर पहुँची कि यह और कुछ नहीं, बल्कि उनकी उपस्थिति है। सहज, प्रबल, निर्बाध और संपूर्णता का एहसास कराने वाली उपस्थिति। जब हम अपने सभी झूठे आवरणों, काम-काज के झमेलों, असुरक्षा के डर से छुटकारा पा लेते हैं, तब हमें इस विराट उपस्थिति का एहसास होता है।

महर्षि रमण के एक विदेशी शिष्य फ्रेंक हंफ्री ने कभी उनके बारे में कहा था, 'वह शरीर पूरी प्रखरता में ईश्वर का तेज बिखेर रहा था।' इसका क्या अर्थ है, यक़ीनन मुझे नहीं मालूम था, किंतु वर्षों पहले जब मैंने इसे पढ़ा, तो यह मुझे सच लगा। मुझे अनुमान था कि अगर कभी मैंने भी वैसा अद्‌भुत दृश्य देखा, तो उसे पहचान लूँगी और मैंने पहचाना भी। असल में ऐसे अवसरों पर स्वाभाविक बुद्धि ही काम आती है। इससे पहले कि आप समझें, आप जान लेते हैं कि आपको असली चीज़ मिल गई है।

यह पुस्तक अपने कुछ आश्चर्य व विस्मय भाव को साझा करने की कोशिश है, जो पिछले कुछ वर्षों के दौरान सद्‌गुरु के सान्निध्य में दिखता रहा। दरअसल, यह एक कोशिश है बेहद असाधारण इंसान की कहानी सुनाने की।

ऐसा बहुत कुछ है, जिसने उन्हें असाधारण बनाया है। उदाहरण के तौर पर उनकी जीवन-गाथा को ही लें, यह अक्सर विश्वास की हदों को पार कर जाती है। (अगर विश्वास होता है तो सिर्फ़ इसलिए कि सद्‌गुरु स्वयं इस बात की परवाह नहीं करते। वे अक्सर कहा करते हैं, 'इस पर विश्वास करना मूर्खता होगी, पर विश्वास नहीं करना उससे भी बड़ी मूर्खता होगी।') उन्होंने ऊर्जा का एक अनूठा व शक्तिशाली रूप - ध्यानलिंग बनाया है, जो

हर रोज़ दुनियाभर के हज़ारों साधकों के आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। उन्होंने जीवन में रूपांतरण लाने वाले ध्यान कार्यक्रम बनाए हैं, जो दुनियाभर के खोजियों के जीवन में हलचल पैदा करते हैं, उन्हें बिखेरते हैं, एक गहराई तक ले जाते हैं और उन्हें गहराई में छूकर जीवन में परिवर्तन लाते हैं।

अन्य कई लोगों की तरह मेरे लिए भी वे गुरु हैं। पर मुझ समेत उन सभी लोगों के लिए जिनके दिल में गुरु शब्द के प्रति एक तरह का संशय है, यह पुस्तक एक लुभावने, समकालीन, आध्यात्मिक एवं जो सबसे महत्त्वपूर्ण है - एक निहायत मानवीय पुरुष का चित्रण प्रस्तुत करेगी।

एक दिन किसी ने मुझ से पूछा, 'गुरु मिलने का वास्तव में अर्थ क्या होता है? मैंने कहा, 'मैं अभी भी जानने की कोशिश में हूँ।' पर यह खोज दार्शनिक कामू के इस कथन जैसी है कि अर्थ की खोज कर रहे मनुष्य के शोर-शराबे के उत्तर में विश्व की ख़ामोशी अनुचित नहीं है।

मैंने एक और खोज की है कि व्यक्ति के जीवन में गुरु का स्थान किसी अधिकारी की तरह नहीं होना चाहिए। मैं जानती हूँ कि आज भी कई लोग गुरु-शिष्य संबंध को मध्यकालीन युग की सामंतशाही जैसा समझते हैं। हालाँकि गुरु के प्रति आदर और प्रेम रखने से स्वाभाविक रूप से एक विश्वास पैदा होता है, जो सीखने की प्रक्रिया के लिए महत्त्वपूर्ण है, पर मेरे लिए यह जानना बड़ा सुखद रहा कि शिष्य गुरु के प्रति थोड़ा भी सम्मान खोए बिना, उनसे अनौपचारिक संबंध रख सकता है।

क्या मैं उनकी हर बात से सहमत होती हूँ? आध्यात्मिक मुद्दों पर तो मैं कुतर्क नहीं करती, पर अन्य मुद्दों पर उन्हें छेड़ने में मुझे मज़ा आता है। कई बार वे मुझे, 'ठेठ मुंबइया बुद्धिजीवी' या फिर 'कला की दुनिया का आदर्शवादी' कहते हैं। मेरे ख़याल में इससे उनका मतलब नीरस उदारवादिता से होता है। कभी-कभी तो वे इस बात को इतने संजीदाढंग से भी नहीं कहते। मुझे लगता है कि मेरा व्यवहार कुछ कम रूखा रहा है, हालाँकि मैंने उन्हें कई बार यहाँ तक कहा कि वे परिवर्तनशील और निरंकुश हैं। मुझे तर्क अच्छे लगते हैं। मैं ऐसा मार्गदर्शक पाकर कृतज्ञ हूँ, जो बड़ी ही निश्चिन्तता से मतभेद की अनुमति भी देते हैं। मैं जानती हूँ कि बिना आलोचना के चुपचाप हर बात मान लेना मेरे लिए सहज नहीं है और मैं कितनी भी कोशिश क्यों न करूँ, मस्ती में ख़ुशी से झूमने वालों में कभी शामिल नहीं हो सकती थी।

एक बार मैंने सद्गुरु से *बाइबल* की इस गूढ़ पंक्ति के बारे में पूछा, 'किंतु बहुतों को बुलाया जाता है और बहुत कम चुने जाते हैं।' मेरा तर्क था कि यह तो अनुचित और ग़ैर-प्रजातांत्रिक है। आध्यात्मिक ज्ञान कुछ लोगों तक सीमित क्यों रहना चाहिए? हर व्यक्ति को क्यों नहीं चुना जा सकता? मुझे उनका उत्तर स्पष्ट रूप से याद है। जवाब में उन्होंने कहा था, 'ऐसा कहना ज़्यादा ठीक होगा कि बहुत से लोग बुलाए जाते हैं, लेकिन बहुत कम लोग चुनते हैं।'

*सद्गुरु यह स्वीकारने में जरा भी नहीं हिचकिचाते कि आध्यात्मिक तौर पर वे एक अशिक्षित गुरु हैं, जिन्होंने योग पर कोई भी ग्रंथ पूरी तरह नहीं पढ़ा। उनका कहना है कि उनके आंतरिक अनुभव ने कभी उनको निराश नहीं किया।*

जो लोग गुरुओं को करोड़ों मूर्ख लोगों पर शासन करने वाले समझते हैं, उन्हें यह बताना उचित होगा कि सद्गुरु पूर्व की कई आध्यात्मिक हस्तियों की तरह आपसे अनुयायी बनने को नहीं कहते। वे आपसे प्रतीक्षा करने के लिए नहीं कहते। वे आपसे अपनी तार्किकता छोड़ने के लिए नहीं कहते। वे आज्ञापालन के लिए नहीं कहते। वे आपको मानने या विश्वास करने के लिए भी नहीं कहते। वे बड़ी सहजता से आपको चुनने के लिए कहते हैं।

रास्ते का जीता-जागता मानचित्र अभी भी उपलब्ध है और चुनाव के विकल्प भी मौजूद हैं।

1

# जागरूकता और दीवानगी

## यात्रा की शुरुआत

जब आप कोयम्बतूर एयरपोर्ट के 'बैगेज क्लेम' से अपना सामान लेकर बाहर का रुख़ करते हैं, तो आपको अपने बाईं ओर एक टैक्सी काउंटर नज़र आएगा जिसकी लिस्ट पर सबसे ऊपर 'ईशा' लिखा है। चालीस किलोमीटर की इस यात्रा के लिए आप वहाँ से टैक्सी ले सकते हैं। आप डेढ़ घण्टे में अपनी मंज़िल पर पहुँच जाएँगे। वैसे कोयम्बतूर के कुछ तेज़तर्रार टैक्सी वाले आपको इससे भी कम समय में वहाँ पहुँचा सकते हैं।

शुरुआत में आपकी टैक्सी शहर की भीड़भाड़ वाली सड़कों से गुज़रती है, जहाँ दुकानों, साइकल सवारों के साथ-साथ लग्ज़री कारों के बीच सड़क पर टहलती गायें भी हैं। दक्षिण का एक प्रमुख औद्योगिक नगर होने के नाते कोयम्बतूर एक समृद्ध शहर है। यहाँ का माहौल एक कारोबारी शहर का एहसास कराता है। नोय्यल नदी के तट पर बसा यह शहर उत्तर और पश्चिम की तरफ़ से पहाड़ों से घिरा है। हालाँकि सुहाने मौसम वाले इस शहर में भीड़भाड़ लगातार बढ़ रही है, फिर भी इसका अपना एक ख़ास आकर्षण है।

इसके बाद आपकी टैक्सी शहर की सड़कों से गुज़रती हुई पश्चिम की तरफ़ बढ़ती है। आप देखेंगे कि अब दक्षिण भारत का ग्रामीण इलाक़ा शुरू हो गया है। आप गाँवों के बीच से गुज़र रहे हैं, जहाँ रास्ता पहले के मुक़ाबले सँकरा और आसपास का सारा इलाक़ा हरा-भरा होता जा रहा है। तभी अचानक आपको 'श्वेत' या 'रुपहले' पहाड़ कहलाने वाली वेलियंगिरि-पर्वतमाला दिखाई देने लगती है। घने जंगलों से ढँके ये रहस्यमय पहाड़ बादलों को छूते हुए से लगते हैं। अचानक चारों ओर ख़ामोशी छा जाती है।

कार का इंजिन अब ज़्यादा शोर करता महसूस होता है। इस ख़ामोशी में आप स्कूल से घर लौटते किसी बच्चे के चिल्लाने, बकरी के मिमियाने, पास से गुज़रती कार के हॉर्न की आवाज़ साफ़ सुन सकते हैं। यह नीरवता पहाड़ी हवा की जंगली ख़ुशबू की तरह अपना एहसास कराती रहती है। तभी एक बोर्ड बताता है कि अब आप अपनी मंज़िल से कुछ ही किलोमीटर दूर हैं।

*अगर आप भारत के दूसरे आश्रमों में जा चुके हैं, तो आप उनकी और इस आश्रम की बनावट के फ़र्क़ पर ग़ौर किए बिना नहीं रह पाएँगे। यहाँ संयम है, पर कोई शुष्क व्यावहारिकता नहीं। यहाँ लकड़ी और पत्थर का इस्तेमाल बड़ी ख़ूबसूरती से किया गया है। इनकी नक्काशी में पूरी सावधानी और बारीकी बरती गई है।*

कार एक धूलभरे सँकरे रास्ते में मुड़ जाती है। यहाँ यह हिचकोले खाती हुई धीमी रफ़्तार से चलती है। लगातार बारिश के कारण कच्ची सड़क पर बड़े-बड़े गड्ढे और कीचड़ सूखने की वजह से खाँचे बन गए हैं। टैक्सी ड्राइवर बड़े इत्मीनान से धीरे-धीरे सीटी बजाता रहता है। कार के म्यूज़िक सिस्टम पर तमिल फ़िल्मों का भक्ति संगीत पूरे जोश से बजता रहता है। आख़िरकार आप अपनी मंज़िल पर पहुँच जाते हैं।

एक सुरक्षा गार्ड आने का मक़सद पूछते हुए आपको 'वेलकम सेंटर' की तरफ़ भेजता है। अगर आप भारत के दूसरे आश्रमों में जा चुके हैं, तो आप उनकी और इस आश्रम की बनावट के फ़र्क़ पर ग़ौर किए बिना नहीं रह पाएँगे। यहाँ संयम है, पर कोई शुष्क व्यावहारिकता नहीं। यहाँ लकड़ी और पत्थर का इस्तेमाल बड़ी ख़ूबसूरती से किया गया है। इनकी नक्काशी में पूरी सावधानी और बारीकी बरती गई है। आप देख सकते हैं कि यहाँ एक-एक चट्टान, झाड़ी और पेड़ को कितने सलीके से अपनी जगह पर लगाया गया है। यहाँ सब कुछ अपने कुदरती रूप में है, जिसमें कोई काट-छाँट नहीं की गई है। लेकिन इस सहज सरलता में भी काफ़ी सावधानी दिखती है। हर

मोड़ पर दिखने वाले पहाड़ आपको याद दिलाते हैं कि आप एक घने बीहड़ जंगल के कितने निकट हैं।

अगर आपने अपनी कॉटेज आरक्षित करा रखी है, तो शायद सबसे पहले आप वहाँ जाकर अपना सामान रखकर सफ़र की थकान मिटाना चाहेंगे। पर हो सकता है कि आप अधीर हों, और बहुतेरों की तरह आपकी यात्रा का मक़सद भी वही रहस्यमय मंदिर देखना हो, जिसके बारे में आपने इतना कुछ सुन रखा है। हो सकता है, आपके मित्रों ने आपको इसके बारे में बताया हो। शायद यह आपको इंटरनेट पर अनायास ही मिल गया हो। शायद बहुतेरों की तरह आपने भी इसे पहले कभी सपने में देखा हो। लेकिन आपको एहसास है कि आपको जल्दी से जल्दी वहाँ जाना है।

अपने लक्ष्य तक पहुँचने से पहले आपको एक परिक्रमा करनी पड़ती है। आप अपने जूते एक स्टाल पर रख देते हैं। तभी आपकी मुलाक़ात एक स्वयंसेवी से होती है। वह आपको आगे होने वाले अनुभव के महत्त्व के बारे में बताता है। फिर आप मंदिर के परिसर में घूमना शुरू करते हैं। अगर आपकी इच्छा हो, तो मंदिर में प्रवेश करने से पहले आप पवित्र कुण्ड में डुबकी लगाने के लिए रुक सकते हैं। आपको बताया जाता है कि यह केवल रस्मी शुद्धिकरण नहीं है। तीर्थ-कुण्ड ज़मीन से 35 फ़ुट नीचे एक तालाब है, जिसके पानी को ठोस किए गए पारे के लिंग से (जो रसविद्या की योगिक प्रक्रिया से सम्भव हुआ है) ऊर्जावान बनाया गया है। इसमें डुबकी लगाने से आपको एक अनोखी मानसिक व शारीरिक ताजगी के साथ-साथ ग्रहणशीलता की उच्च अवस्था का भी एहसास होता है। बाहर आने पर आप सिहरन से भरे हुए और ऊर्जावान महसूस करते हैं। लेकिन अगर इसे लेकर आपके मन में शक है, तो आप इसे ठण्डे पानी में नहाने के असर से ज़्यादा कुछ न मानेंगे। फिर भी यहाँ का वातावरण आकर्षक है। छत व चारों तरफ़ की दीवारों पर प्राकृतिक रंगों से बने विशाल भित्तिचित्र अपनी मौन गरिमा में अत्यंत भव्य लगते हैं और मन में बड़ी उम्मीद जगाते हैं।

इसके बाद आप लिंग-भैरवी मंदिर जाते हैं। आपको बताया जाता है कि वे यहीं निवास करने वाली देवी हैं, जो एक साथ प्रचण्ड, करुणामयी और उग्र हैं। वे परिक्रमा के दक्षिण-पश्चिम में एक छोटे से जीवंत स्थान पर रहती हैं। उनका निवास-स्थान अन्तरंग और आरामदेह है, उनका रंग आग

की लपटों सा लाल और सुलगते कोयले-सा काला है। मंदिर का सारा प्रबन्ध सिंदूरी रंग की साड़ियाँ पहनने वाली पुजारिनों के हाथों में है। वहाँ पुरुष सहायकों की ग़ैर मौजूदगी साफ़ पता चलती है। वहाँ होने वाली मूर्तिपूजा के खुले प्रदर्शन से आप असहज महसूस कर सकते हैं, जिसमें मंत्रोच्चारण और नारियल फोड़ने का सिलसिला लगातार जारी रहता है। फिर भी इन कर्मकाण्डों की शांतिमय भव्यता आपका ध्यान ज़रूर खींचती है। हर तरफ़ सुरुचि की छाप है - दीवारों में, कपड़ों में, मूर्ति की सामान्य सुडौलता में। भले ही आप इसके प्रति बहुत उत्साहित न हों, फिर भी इनकी सादगी और ख़ूबसूरती की तारीफ़ किए बिना नहीं रहेंगे। हो सकता है कि ऐसे में आप चुपचाप कोई मन्नत भी माँग लें। (आख़िरकार उनको एक वरदान देने वाली देवी के रूप में भी तो जाना जाता है। देवियों की नज़र में अच्छा बने रहना आपको उचित लग सकता है, जिन्हें सभी आध्यात्मिक परम्पराओं में बहुत ही तुनकमिजाज माना गया है।) जब आप वहाँ से लौटते हैं, तो आपको देवी की ख़ुद पर ठहरीं हीरे-जड़ित आँखें अपने पीछे-पीछे आती महसूस होती हैं।

इसके बाद आप ख़ुद को मुख्य मंदिर के द्वार की ओर बढ़ता पाते हैं। देखने में यह एक नाटकीय क्षण महसूस होता है। इस अण्डाकार गुम्बद की पृष्ठभूमि में धुँध से ढँके वेलियंगिरि पहाड़ अपनी अलग छाप छोड़ते हैं। बाद में आपको पता चलता है कि इस गुम्बद को सीमेंट, सरिया या कंक्रीट के इस्तेमाल से दूषित न करके, केवल ईंट और गारे से बनाया गया है। इसके प्रवेश द्वार पर एक सर्वधर्म स्तंभ है। इस पर अनेक धर्मों के प्रतीक तराशे हुए हैं। यहाँ की चिरस्थाई शांति के अलावा ये प्रतीक भी याद दिलाते हैं कि जहाँ आप प्रवेश करने वाले हैं, वह एक सामान्य हिंदू मंदिर नहीं है। पत्थर की तीन खड़ी सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद आप कुछ दूरी तक एक खुले आँगन में चलते हैं। इसके दोनों ओर पत्थर के पैनल हैं जिन पर दक्षिण भारतीय दिव्यदर्शी संतों के जीवन की झाँकियाँ ख़ुदी हुई हैं। ठीक परम्परागत धार्मिक वास्तुकला की शैली में बना बीच का यह पैदल रास्ता उत्सुकता को और भी बढ़ा देता है। इन सबका एक ख़ास असर होता है।

अब यह आप पर है कि आप अंदर क्या महसूस करते हैं। यह स्थान बाहर से जैसा दिखता है, अंदर दीपों की झिलमिलाती रोशनी में उससे कहीं बड़ा लगता है। आपके सामने 13 फुट ऊँचा ठोस ग्रेनाइट का गोलाकार

स्तम्भ खड़ा है। इसकी स्याह काली सतह पर ताम्बे के सात छल्ले करीने से जड़े हुए हैं। स्तम्भ का आधार सात कुण्डलियों वाले पत्थर के विशाल सर्प के आकार का बना है। यह पानी के एक घेरे के बीच में है, जिसमें दीपों से घिरे फूल बड़ी सुंदरता से तैरते रहते हैं। अगर आप कभी आधुनिक भारतीय मंदिरों में गए हैं, तो यहाँ की सादगी और पारम्परिक रस्मों की ग़ैरमौजूदगी से हैरान रह जाएँगे। यह स्थान शान्त, आडम्बरहीन, गर्भगृह सरीखा है, जहाँ एक तरह की मौलिकता का एहसास होता है।

फिर आप दीवार में बनी आभा-गुफाओं की तरफ़ जाकर ध्यानलिंग को पाने के लिए बैठ जाते हैं।

ध्यानलिंग अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग मायने रखता है। कुछ लोगों के लिए यह ईश्वरीय कृपा से कम नहीं है। वे यहाँ से अवाक् और आनंद-विभोर होकर निकलते हैं। कुछ दूसरों के लिए यह सिर्फ़ एक जगह न होकर एक प्रक्रिया है - गहनता देने वाली, स्पष्टता प्रदान करने वाली, तीव्रता लाने वाली। वे जिस मनोदशा में अंदर जाते हैं, उससे बिलकुल अलग अवस्था में बाहर निकलते हैं। वे ज़्यादा शान्त और शरीर व मन की गतिविधियों के प्रति ज़्यादा जागरूक दिखते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि उन्हें कुछ भी असाधारण नहीं लगा, फिर भी वे घण्टों वहाँ बैठे रहे, जबकि उन्हें ऐसा लग रहा था मानो वे कुछ मिनट ही वह बैठे हों। पर लगभग सभी स्वीकार करते हैं कि ऐसा लगा, मानो उनमें एक तरह का निखार आ गया हो, उनकी मलिनता को पखार कर शुद्ध कर दिया गया हो।

शास्त्रीय गायिका सुधा रघुनाथन कहती हैं, 'यह अनुभव मुझे ऐसे समय में ईश्वरीय आशीर्वाद जैसा मिला, जब मुझे इसकी बहुत ज़रूरत थी।' मिशिगन से आए एक अतिथि का कहना है, 'मैं बिना किसी ख़ास कोशिश के ध्यान की अवस्था में चला गया था। ऐसा मैं कई वर्षों से करना चाह रहा था, लेकिन समझ में नहीं आता था कि कैसे किया जाए।' पंजाब के एक अवकाश प्राप्त व्यवसायी का कहना है, 'यहाँ आकर मुझे अब तक का सबसे आश्चर्यजनक अनुभव हुआ है। मैं देशभर के बहुत से शक्तिस्थलों पर जा चुका हूँ, लेकिन मुझे कोई भी ऐसा स्थान नहीं मिला, जहाँ इस तरह की

प्राकृतिक ऊर्जा तरंगित होती हो।' जर्मनी से आए एक अतिथि ने कहा, 'मैं अपने मन में चिंताओं का भँवरजाल लिए अंदर गया था। पर वहाँ पहुँचते ही मेरी सारी चिंताएँ ग़ायब हो गईं। ऐसा लगा कि कोई इन चिंताओं को मुझसे दूर ले जा रहा है और मैं फिर से साँस ले पा रहा हूँ।' एक लेबनानी साधक ने बताया, 'मुझे ऐसा लगा मानो मुझे अपने गुरु मिल गए हों, जो सदा मेरे साथ रहकर बिना किसी भेदभाव के मुझ पर कृपा करते रहेंगे।' कनाडा के एक स्कूल शिक्षक ने कहा, 'मैं प्रायः मन में ऐसी शंकाएँ लिए इस स्थान में प्रवेश करता हूँ कि यह मैं कर क्या रहा हूँ? कहीं यहाँ आकर मैं अपनी सांसारिक ज़िम्मेदारियों से भाग तो नहीं रहा? लेकिन हर बार ध्यानलिंग के आश्रय में बैठते ही मेरी सारी शंकाएँ ख़त्म हो जाती हैं। मैं समझ जाता हूँ कि मैं यहाँ क्यों हूँ।' एक युवती इस बात को ज़्यादा स्पष्ट तरीक़े से बताती हैं, 'ये मेरे सबसे सच्चे ज्ञात मित्र बन गए हैं।'

कुछ लोगों का मानना है कि उनके यहाँ पहुँचने से पहले ही प्रक्रिया शुरू हो जाती है। उनको अचानक ही ध्यानलिंग की छवि के दर्शन हो जाते हैं। इससे भावनात्मक रोमांच और प्रबल उत्सुकता पैदा होती है। आध्यात्मिक जीवन में पहले कोई रुचि न रखने वालों को भी कभी-कभी ऐसी अनुभूति होती है।

क्या वह छवि अचेतन मन की गहराई में किसी बुनियादी तत्व के प्रति कोई प्रतिक्रिया जगाती है? या फिर यह इस तरह की अनुभूति लाने के लिए चतुराई से बनाया गया एक ड्रामा मात्र है, जिसका ऐसा जादुई असर पड़ता है? यह ध्यानलिंग आख़िर है क्या?

*यह ध्यानलिंग आख़िर है क्या? इस सवाल के अलग-अलग जवाब मिलेंगे, और ये इस पर निर्भर होंगे कि प्रश्नकर्ता कौन है। ईशा के तार्किक साधक इसका जवाब देंगे कि यह ध्यान करने का एक साधन है, जबकि भक्त-मंडली इसे शिव कहेगी।*

इस सवाल के अलग-अलग जवाब मिलेंगे, और ये इस पर निर्भर होंगे कि प्रश्नकर्ता कौन है। ईशा के तार्किक साधक इसका जवाब देंगे कि

यह ध्यान करने का एक साधन है, जबकि भक्त-मंडली इसे शिव कहेगी।

कुल मिलाकर कुछ ऐसा ही नतीजा निकलेगा। आपको पता चलेगा कि इस धरती पर यह अपनी तरह का एकमात्र ध्यानलिंग है। आपको समझ में आएगा कि इसके तीव्र ऊर्जा क्षेत्र में बैठना किसी जीवित गुरु की मौजूदगी में बैठने जैसा है। आप जानेंगे कि ऊर्जा का यह रूप चिर-स्थाई, अविनाशी, अमर और धरती के नष्ट होने पर भी जीवंत बना रहने वाला है।

तो ध्यानलिंग सिर्फ़ पत्थर की एक संरचना न होकर एक जीवंत, स्पंदनशील अस्तित्व है। (प्रवेश द्वार पर एक स्वयंसेवी आपको बताता है) लिंग की बाह्य ग्रेनाइट संरचना वहाँ से हटा देने पर भी इसके ऊर्जा क्षेत्र के गुण बने रहेंगे। इस आकार को वहाँ सिर्फ़ इसलिए रखा गया है, क्योंकि अधिकतर साधकों को ख़ुद को उस ऊर्जा से जोड़ने के लिए एक मूर्त रूप की ज़रूरत पड़ती है।

मध्यप्रदेश के भोजपुर में एक ऐसे ही ध्यानलिंग का मध्यकालीन प्रतिरूप आप देख सकते हैं। लेकिन अफ़सोस की बात है कि पूरा होने से पहले ही उसे विकृत कर दिया गया था। इस वजह से ईशा केंद्र का यह ध्यानलिंग अपने आप में एक बड़ी सफलता और उपलब्धि है, पर आध्यात्मिक विज्ञान के इतिहास से अनजान लोग इसे आसानी से पहचान नहीं पाएँगे।

आपके मन में सवाल उठेगा कि आख़िर लिंग ही क्यों? इसमें कोई शक नहीं है कि लिंग-आकृति हिंदू धर्म में एक भगवान (शिव) की पूजा से जुड़ी हुई है। यह सच है और आपको जानकारी देने वाले स्वयंसेवी में इसके लिए शर्मिंदगी का भाव भी नहीं है। वह आपको बताता है कि यह उस लिंग-पूजा से कहीं बढ़कर है। अण्डाकार आकृति असल में एक मौलिक आकार है। आधुनिक विज्ञान भी यही बताता है कि हरेक आकाशगंगा का केंद्र अंडाकार है। विभिन्न परम्पराओं से जुड़े आध्यात्मिक ऋषियों को हमेशा यह ज्ञान रहा है कि यह निराकार (आप इसे शून्य या अनादि, जो भी कहें) से प्रकट होने वाला पहला आकार है और अस्तित्व के मिटने से पहले का अंतिम आकार भी यही है।

यही कारण है कि लिंग निर्माण की तकनीक बहुत पुरानी है। यह संसार की कई संस्कृतियों में सूक्ष्मता के अलग-अलग स्तरों तक विकसित हुई है। इसके लिए उच्च स्तर की आध्यात्मिक निपुणता और समझ की ज़रूरत

होती है। साथ ही ध्यानलिंग का निर्माण करने के लिए असाधारण दिलेरी और दक्षता भी होनी चाहिए। आपको बताया जाता है कि इसके लिए घोर प्रतिबद्धता और पागलपन की हद तक का साहस का होना ज़रूरी है। इस ध्यानलिंग के निर्माण में भी इसके निर्माता को कई बार अपने जीवन को दाँव पर लगाना पड़ा।

इस ध्यानलिंग के निर्माण की कहानी कई तरह से बयान की जा सकती है। लेकिन उनमें से किसी को भी इसके निर्माता के जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। इसी तरह उनके जीवन की कहानी सुनाने के भी कई तरीक़े हैं। इनमें से एक बिलकुल अलंकारहीन, सीधा सपाट वर्णन है, जिससे वे सभी सूचनाएँ निकाल दी जाती हैं, जिनसे किसी शक्की इंसान को परेशानी हो सकती है। दूसरा कहीं ज़्यादा उदार वृतांत है, जिसमें तथ्यों के साथ-साथ ऐसी चीज़ें भी हैं, जिनकी पुष्टि नहीं की जा सकती। यह विवरण अधिक जानकारी देता है।

ध्यानलिंग के निर्माता अलंकारों के प्रेमी हैं। एक बार जब उनसे एक बच्चे ने पूछा कि जीवन सच है या सपना, तो उन्होंने एक आध्यात्मिक गुरु की सहजता से विरोधाभासी जवाब दिया, 'जीवन एक सपना है, पर यह सपना सच है।' वे कविताएँ पढ़ते भी हैं, और लिखते भी हैं। पर सिर्फ़ ध्यानलिंग ही यह साबित करने के लिए काफ़ी है कि वे एक कवि हैं। वे 'तथ्य' और 'सत्य' के बीच के अन्तर की ओर बार-बार हमारा ध्यान खींचते हैं। हर कला प्रेमी इस फ़र्क़ को अच्छी तरह समझता है। उच्चकोटि का कथा साहित्य और कविता साफ़ तौर पर सत्य के क्षेत्र में आते हैं। इसलिए इस कहानी से ग़ैरतार्किक अंश निकाल देना हिंसा करने जैसा अपराध होगा।

ध्यानलिंग के निर्माता ख़ुद भी शंकालु हैं। उनका तर्क विध्वंसकारी हो सकता है। आध्यात्मिक राह पर कपट को वे स्पष्ट रूप से और दृढ़तापूर्वक नामंजूर कर देते हैं। इससे उनकी कहानी के अविश्वसनीय पक्षों पर विश्वास करना आसान हो जाता है। अगर पाठक उस सच्चाई भरे लहजे को सुन सकें, जिसमें इस कहानी की बहुत सी घटनाओं को सुनाया गया है, तो शायद उन्हें वे बातें मानने में आसानी होगी।

आइए, इस कहानी की शुरुआत एक विकल्प से करते हैं। अगला अध्याय इस कहानी की शुरुआत हो सकता है। मगर केवल यही अध्याय नहीं। जो लोग इसे पचाने में परेशानी महसूस करें, वे उसके बाद वाले अध्याय से शुरू करके कहानी के साथ चल सकते हैं।

*ध्यानलिंग के निर्माता अलंकारों के प्रेमी हैं। एक बार जब उनसे एक बच्चे ने पूछा कि जीवन सच है या सपना, तो उन्होंने एक आध्यात्मिक गुरु की सहजता से विरोधाभासी जवाब दिया – जीवन एक सपना है, पर यह सपना सच है।*

सत्य या तथ्य! वास्तविक या ऐतिहासिक! चुनना आपको है। लेकिन एक चेतावनी है। कहानी के अनेक मोड़ों पर ये दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। आप इस गूढ़ जुगलबंदी की परख – साथ ही वह कुंजी जिसकी उम्मीद इस कहानी से पाठक कर सकते हैं – इस तरह पा सकते हैं, जिस तरह ध्यानलिंग के निर्माता ने एक बार अपनी रचना का वर्णन करते हुए कहा था, "यह विशुद्ध जागरूकता और दीवानगी का कॉकटेल (मिश्रण) है।"

शायद यह ख़ुद सद्‌गुरु के बारे में भी उतना ही सही विवरण है।

## 2

# 'मैं वापस आऊँगा'

## तीन जन्मों की दास्तान

सद्गुरु ने यह कहानी हमें कई बार सुनाई है :

कोई चार सौ साल पहले की बात है। छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में बिल्वा नाम का एक व्यक्ति रहता था। ऊँची क़द-काठी, गठीला बदन। ज़िंदगी से बहुत प्यार करने वाला बिल्वा यह तो जानता ही न था कि डर किसे कहते हैं। सँपेरों के उसके क़बीले में उसकी छवि, लीक से हटकर चलने वाले एक अजीब इंसान की थी। शिव का भक्त बिल्वा स्वभाव से ही विद्रोही था, हमेशा से समाज के नियम-क़ानून को तोड़ने वाला। वह चलता तो इतने गर्व से था, मानो यह धरती उसे विरासत में मिली हो। बहुतों को उसका यह तौर-तरीक़ा ज़रा भी नहीं सुहाता। इस उम्र में उसकी इस अकड़ और रौब से सभी को चिढ़ होती थी। ऐसा लगता था कि उसे इस दुनिया से बिलकुल अलग साँचे में तैयार किया गया है।

बिल्वा ने प्रेम भी किया, तो एक ब्राह्मण की बेटी शाम्भवी से। उसकी इस हरकत ने जात-पाँत के नियमों की धज्जियाँ उड़ा दीं। उस ज़माने में जाति-व्यवस्था के नियम-क़ानून इतने कठोर थे कि यह अपराध माफ़ी के योग्य नहीं था। लेकिन बिल्वा में होश कम था, और जोश ज़्यादा। फिर भी इस अवैध समझे जाने वाले प्रेम की आँच से अपने परिवार को बचाने के लिए उसने सम्बलपुर (ओडिशा) जाने का इरादा किया। सुरक्षित रहने के अलावा इस फ़ैसले की एक वजह यह भी थी कि उस कस्बे के पास ही मुक्तेश्वर भगवान का मंदिर था, जिन पर उसे बहुत गहरी श्रद्धा थी।

दोनों प्रेमी लुक-छिप कर उन खेतों और जंगलों में मिलते रहे, जिनके चप्पे-चप्पे से बिल्वा वाक़िफ़ था। लेकिन यह इश्क ज़्यादा दिन छिप नहीं सका। शाम्भवी के बिरादरी वालों को जल्दी ही इसकी भनक लग गई। फिर तो पहाड़ ही टूट पड़ा। मगर उनकी गाली-गलौच और धमकियों का बिल्वा पर कोई असर न पड़ा। वह प्रेमिका के साथ कहीं दूर भाग जाने की योजना बनाने लगा। उसकी उम्र सत्ताईस साल की थी, जवानी का जोश अपने पूरे उफान पर था और किसी बात का डर नहीं था।

*पलनी स्वामी जानते थे कि उसे साक्षात् शिव के अलावा किसी दूसरे का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं होगा। इसलिए करुणा व शपलनी स्वामी आदि-योगी शिव के रूप में उस के सामने प्रकट हुए। शिवयोगी ने स्वयं को उन्हें समर्पित कर दिया। पलनी स्वामी ने अपनी छड़ी उठाई और साधक के माथे से छुआ दिया।*

शाम्भवी के परिवारवालों ने बिल्वा को पकड़ने के लिए जाल बिछाया। दोनों से ख़फ़ा शाम्भवी का चाचा इसमें सबसे आगे था और उस इलाक़े का राजा भी उनकी मदद कर रहा था। पूर्णमासी की चाँदनी रात थी। दोनों प्रेमियों ने चोरी-छिपे जंगल में मिलना तय किया था। साजिश से अनजान बिल्वा उनके जाल में फँस गया। इससे पहले कि वह कुछ समझ पाता, उसे चारों ओर से घेरकर बंदी बना लिया गया।

बिल्वा को एक पेड़ से बाँधकर उस पर उसी का एक भयंकर ज़हरीला साँप छोड़ दिया गया। साँप का ज़हर उसकी रग-रग में फैलने लगा और उसका खून जमने लगा। दर्द बढ़ता जा रहा था। उसके फेफड़े सिकुड़ने लगे थे। उसने मन ही मन तय किया कि वह इन ज़ालिमों को अपनी भयानक मौत का तमाशा देखकर ख़ुश नहीं होने देगा। उसने अपनी साँसों पर नज़र रखना शुरू कर दिया। साँसें भारी होने लगीं, मगर वह सिर्फ़ उन्हीं पर ध्यान देता रहा, जब तक कि उसकी साँसें थम न गईं। नतीजा यह हुआ कि जो मौत उसके लिए दर्दनाक होने वाली थी, वही एक सुन्दर मौत बन गई। उसने

पूरी जागरूकता में शरीर छोड़ा।

यही जागरूकता बिल्वा को अगले जन्म में अध्यात्म की गहरी खोज करने वाले इंसान के रूप में वापस ले आई। उसकी आध्यात्मिक साधना में पूर्वजन्म के ज़हर का असर भी था। उस ज़हर ने उसकी साधना को एक प्रचण्ड तीव्रता दे दी। इस दिशा में उसका जुनून पागलपन की हद तक था और यह हमेशा उस पर सवार रहता था। वह एक शिवयोगी था। शिवयोगी ने कठोर तप से योग में असाधारण दक्षता हासिल की। उसका जन्म एक तेलुगू भाषी परिवार में हुआ था और उसने एक घुमक्कड़ साधु के रूप में दूर-दूर तक भ्रमण किया। लगन के पक्के भारतीय साधकों की परम्परा निभाते हुए उसने भयंकर भूख और कठिनाई वाला जीवन जिया। उसका अधिकतर समय वेलियंगिरि के पर्वतों में बीता, जो दक्षिण के अनेक तपस्वियों का बसेरा रहा है। उसकी योग सिद्धि के कारण उसे बहुत से समर्पित शिष्य भी मिले। बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ हासिल होने के बावजूद उसे अपने अंदर की कमियों का एहसास था, जिसकी कसक उसे परेशान करती थी। वह इस बात को लेकर शर्मिंदा भी था कि जैसा लोग उसे समझते हैं, वैसा वह है नहीं। उसका मानना था कि जब तक वो अपना परम लक्ष्य हासिल नहीं कर लेता, तब तक वह एक ढोंगी से ज़्यादा कुछ नहीं है। सद्गुरु ने हमें बताया कि वह बड़े ही तकलीफ़देह और दिल दहलाने वाले तप का जीवन था।

एक दिन शिवयोगी पर्वत पर ध्यान में बैठा था, तभी एक भ्रमण करते हुए साधु उसके पास आकर रुके। वे कोयम्बतूर की दक्षिणी पहाड़ी पर रहने वाले महान संत श्री पलनी स्वामी थे। उन्होंने पलनी कस्बे में पूरे ढाई साल समाधि में बिताए थे। इसलिए उनका नाम पलनी स्वामी पड़ गया था। तब से वे अपना समय तमिलनाडु के ग्रामीण इलाक़ों में घूम-घूम कर आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का मार्गदर्शन करने में बिताते थे। पलनी स्वामी ने तुरंत शिवयोगी की आध्यात्मिक चाहत की प्रचण्डता और तड़प को पहचान लिया। इस पड़ाव पर शिवयोगी को किसी गुरु के हस्तक्षेप की ज़रूरत थी। वह जानता था कि अगला क़दम ही आख़िरी क़दम होगा - मुक्ति के अनंत साम्राज्य में प्रवेश मिलेगा।

लेकिन शिवयोगी एक स्वाभिमानी शिवभक्त था। पलनी स्वामी जानते थे कि उसे साक्षात् शिव के अलावा किसी दूसरे का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं होगा।

इसलिए करुणावश पलनी स्वामी आदि-योगी शिव के रूप में उसके सामने प्रकट हुए। शिवयोगी ने स्वयं को उन्हें समर्पित कर दिया। पलनी स्वामी ने अपनी छड़ी उठाई और साधक के माथे से छुआ दिया। शिवयोगी क्षणभर में ही उस अवस्था को प्राप्त हो गया, जिसे वह आजीवन तलाशता रहा था। उसके अंतर में पूर्ण सूर्य का उदय हुआ, वह आत्मज्ञान को प्राप्त हो गया।

गुरु चुपचाप अपने रास्ते चले गए। गुरु और शिष्य के बीच एक शब्द का भी संवाद नहीं हुआ। कोई शपथ नहीं ली गई, न ही जीवन भर वफ़ादार रहने की क़समें खाई गईं। उस छोटी-सी मुलाक़ात के बाद उनका फिर कभी मिलना नहीं हुआ। पर शिवयोगी उस मिलन की विरासत को कभी नहीं भूला। पलनी स्वामी की छड़ी के स्पर्श ने उसे सदा के लिए मुक्त कर दिया। पर इसने एक अजीब तरीक़े से उसे एक बंधन में भी डाल दिया था। इससे शिवयोगी एक साधक की आख़िरी मंज़िल पर तो पहुँच गया, पर साथ ही उसमें एक बीज भी बो दिया गया, जो एक गुरु के रूप में उसकी एक नई यात्रा की शुरुआत थी। इसने उसे एक ऐसी ज़िम्मेदारी दी, जिसे पूरा करने में कई जीवनकाल लग सकते थे।

वह बीज उनसे पहले के असंख्य योगियों का सपना था। यह एक ऐसे पवित्र रूप के निर्माण का नुस्ख़ा था, जिससे न केवल गहरी आध्यात्मिक रुचि वाले लोग, बल्कि मानवता का एक बड़ा वर्ग मुक्त हो सकता था। सभी के मुक्ति का द्वार खोलने का यह एक सूत्र था। ध्यानलिंग की कहानी यहीं से शुरू होती है।

उस महान कार्य के लिए चुना जाना बहुत बड़े सम्मान की बात तो थी, लेकिन यह एक बड़ी चुनौती भी थी। पहले भी कई सिद्ध योगी इस दिशा में कोशिश कर चुके थे, लेकिन कामयाब नहीं हो पाए थे। किसी योगी के लिए ध्यानलिंग का निर्माण एक ऐसा जोख़िम भरा कार्य था, जिसका इतिहास दुर्भाग्यपूर्ण था। इसके निर्माण के लिए स्त्रियों और पुरुषों को लम्बे समय तक कठोर साधना में शामिल होने की ज़रूरत थी। इस तरह का कार्य समाज की समझ के दायरे से बाहर था, क्योंकि यह उस वक़्त की परम्पराओं से बिलकुल अलग था। लिहाजा इस काम को पूरा करने का दुस्साहस करने वाले सभी लोगों के जीवन का भयानक अंत हुआ। लेकिन शिवयोगी पलनी स्वामी के ऋणी थे, इसलिए उनके कामयाब न होने का सवाल ही नहीं उठता

था। वे जानते थे कि अगर वे कामयाब नहीं हुए, तो उन्हें फिर से शुरुआत करनी होगी। इस मिशन को बीच में छोड़ देने का कोई विकल्प ही नहीं था।

अपने जीवनकाल में गुरु के सपने को साकार करने का शिवयोगी का संकल्प पूरा न हो सका। सत्तावन साल की उम्र में उन्होंने शरीर छोड़ दिया। लेकिन वह मिशन रुका नहीं।

*वह बीज उन से पहले के असंख्य योगियों का सपना था। यह एक ऐसे पवित्र रूप के निर्माण का नुस्ख़ा था, जिससे न केवल गहरी आध्यात्मिक रुचि वाले लोग, बल्कि मानवता का एक बड़ा वर्ग मुक्त हो सकता था। सभी के मुक्ति का द्वार खोलने का यह एक सूत्र था। ध्यानलिंग की कहानी यहीं से शुरू होती है।*

बीसवीं सदी की शुरुआत में शिवयोगी फिर से इस दुनिया में लौटे। अब वे दक्षिण भारतीय योगी व दिव्यदर्शी सद्गुरु श्री ब्रह्मा थे। वे भी तेलुगू भाषी परिवार से थे और अपने सख़्त स्वभाव के साथ-साथ असीम करुणा के लिए प्रसिद्ध थे। दक्षिण भारत के अनेक आश्रम आज भी इस क्रोधी किन्तु आश्चर्यजनक रूप से लोकप्रिय योगी पर लोगों की श्रद्धा के साक्षी हैं।

एक समय जब वे कुन्नूर के आश्रम में (जिसे आज भी एक प्रसिद्ध कॉरडाइट फ़ैक्टरी के सामने देखा जा सकता है) रहा करते थे, तब ब्रिटिश शासन ने वहाँ के रेलवे स्टेशन के पास रेल की पटरी पार करने पर रोक लगा दी थी। लेकिन सद्गुरु इसे न मानने पर आमादा थे। यह नियम दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान ख़ासतौर पर सख़्त था। लेकिन इससे उन्हें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। इस अपराध के लिए उनको गिरफ़्तार करके जेल में डाल दिया गया। वे जेल के बंद दरवाज़े से बस यूं ही चलकर बाहर निकल गए और और अपने आश्रम लौट आए। अंग्रेज़ों को समझ नहीं आया कि वे क्या करें। उन्होंने सद्गुरु को फिर कभी नहीं रोका। यह ख़बर चारों ओर फैल गई और नीलगिरि का इलाक़ा देखते ही देखते उनके निष्ठावान शिष्यों से भर गया।

एक दूसरे मौक़े पर, ऊटी झील के पास उन्हें सुनने के लिए जुटी भीड़ उनकी किसी बेबाक टिप्पणी पर उत्तेजित हो उठी। वे खरी-खोटी सुनाने में अपने आस-पास के लोगों के साथ-साथ देवताओं को भी नहीं बख़्शते थे। इसलिए सद्गुरु श्री ब्रह्मा को अक्सर घमण्डी और नास्तिक माना जाता था। जब हिंसा भड़कने की नौबत आ पहुँची, तो सद्गुरु ज़रा ठहरे, फिर उन्होंने ग्यारह साल के एक बच्चे को अपने पास बुलाया। फिर उसके सिर पर हाथ रखकर उससे झील पर चलने को कहा। बच्चे ने जब ऐसा कर दिखाया, तो भड़के हुए लोगों की भीड़ एकाएक शान्त हो गई। सद्गुरु इस तरह के करिश्माई चमत्कार करने के लिए जाने जाते थे, लेकिन ऐसा वे सिर्फ़ बहुत विशेष हालात में ही करते थे।

सद्गुरु श्री ब्रह्मा ने ध्यानलिंग की स्थापना की भरसक कोशिश की। लेकिन इस आध्यात्मिक प्रक्रिया के ख़िलाफ़ समाज का विरोध बहुत ज़्यादा था। यह कौन-सा विचित्र योगिक अभ्यास है, जिसमें पुरुषों और स्त्रियों का अन्तरंग होकर शामिल होना ज़रूरी है? इस विचार मात्र से ही दक्षिण भारत की प्रचलित मान्यताओं को ठेस पहुँचती थी। सद्गुरु को कोयम्बतूर से बाहर खदेड़ दिया गया।

गुस्से से भरे सद्गुरु लगातार कई दिनों तक चलते रहे। उनके समर्पित शिष्य विभूति के लिए उनके साथ-साथ चलना आसान न था। जिस गाँव से वे गुज़रते, वहाँ के ग्रामवासियों से रसद जुटाना, भोजन तैयार करना और गुरु के चल पड़ने पर उनके साथ चल देना - यह बहुत कठिन कार्य था। वो गुरु के गहरे ध्यान में जाने का इंतज़ार करता और फिर चुपचाप भोजन उनके सामने रख देता। फिर छिपकर दूर से गुरु को भोजन करते देखता रहता। ज़्यादा दख़लंदाजी से गुरु की पहले से ही सुलग रही क्रोधाग्नि और भड़क सकती थी।

इसी तरह, गुरु और शिष्य लगातार चलते हुए कडप्पा (आंध्रप्रदेश) पहुँचे। यहाँ वे शिव के मादक रूप वाले सोमेश्वर के छोटे से मंदिर में ठहरे। मंदिर का पुजारी और उसके सहयोगी उनकी मौजूदगी के तेज को सहन नहीं कर पाए और तुरंत पीछे हट गए। इस मंदिर को चुनने का कारण यह था कि अपने जीवनकाल में पलनी स्वामी कभी यहाँ ठहरे थे।

कडप्पा के धूलभरे कस्बे के इस छोटे से मंदिर में छह महीने रहकर गुरु और शिष्य ने आगे के लिए योजना बनाई। उन्होंने दो दर्जन से अधिक लोगों के भाग्य का फ़ैसला किया कि इन लोगों को किस परिवार में और किसके गर्भ से जन्म लेना है, उन्हें क्या-क्या हुनर हासिल करने होंगे और कैसा जीवन जीना होगा। यह ध्यानलिंग के निर्माण के लिए भविष्य में अनुकूल माहौल पैदा करने की कोशिश थी। ध्यानलिंग को पूरा करने की पिछली सभी कोशिशों में बाधाएँ सामाजिक कारणों से आई थीं। सिद्धि प्राप्त योगियों के रास्ते में समाज के नियम-क़ानून हमेशा से रोड़े अटकाते रहे हैं। बड़ी सूझबूझ से काम लेते हुए सद्गुरु ने अपने भरोसेमंद शिष्यों को ऐसे परिवारों में भेजने का फ़ैसला किया, जहाँ से उनको सबसे ज़्यादा विरोध की उम्मीद थी। इसके पीछे मुख्य कारण यह था कि ऐसे में ये परिवार उनकी योजना को विफल करने से हिचकिचाते। फिर भी विरोध होना तय था। ध्यानलिंग के निर्माण में कट्टर विरोधियों का सामना होना ही था।

अब आख़िरी नाटक के लिए मंच तैयार हो चुका था। जो कुछ किया जाना था, उसके छोटे-से-छोटे पहलू पर ध्यान दिया जा चुका था, क्योंकि अगली कोशिश को हर हाल में कामयाब बनाना था। इस महान योजना को क्रियान्वित करने से पहले, सद्गुरु ने अपना लक्ष्य पूरा करने की एक और कोशिश की। उन्होंने पश्चिम भारत के वज्रेश्वरी आश्रम के एक *बालयोगी* सदानन्द का शरीर चुना। ग्यारह साल की छोटी सी उम्र में ही आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद, सदानन्द ने कोई तीन साल *समाधि* की अवस्था में बिताकर, मात्र 26 साल की उम्र में ही शरीर त्याग दिया था। हालाँकि उन्होंने अपनी योजना को कार्यरूप देने की पूरी तैयारी कर ली थी पर जब उन्होंने ध्यानपूर्वक तैयार किए हुए बालयोगी सदानन्द के शरीर को देखा, तो उन्हें लगा कि यह एक अच्छा मौक़ा हो सकता है। सद्गुरु उसके शरीर में प्रवेश कर गए।

कुछ महीनों तक वे दो शरीरों में रहे। वे जानते थे कि अब उनके पास ज़्यादा समय नहीं है। इसलिए उन्होंने ख़ूब कोशिश की, कुछ ऐसे शिष्य बनाने के लिए जो उनके मिशन को पूरा कर सकते थे। लेकिन उनको निराशा ही हाथ लगी। वज्रेश्वरी में ध्यानलिंग के निर्माण में उनको कोयम्बतूर से ज़्यादा प्रतिकूल स्थितियों का सामना करना पड़ा। वे बालयोगी का शरीर त्यागकर अपने शरीर में लौट आए और इस दुनिया से कूच की तैयारी कर ली। एक

और जीवनकाल नाकाम हो चुका था। ऐसा लगने लगा था कि पलनी स्वामी का सपना केवल एक सपना ही रह जाएगा। संसार इस महान सम्भावना को गले लगाने के लिए तैयार नहीं था।

अब सद्‌गुरु वेलियंगिरी पहाड़ों में लौट आए। वे सातवीं पहाड़ी पर चढ़ गए। तेज़ हवाओं के झोंकों वाले इस वन प्रदेश की शांति उस इंसान के बारे में बहुत कुछ कहती है, जिसने इसे अपने अंतिम प्रस्थान के लिए चुना। यहाँ उन्होंने सभी सात चक्रों के माध्यम से अपना शरीर त्याग दिया। यह एक दुर्लभ सिद्ध योगी, एक चक्रेश्वर ही कर सकता था। इससे पहले ऐसा स्वयं शिव ने किया था, जो मानवता के इतिहास में पहले योगी थे।

*सद्‌गुरु ज़रा ठहरे, फिर उन्हों ने ग्यारह साल के एक बच्चे को अपने पास बुलाया। फिर उसके सिर पर हाथ रखकर उस से झील पर चलने को कहा। बच्चे ने जब ऐसा कर दिखाया, तो भड़के हुए लोगों की भीड़ एकाएक शान्त हो गई।*

बयालीस साल की उम्र में ऐसे अद्‌भुत तरीक़े से शरीर त्यागने से पहले सद्‌गुरु श्री ब्रह्मा ने घोषणा की थी, 'मैं वापस आऊँगा।'

3

# 'यह इंसानों को चराएगा'

## एक शरारती बच्चा जो रहनुमा बन गया

'लोग भेड़ बकरियों को चराते हैं, यह इंसानों को चराएगा।' यह गूढ़ बात कही थी उस आगंतुक भविष्यदर्शी ने जिसे वासुदेव घराने के नवजात शिशु की जन्मकुंडली बनाने के लिए बुलाया गया था। बच्चे की कुंडली बनाने के बाद उसने उस पर बड़े गर्व से लिखा, 'इसे एक सौभाग्यशाली जीवन का वरदान प्राप्त है।'

सुशीला और उनके पति वासुदेव के पुत्र, जगदीश का जन्म 3 सितंबर 1957 को आधी रात से छह मिनट पहले 11 बजकर 54 मिनट पर हुआ था। वह ऐतिहासिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए मशहूर शहर मैसूर में जन्मा था। लोगों के मन में इस पुराने रजवाड़े की तसवीर आलीशान महलों और सुंदर बगीचों वाले शहर के रूप में है। शिशु ने आने में देरी की। बेसब्री से उसका इंतजार किया जा रहा था, लेकिन वह इस दुनिया में तय समय से 23 दिन देरी से आया। शायद पैदा होने के बाद की चुनौतियों का कुछ अंदाज़ा था उसे।

जगदीश परिवार में सबसे छोटा था। उससे पहले एक भाई और दो बहनें थीं। वासुदेव परिवार में बच्चे के नामकरण के समय दो पीढ़ियों में हमेशा मतभेद हुआ करता था। दादा-दादी पारम्परिक नामों को पसन्द करते थे, जबकि माता-पिता को उस समय के प्रचलित नाम ज़्यादा अच्छे लगते थे। वे हर बार अंत में एक समझौते पर पहुँचते। जहाँ दादा-दादी ने पहली बच्ची के लिए पपम्मा नाम सुझाया था, वहीं माता-पिता पुष्पलता पर राजी हुए थे। इसी तरह, पहले पुत्र के लिए दादा-दादी ने राघवेंद्र नाम पसन्द किया,

तो माता-पिता ने रवींद्र चुना।

पर इस बार तो आगन्तुक ज्योतिषी ने शिशु को अपना नाम देकर यह समस्या यहीं ख़त्म कर दी। उसने फ़ैसला सुनाया कि इसका नाम जगदीश, यानी जगत का स्वामी होगा। आगे चलकर उसका घर का नाम जग्गी हो गया।

जग्गी के जन्म से एक साल पहले वासुदेव परिवार में एक बच्चा जन्मा था। बच्चा बड़ा सुन्दर था और ज्योतिष के हिसाब से उसमें महान बनने के सभी लक्षण मौजूद थे। पर वह शिशु कुछ दिन ही जी पाया। जैसा कि जग्गी - अब सद्गुरु - अपने अनूठे औपचारिक अंदाज़ में बताते हैं, 'उस बच्चे ने 1956 में ही आने की कोशिश की थी, लेकिन पहली बार सफलता न मिलने पर एक साल बाद उसने फिर से कोशिश की और सफल रहा।'

वासुदेव परिवार कर्नाटक का एक तेलुगू भाषी परिवार था। प्रसिद्ध नेत्ररोग विशेषज्ञ डाक्टर वासुदेव बेंगलुरु के एक धनी परिवार से थे। बचपन में ही उनकी माँ टीबी से चल बसी थीं। उनकी माँ की अंतिम इच्छा थी कि वे डॉक्टर बनें। वे उनकी अंतिम इच्छा पूरी करने के इरादे को लेकर बड़े हुए। हालाँकि उनके पिता की यह मर्ज़ी नहीं थी। पिता चाहते थे कि वे परिवार के कारोबार में हाथ बँटाए। अपने मामा का प्रोत्साहन पाकर युवक वासुदेव ने मैसूर मेडिकल कॉलेज से डॉक्टरी पढ़ी और नेत्ररोग को अपनी विशेषज्ञता का विषय चुना। वे बहुत सिद्धांतवादी और स्वाभिमानी युवक थे। उन्होंने अपनी पढ़ाई का अधिकांश ख़र्च छात्रवृत्ति से पूरा किया। वे देर रात तक सड़क की बत्ती की रोशनी में पढ़ा करते थे।

समय आने पर वासुदेव का विवाह एक धनी और संभ्रांत परिवार (जो स्वयं को विजयनगर साम्राज्य के प्रसिद्ध शासक कृष्णदेव राय का वंशज मानते थे) की बेटी सुशीला से हो गया। सुशीला विनम्र और मृदुभाषी महिला थीं। उन्हें घर-गृहस्थी और परिवार की देखभाल की परम्परागत भूमिका निभाने में ख़ुशी मिलती थी। लेकिन वे इतनी सीधी भी न थीं कि कोई उनका फ़ायदा उठा पाए। उनके सभी बच्चों को - ख़ासकर नटखट जग्गी को - मालूम था कि ज़रूरत पड़ने पर वे सख़्ती से भी पेश आ सकती हैं।

जन्म के समय गर्भनाल जग्गी के कंधे से लिपटी हुई थी। पारम्परिक अंधविश्वास के मुताबिक़ इसे परिवार के लिए अशुभ माना जाता था। ऐसा

कहा जाता था कि इससे मामा के जीवन को ख़तरा होता है। इस ख़तरे से बचाव के लिए बाक़ी सावधानियों के साथ-साथ यह उपाय भी किया गया कि बच्चे को पाँच साल की उम्र तक नाई से दूर रखा जाए। 'नतीजा यह हुआ कि मेरे बाल लम्बे और घुँघराले हो गए। इनकी दो चोटियाँ बाँध दी जाती थीं।' वे कहते हैं, 'मैं रोज़ स्कूल में किसी न किसी बच्चे को मेरे लम्बे बालों का मज़ाक उड़ाने पर पीट देता था।'

*मेरे लिए कक्षा में बैठे रहना नामुमकिन था। क्योंकि जब शिक्षक बोल रहे होते थे, तो मैं जान जाता कि वे जो कुछ कह रहे हैं, उसका उनके ख़ुद के जीवन में कोई महत्त्व नहीं है। टीचर जो कुछ कहते थे, वह बस उनका पेशा था, इसलिए मैं सुनना नहीं चाहता था।*

डॉ. वासुदेव भारतीय रेल में नेत्ररोग-विशेषज्ञ थे। इस वजह से उनका तबादला होता रहता था। इसलिए जग्गी को कई स्कूल बदलने पड़े। 1969 में मैसूर लौटने से पहले यह परिवार शिमोगा, चिक्कबल्लापुर और गुंटकल के बीच घूमता रहा।

बड़ी सजीव कल्पनाएँ करने वाले, ऊर्जा से भरपूर जग्गी की उत्सुकता कभी न बुझती। रौब या अधिकार दिखाने वालों की वह परवाह न करता था। उसकी इन ख़ूबियों की वजह से बड़े उससे ज़रा आशंकित ही रहते थे। वे कहते हैं, 'मेरे लिए कक्षा में बैठे रहना नामुमकिन था। क्योंकि जब शिक्षक बोल रहे होते थे, तो मैं जान जाता कि वे जो कुछ कह रहे हैं, उसका उनके ख़ुद के जीवन में कोई महत्त्व नहीं है। टीचर जो कुछ कहते थे, वह बस उनका पेशा था, इसलिए मैं सुनना नहीं चाहता था। क्योंकि मैं जानता था कि वे जो चीज़ें बता रहे हैं, उसे मैं किताब में पढ़कर आसानी से समझ सकता हूँ।'

कई बार जग्गी के स्कूल बदले जाने की एक वजह यह भी थी, कि वह बालक अव्वल दर्जे का शरारती था और उसे क़ाबू में करना नामुमकिन था। सब उसे लापरवाह और बेफ़िक्र समझते थे। वो कब क्या कर बैठे, कोई नहीं

जानता था। लगता था कि उसे किसी चीज़ का डर नहीं है। अपनी सुरक्षा की ज़रा भी परवाह किए बग़ैर, वह रोंगटे खड़े कर देने वाले कारनामे करने पर उतारू रहता था। माता-पिता परेशान होकर पूछते, 'क्या तुम्हें किसी से डर नहीं लगता।' इसका जवाब कभी-कभार ही मिलता। बालक जग्गी स्वभाव से चुप्पा था। यह भाँपना मुश्किल हो जाता कि वो अब कौन-सा कारनामा करने वाला है। इतना तो साफ़ था कि इस बच्चे को डरा कर नहीं सुधारा जा सकता था।

एक बार जग्गी ने ब्लैकबोर्ड पर कोई बदमाशी वाली बात लिख दी। इससे नाराज़ होकर शिक्षक ने उसे क्लास से निकल जाने को कहा। जग्गी ने जब उनका हुक़्म मानने से इनकार कर दिया, तो शिक्षक बिगड़कर बोले, 'या तो तुम भगवान हो, या फिर शैतान।' उसके चेहरे पर पछतावे की एक भी शिकन न देखकर शिक्षक ने चिढ़ते हुए कहा, 'मैं जानता हूँ कि तुम शैतान ही हो।'

बालक जग्गी के उल्टे-सीधे कारनामों के अनगिनत क़िस्से हैं। स्कूल से भागने में कितना मज़ा आता है, यह उसने बहुत कम उम्र में ही जान लिया था। उसे लगता था कि गणित के पन्नों में सर खपाने से ज़्यादा समझदारी पेड़ की ऊपरी शाखाओं पर चढ़कर बैठने में है। उसे लगता था कि बहुत कम शिक्षक यह जानते हैं कि वे क्या बोल रहे हैं। वे सब बस अपने आप चलने वाले डिक्टाफ़ोन हैं। उनका भिनभिनाना इम्तिहान पास करा सकता है, या फिर अच्छी नींद सुला सकता है। उम्र के शुरुआती दौर में ही जग्गी की एक आदत साफ़ ज़ाहिर हो गई थी, जो आगे चलकर भी उसका साथ छोड़ने वाली नहीं थी। वह थी, मूर्खों को आराम से झेल न पाना। उसने कभी भी इम्तिहान गम्भीरता से नहीं दिए। हालाँकि उसके शिक्षक भीषण भविष्यवाणियाँ करते, पर वह हमेशा पास हो जाता। एक बिगड़ैल बच्चे की छवि के अपने फ़ायदे थे। जब हर कोई यह मान ले कि तुम सुधरने वाले नहीं हो, तो कम से कम आपको अकेला छोड़ दिया जाता है।

जब वह पेड़ पर चढ़कर बैठा होता, तो उसे अपने साथ बस अपने लंचबॉक्स और पानी की बोतल की ही ज़रूरत पड़ती। वह अधिकतर समय दिन के सपनों में डूबा रहता, तब हल्की बयार उसे थपकियाँ देते हुए आनन्द की अवस्था में ले जाती। बाद में उन्होंने इसे अपनी ध्यान की अवस्था का

शुरुआती अनुभव बताया। बालक के पास घड़ी नहीं थी। उसे पता ही नहीं चलता था कि समय कैसे बीत गया। जब वह दूसरे लड़कों को स्कूल से बाहर आते देखता, तो समझ जाता कि स्कूल की छुट्टी हो गई। तब वह पेड़ से उतरता और साइकिल चलाता हुआ घर चला जाता। 'मैं पेड़ की सबसे ऊँची डाल पर चढ़ जाया करता और वहाँ बैठा रहता। वह डाल धीरे-धीरे डोलती रहती। कुछ समय बाद मैं इसी तरह बैठे-बैठे अपने भीतर एक बिलकुल अलग तरह के अनुभव में चला जाता था। वह एक समाधि जैसी अवस्था थी, जहाँ मुझे समय का एहसास ही नहीं रहता था। मैं सुबह नौ बजे से शाम साढ़े चार बजे स्कूल की छुट्टी होने तक वहीं पेड़ पर बैठा रहता। बहुत बाद में, जब मैंने ध्यान करना शुरू किया, तो मुझे एहसास हुआ कि उस समय मैं अनजाने में ही ध्यान में चला जाता था। जबकि मैंने पहले कभी "ध्यान" शब्द भी नहीं सुना था। मुझे तो बस पेड़ पर बैठे-बैठे होने वाला अनुभव अच्छा लगता था।'

जग्गी की शरारतें पेड़ों पर चढ़कर बैठने तक ही सीमित नहीं थीं। वह चुपके से पिकनिक का सामान (जिसमें ज़्यादातर उबले अण्डे और रोटियाँ होती थीं), पैक करता, फिर अपने माता-पिता के लिए एक लिखित सन्देश छोड़कर कई दिनों के लिए ग़ायब हो जाता। अपने इस सैर-सपाटे में वह क्या करता था? जंगल-जंगल में घूमता-फिरता, साँप, मछली पकड़ता, पहाड़ और पेड़ों पर चढ़ता। उसे घर से बाहर की ज़िंदगी पसन्द थी। प्रकृति के नियम उसे घर या स्कूल के नियमों से ज़्यादा सहज लगते थे। खाने का सामान ख़त्म हो जाने पर वह घर लौट आता। उसके ख़याल से माता-पिता को इससे परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं थी। आख़िरकार वह अपने जाने की जानकारी तो हमेशा लिखकर छोड़ ही जाता था! हालाँकि यह कभी नहीं बताया कि जा कहाँ रहा है। वह हमेशा सही-सलामत लौट भी तो आता था। खाने का शौक़ीन होने की वजह से उसके भूखे रहने का तो सवाल ही नहीं उठता था। माता सुशीला की रसोई का प्रलोभन उसकी आवारगी को हमेशा क़ाबू में रखता था।

वैसे स्कूल भी उसकी ज़िंदगी में कुछ मायने रखता था। जग्गी अपनी क्लास और स्कूल की हॉकी, कबड्डी, फ़ुटबॉल, बॉक्सिंग, क्रिकेट और बैडमिंटन टीमों की जान था। जब कभी वह क्लास में आने की मेहरबानी करता, उसे भूगोल के सबक़ काफ़ी रोचक लगते थे। दूसरे देशों की जलवायु

और संस्कृतियों की जानकारी उसे बहुत रोचक लगती थी। स्कूल की लाइब्रेरी में वह *'नेशनल ज़िओग्राफ़िक'* को बड़े चाव से पढ़ा करता था। उसे उसके करारे पन्नों की महक और उसके चिकने काग़ज़ पर छपे दूर देशों के दृश्य बहुत अच्छे लगते। वह अक्सर इसकी निजी प्रति प्राप्त करने के लिए लालायित रहता। लेकिन इसकी ग्राहक सदस्यता पाने में उसे बहुत समय लग गया। वे हँसते हुए कहते हैं, 'इसकी सदस्यता लेने में मुझे पच्चीस साल लग गए। आज भी मैं *'नेशनल ज़िओग्राफ़िक'* का ग्राहक हूँ।'

अपने आसपास के इलाके की प्राकृतिक विशेषताओं को जानने की गहरी इच्छा के कारण ही उसे भूगोल से लगाव था। उसमें चीज़ों पर ग़ौर करने की ज़बर्दस्त क़ाबिलियत थी। 'धरती की संरचना, भूभाग और जनजीवन मुझे बहुत दिलचस्प लगता था। मैं गाँव की कच्ची पगडण्डियों पर साइकिल लेकर निकल पड़ता और रोज़ाना कम से कम तीस से पैंतीस किलोमीटर की सवारी करता। घर लौटने तक मैं कीचड़, धूल से लथपथ हो जाता। जो इलाक़ा मैं देखकर आता, घर आकर मन में उनके नक़्शे बनाता। जब मैं अकेला बैठा होता, तब आँख मूँद कर अपने मन में उनको फिर से ताज़ा करता। हर चट्टान, हर टीला, हर पेड़, सब कुछ। अलग-अलग मौसम, जुताई होने पर धरती में आने वाला बदलाव, फ़सलों का लहलहाना, यह सब मुझे बड़ा दिलचस्प लगता। इसीलिए मैंने थॉमस हार्डी को पढ़ना शुरू किया, क्योंकि वह इंग्लिस्तानी भूभाग का वर्णन बड़े विस्तार से करते हैं। मैं भी अपने आसपास के इलाक़ों के साथ अपने मन में यही कर रहा था। आज भी मेरी याददाश्त में वे नज़ारे वीडियो की तरह मौजूद हैं। जो मैंने उन वर्षों के दौरान देखा अगर चाहूँ तो मैं वह सब फिर से ताज़ा कर सकता हूँ। मेरे जीवन के पिछले तीन या चार साल उतने साफ़ तरीक़े से दर्ज नहीं हैं। लेकिन उससे पहले वह हर जगह, जहाँ मैं गया था, ख़ासकर भूभाग, प्राकृतिक आकार-प्रकार आज भी मेरी याद में ताजा हैं।'

बालक जग्गी सब कुछ पढ़ता था। मध्यवर्ग के दूसरे भारतीय बच्चों की तरह उसने भी इनिड ब्लाइटन को पढ़ा मगर उसे अपनी रुचि के मुताबिक़ रोमांचकारी नहीं पाया। उसने रूसी साहित्य ख़ूब पढ़ा, जो 1970 के दशक में भारत में कौड़ियों के दाम मिलता था। बारह साल की उम्र पार करने पर सस्पेंस थ्रिलर की भूख जगी। एलिस्टेयर मैकलीन्स, लुइसएल-एमू और फ़्रेडरिक फ़ॉरसाइद से लेकर लीयन यूरिस, विल्बर स्मिथ और जेम्स हेडली

चेस तक। वह अपने भाई के साथ कॉमिक्स का आनन्द भी उठाता था, *फ़ैंटम* और *टार्ज़न* से *आर्चीस* और *मैंड्रेक* तक। उनके भाई रवींद्र कहते हैं, 'इन सब में ऐस्ट्रिक्स उसे सबसे ज़्यादा पसन्द थी, जिसमें मुझे कभी मज़ा नहीं आया।'

चूँकि दोनों भाइयों की उम्र में सिर्फ़ दो साल का ही फ़र्क़ था, इसलिए वे अक्सर एक-दूसरे के कपड़े अदल-बदल कर पहन लेते थे। रवींद्र कहते हैं, 'मुझे याद है, एक बार एक चोर रात को खिड़की से आकर हमारी सब कमीज़ें चुरा ले गया। हमारे पास पहनने को एक भी कमीज़ नहीं बची। हमने पड़ोसी से कमीज़ें उधार माँगीं और थाने पहुँचे।' लेकिन चोर कभी पकड़ा नहीं गया और दोनों भाइयों को अपनी अलमारी में फिर से कपड़े भरने पड़े।

> *जग्गी ने जब उनका हुक़्म मानने से इनकार कर दिया, तो शिक्षक बिगड़कर बोले, या तो तुम भगवान हो, या फिर शैतान। उसके चेहरे पर पछतावे की एक भी शिकन न देखकर शिक्षक ने चिढ़ते हुए कहा, मैं जानता हूँ कि तुम शैतान ही हो।*

वासुदेव परिवार हर शनिवार शाम को फ़िल्म देखने जाया करता था। माता-पिता तो हिंदी फ़िल्में देखते थे, लेकिन बच्चों को अंग्रेज़ी फ़िल्में पसन्द थीं। *'बेनहर,' 'रोमन हॉलिडे,' 'मैकेनाज गोल्ड,'* और *'कासाब्लांका'* जग्गी की पसन्दीदा फ़िल्में थीं। सात साल की उम्र में *'साइको'* देखना उन्हें आज भी याद है। उनकी बहनें तो मारे डर के थिएटर से बाहर निकल आईं, लेकिन सात साल का मज़बूत दिल वाला बालक फ़िल्म के भयानक अन्त तक अपनी सीट पर चिपक कर बैठा रहा। वह कहते हैं, 'मेरे पास टिकट था, तो भला मैं क्यों थिएटर छोड़ कर जाता? मेरी बहनें बाहर इंतज़ार करती रहीं।'

मैसूर शहर में अंग्रेज़ी फ़िल्मों के दो थिएटर थे। दो साल तक जग्गी सप्ताह में दो फ़िल्में देखा करता था। छुट्टियों में वह अपने दादा-दादी के घर जाता। वहाँ वह और उसके चचेरे भाई-बहन कभी-कभी तेलुगू फ़िल्में देखने जाया करते। 'सिनेमाघर पूरी तरह हमारे अपने थे। हम जब चाहें,

अंदर-बाहर आ-जा सकते थे। टिकटों की ज़रूरत नहीं थी। उस समय हमने एन टी रामाराव की बहुत-सी फ़िल्में देखीं।'

सिनेमा देखने से जग्गी पर कहानी का कोई भावात्मक असर नहीं पड़ता था। 'फ़िल्में किस तरह बनाई जाती थीं, मेरी रुचि उसमें ज़्यादा थी। मुझे बहुत पहले एहसास हो गया था कि सिनेमा के दृश्य तो अभिनय मात्र हैं। उन्हें देखकर मैं उनकी तारीफ़ कर सकता था। अगर मैं चाहता, तो फ़िल्में देखते हुए आँसू भी बहा सकता था, लेकिन किसी दुखभरी कहानी के कारण नहीं। अगर उसमें वाक़ई कुछ बहुत सुन्दर घटता था - प्रेम या आनन्द के रोमांचकारी पल - तो मेरी आँखों से आँसू लुढ़क जाते थे। मैं अब भी ऐसा कर सकता हूँ। लेकिन अगर मैं चाहता, तो वहाँ बैठकर पूरी फ़िल्म आलोचनात्मक तरीक़े से देख सकता था। मैं दोनों काम करने के क़ाबिल था।'

जग्गी का एक क़रीबी स्कूली साथी सोमन्ना था, जो बाद में भी उनका पक्का दोस्त बना रहा। वह कुर्ग का रहने वाला था। उन दोनों में पढ़ने की आदतें एक-सी थीं। इत्तेफ़ाक से दोनों स्कूल की हाकी टीम में भी थे। सोमन्ना 'सेंटर फ़ार्वर्ड' और जग्गी 'लेफ़्ट आउट' खेलता था। उनमें घनिष्ठता का एक दूसरा कारण भी था - मुसीबतों में पड़ने की उनकी क़ाबिलियत और एक-दूसरे को बचाने के अनोखे तरीक़े। एक बार जब एक सहपाठी ने सामाजिक-विज्ञान की टीचर को 'स्लीपिंग लेडी' कहा, (लड़के इस ऊँघने वाली टीचर को आपस में इस गुप्त नाम से बुलाते थे) तो बहुत ज़्यादा गुस्से में भरी टीचर ने क्लास से उसके लिए वाजिब सजा पूछी। 'उसे माफ़ कर दीजिए,' जग्गी ने ज़ोर से कहा। बस इतना काफ़ी था, जग्गी को तुरन्त कॉलर से घसीटकर हेड मास्टर तक ले जाया गया। 'बेशक, वह मेरे लिए कोई नई जगह नहीं थी,' वह निर्विकार भाव से कहते हैं। टीचर ने जग्गी को कुछ आवारा लड़कों का रिंग लीडर बताया और हेडमास्टर ने उसे पन्द्रह दिनों के लिए क्लास से निकाल दिया।

उसके लिए क्लास से निकाला जाना कभी भी अफ़सोस की बात नहीं थी। उसे तो गाँव-देहात का भ्रमण के लिए पन्द्रह दिनों का सुहाना समय मिल गया था। 'स्कूल के सबसे अच्छे छात्र को दूसरों से कुछ ज़्यादा छुट्टियाँ मिलती ही हैं!' वे हँसते हैं, 'और मुझे कभी शिकायत नहीं रही।' ऐसी 'छुट्टियाँ' अक्सर मिलती थीं। कक्षा के सीलिंग फ़ैन पर मरे साँप या मेंढक

को रख देना टीचर को ख़ुश करने वाला काम तो था नहीं और न ही स्कूल से भागते हुए पकड़े जाने पर टीचर को यह बताना उचित माना जाता था कि इम्तिहान साल में दो बार आते हैं, जबकि आमों का मौसम सिर्फ़ एक बार। बात तो वाजिब ही थी - आम आप सिर्फ़ एक ख़ास मौसम में ही चुन सकते थे जबकि बोरिंग इम्तिहान बार-बार आ जाते थे - लेकिन परेशानी ये थी कि टीचर अपने नीरस तर्क के सहारे जीना पसन्द करते थे।

एक परेशानी वाली बात यह थी कि हेडमास्टर इन 'छुट्टियों की सूचना' जग्गी के माता-पिता को चिट्ठी भेजकर दिया करते थे। लेकिन स्थानीय पोस्टमास्टर के बेटे सोमन्ना जैसा दोस्त जग्गी के लिए वरदान साबित हुआ। उस चिट्ठी को वासुदेव परिवार के पास पहुँचने से पहले ही पोस्ट-ऑफ़िस से रफ़ा-दफ़ा कर दिया जाता। वे बताते हैं, 'स्कूल के चपरासी से दोस्ती गाँठकर हम पता कर लेते थे कि चिट्ठी कब भेजी जाने वाली है। जैसे ही हमें मालूम पड़ता, मैं रात को सोमन्ना के घर पहुँचता। मैं गुलमोहर के पेड़ पर चढ़कर उसके सोने के कमरे में पहुँचता। सोमन्ना का भाई मुझे पसन्द नहीं करता था, क्योंकि हम चोरों की तरह काम करते थे। इसलिए उसके सो जाने का इंतज़ार करना पड़ता। उसके बाद मैं चुपके से बेडरूम में पहुँचता। फिर हम पूरी रात चिट्ठियों को छाँटते और पोस्टमास्टर की मदद करते।' इसके बावजूद एक-दो बार ऐसी चिट्ठियाँ जग्गी के पिता के हाथ लग गईं। तब वे घोर निराशा में हाथ पटकते हुए कहते, 'वे तुम्हें हमेशा के लिए स्कूल से निकाल दें, तो ठीक रहेगा।'

हालाँकि शिक्षक आमतौर पर उबाऊ क़िस्म के थे, मगर एक बार जग्गी ख़ुशी से हैरान रह गया था। अपनी नौवीं कक्षा की नई इंग्लिश टीचर की याद आज भी उनके मन में ताजा है। वह युवा टीचर अपनी पहली नौकरी को लेकर बहुत उत्साहित थी। वे कहते हैं, 'मुझे उनका कक्षा में घूमकर पढ़ाना याद है। उनका क़द ऊँचा था। वे कलफ़ लगी हुई सफ़ेद साड़ी पहने हुए थीं। वे आकर मेरी डेस्क के पास खड़ी हो गईं। जब वे दूसरी तरफ़ देख रही थीं, तभी मैंने मौक़ा पाकर अपने पेन की नीली स्याही वाली नोक उनकी साड़ी में लगा दी। साड़ी के कपड़े ने वह स्याही ब्लॉटिंग पेपर की तरह सोख ली। उस दिन लंच ब्रेक में मुझे उस टीचर के ऑफ़िस में बुलाया गया। मेरे पहुँचने पर उन्होंने मेरा पेन माँगा। मैंने पेन उनको दे दिया। उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा, बस अपनी दवात निकाली और पेन में स्याही भरकर मुझे वापस

कर दिया। मैंने धन्यवाद कहा और चला गया। यह इतना शानदार जवाब था कि मैं इस घटना को कभी नहीं भूल पाया। उस दिन के बाद से वे मेरी पसंदीदा टीचर बन गईं। यह घटना हम दोनों के बीच एक गहरा संबंध बना गई। काफ़ी समय बाद वे स्कूल की प्रिंसिपल भी बनीं।'

हाल ही में, मैसूर में एक सत्संग के बाद उनकी मुलक़ात अंग्रेज़ी की एक दूसरी टीचर से हुई। अपने पुराने छात्र से हुई मुलाक़ात से रोमांचित हो उन्होंने सद्गुरु को गले लगा लिया और बताया कि वे अब तक नहीं भूल पाई हैं कि वे स्कूल के दिनों में रॉबर्ट फ़्रॉस्ट को नापसन्द करते थे। सद्गुरु इस बात को याद नहीं कर पाए, तो टीचर ने उनको याद दिलाया, 'तुम्हें यह लाइन पसन्द नहीं थी - "वुड्स आर लवली, डार्क एंड डीप।" तुम कहते थे, "लकड़ी ही क्यों? पेड़ में लकड़ी के अलावा और भी बहुत कुछ होता है।"' सद्गुरु अब हँसते हुए कहते हैं, 'यह सच है। मैं हमेशा सोचता था कि पेड़ को बस लकड़ी की तरह देखना थोड़ा अश्लील लगता है। ठीक उसी तरह, जैसे किसी जानवर को देखकर सिर्फ़ उसके मांस के बारे में सोचना या औरत को देखकर सिर्फ़ सेक्स के बारे में सोचना।'

गाड़ियों के लिए जग्गी के मन में आकर्षण शुरू से था। रवींद्र को याद है कि उनके पिता की रॉबिनहुड साइकिल उन दोनों की पसन्दीदा साइकिल थी। वे बताते हैं, 'उसके बाद वेस्पा स्कूटर आया, जिसे हर कोई ईर्ष्या से देखता था। हम बारी-बारी से स्कूटर चलाते थे। मेरे पिता उसमें ताला लगाकर चाबी छिपा देते थे। पर मैंने चुपके से डुप्लीकेट चाबी बनवा ली थी। जब वे बाथरूम में होते या सो रहे होते, तब मैं उसे चलाता। वे स्पीडोमीटर की रीडिंग भी लिख लेते थे। तब हम स्पीडोमीटर का तार निकाल कर चलाया करते थे। इसलिए उनको हमारी हरकत का पता न चलता। फिर भी उनको हमारे चोरी-छिपे स्कूटर चलाने की भनक लग गई। उसके बाद वे उसके इंजन को अक्सर छूकर देखते कि वह हमारे चलाने की वजह से गरम तो नहीं हो गया, लेकिन हम उनके आने से पहले इस पर ठण्डा पानी डाल दिया करते थे। इस सबमें हमें बहुत मज़ा आता था।'

योग ने जग्गी के जीवन में सहज ही जगह बना ली। उस समय गर्मी की छुट्टियाँ थीं। तब वे तेरह साल के थे। वे उन क़रीब पैंतीस हुड़दंगी पोते-पोतियों के झुण्ड में से एक थे, जो अपने दादा-दादी के पैतृक घर पर

छुट्टियाँ मनाने इकट्ठे हुए थे। घर के पिछवाड़े में डेढ़ सौ फुट से भी ज़्यादा गहरा एक कुआँ था। यह लड़कों के विशेष आकर्षण का केंद्र था। लड़कियाँ तो लुका-छिपी का खेल खेलती थीं, पर लड़के कुएँ में कूदकर इसकी सीधी खड़ी दीवार पर लगे पत्थर के 'फ़ुटहोल्ड' से चढ़कर वापस ऊपर आने का खेल खेलते। समय बिताने के लिए उनको यह खेल बहुत पसन्द था। ऊपर आने पर वे फिर से उसी करतब को दोहराते। वे कहते हैं, 'आमतौर पर हम वहाँ गर्मियों में ही जाया करते थे। तब कुएँ का पानी ज़मीन से क़रीब 60-70 फ़ुट नीचे होता था। कुएँ में कूदना और फिर चढ़कर ऊपर आना चुनौती भरा काम था। सही तरीक़े से नहीं कूदे, तो कुएँ की दीवार से टकराकर सिर फट सकता था। चढ़ने के लिए न तो पक्की सीढ़ियाँ बनी थीं और न ही कोई लकड़ी की सीढ़ी थी। कुछ भी नहीं था। हमें दीवार पर जड़े पत्थरों के सहारे ऊपर आना होता था। जब तक हम ऊपर आते, दबाव पड़ने की वजह से हमारी उँगलियों के नाखूनों से ख़ून निकलने लगता। कुछ ही लड़के यह कारनामा कर पाते थे। मैं भी उनमें से एक था और मैं यह बहुत अच्छी तरह कर लेता था।'

*जब वह बूढ़ा बिना कुछ कहे कुएँ में कूद गया और बड़ी आसानी से ऊपर चढ़कर बाहर आ गया, वह भी उन सबसे जल्दी, तो सभी लड़कों का मुँह खुला का खुला रह गया। हैरान जग्गी का सवाल था, 'आपने कैसे किया?' जवाब में वह आदमी बोला, 'आओ और योग सीखो।'*

एक दिन सत्तर साल से ज़्यादा उम्र का एक बूढ़ा आदमी वहाँ आया। वह सीधा-सादा तमाशबीन लग रहा था। लड़कों ने उस पर ध्यान नहीं दिया, वे बस अपने खेल में लगे थे। पर जब वह बूढ़ा बिना कुछ कहे कुएँ में कूद गया और बड़ी आसानी से ऊपर चढ़कर बाहर आ गया, वह भी उन सबसे जल्दी, तो सभी लड़कों का मुँह खुला का खुला रह गया। हैरान जग्गी का सवाल था, 'आपने कैसे किया?' जवाब में वह आदमी बोला, 'आओ और योग सीखो।'

इसमें दोबारा सोचने की कोई बात ही नहीं थी। तंदुरुस्ती और फुर्तीलापन जग्गी के लिए सबसे अहम था। अगर योग से ऐसी शक्ति और फुर्ती मिलती है, तो वह सीखने को तैयार था। इस तरह जग्गी ने मल्लादिहल्ली स्वामी (यह कुएँ में चढ़ जाने की करामात दिखाने वाले श्री राघवेंद्र राव का लोकप्रिय नाम था) से योग सीखने की शुरुआत की। वे बताते हैं, 'और इस तरह मेरा योग से परिचय हुआ। मैं इस आदमी के पीछे-पीछे पिल्ले की तरह घूमा करता था। मैं यह सब इसलिए बता रहा हूँ, ताकि आप जान जाएँ कि भले ही आपने इसे किसी ग़लत वजह से अपनाया हो, योग फिर भी काम करता है।'

जग्गी ने कुछ साधारण योगासन सीखे जिनका वह रोज़ अभ्यास किया करता। इस तरह नियम से योग करने से वह ख़ुद हैरान था क्योंकि अनुशासन में रहना तो उसने कभी सीखा ही नहीं था। फिर भी पता नहीं कैसे योग का यह अभ्यास बरसों तक लगातार जारी रहा। 'हर सुबह उठने पर मैं ख़ुद-ब-ख़ुद योगाभ्यास करने लगता। चाहे मैं कहीं भी होऊँ, किसी भी हालात में क्यों न होऊँ। यह अभ्यास बिना नागा किए अगले बारह या तेरह साल तक चलता रहा। जो योग मुझे सिखाया गया, इस साधारण योग के अभ्यास से मुझे बाद में और ज़्यादा गहन अनुभव हुए। वह अनुभव होने से पहले तक मुझे बिलकुल पता नहीं था कि मैं इतने वर्षों से एक आध्यात्मिक प्रक्रिया कर रहा था। अगर एहसास था, तो सिर्फ़ इतना कि योग से मैं शारीरिक और मानसिक तौर पर दूसरों से अलग हो गया हूँ। मैंने बस इतना ही सोचा था।'

बहुत समय बाद उसने जाना कि उसके शिक्षक योगाभ्यास में असाधारण क्षमता रखते हैं। अगर मल्लादिहल्ली स्वामी की ख़ूबियों का जिक्र करने लगें, तो शायद कई पन्ने भर जाएँगे। हालाँकि वे अपने छोटे से मल्लादिहल्ली गाँव (कर्नाटक का चित्रदुर्ग जिला) से बाहर कहीं नहीं गए, पर वे योग और आयुर्वेद के महान शिक्षक और चिकित्सक थे। अपनी ज़िंदगी में उन्होंने यह हुनर हज़ारों छात्रों को सिखाया। वे ग़ैर-लाभकारी आधार पर एक आयुर्वेदिक अस्पताल, एक विश्व योग ट्रस्ट और कई शिक्षण संस्थाएँ चलाते थे। उन्होंने राज्य और केंद्र सरकार के दिए हुए तमाम इनाम लेने से भी हमेशा इनकार किया। उनका कहना था कि उनका उद्देश्य इनाम बटोरने के

बजाय, ज़रूरतमन्दों और पिछड़े लोगों की भलाई की योजनाओं के लिए धन जुटाना है।

वे अपने योग कौशल की कभी चर्चा नहीं करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि योग दिखावे या मुक़ाबले की चीज़ नहीं है। लेकिन जग्गी को यह पता चला कि उसके अजीबोग़रीब शिक्षक एक दिन में चार हज़ार आठ *सूर्य-नमस्कार* करते थे। वे बॉडी-बिल्डर भी थे और साथ ही परंपरागत मार्शल आर्ट्स में माहिर भी। कई वर्षों बाद, आठ साल जिम में बिताने के बाद भी जग्गी अपने शिक्षक को कुश्ती में नहीं हरा सका। 'वे एक महान पहलवान थे। तब मैं इस फ़न में माहिर और बहुत फुर्तीला था। कई लड़के मुझसे भी तगड़े थे। वे हमेशा अकेले और हम तीन हुआ करते थे। फिर भी हम उनके सामने मिनट भर भी नहीं टिक पाते थे। तिरासी साल की उम्र में भी वे हम तीनों को एक ही मिनट में पछाड़ देते थे।'

एक कहानी वे अक्सर सुनाते हैं कि एक बार उनके योग-गुरु अपने कुछ दोस्तों के साथ एक स्टेशन पर ट्रेन का इंतज़ार कर रहे थे। इतवार की शाम थी और स्वामी को अपने आश्रम लौटने की जल्दी थी, क्योंकि अगली सुबह उनको अपने कई मरीज़ों को देखना था। कुछ देर बाद पता चला कि रेल की हड़ताल है। इंतज़ार करने के अलावा कोई और चारा नहीं था। लेकिन स्वामी ने अचानक कुछ फ़ैसला किया और रेल की पटरी पर कूदकर घर की ओर दौड़ना शुरू कर दिया। उनके दोस्तों का मुँह खुला-का-खुला रह गया और वे लोग भौंचक्के होकर देखते रह गए।

उन्होंने रात भर में सत्तर किलोमीटर की दूरी दौड़कर तय की। पौ फटते ही वे अपने आश्रम में पहले मरीज़ को देखने के लिए हाज़िर थे। आश्रम में किसी को उनकी इस अनोखी यात्रा की भनक नहीं थी। काफ़ी देर बाद जब उनके दो साथी वहाँ पहुँचे, तब कहीं जाकर सबको पता चला कि पिछली रात क्या हुआ था।

सद्गुरु कहते हैं, 'वे क़रीब-क़रीब महामानव थे। आप यक़ीन नहीं कर सकते कि कोई इंसान ऐसा हो सकता है। जब वे अस्सी और नब्बे के बीच में थे, तो हम उनसे मिलने जाते और उन्हें छेड़ते, "यह तो बताइए कि आप स्वर्ग कब सिधारेंगे? लगता तो ऐसा है कि आप से पहले हम लोग ही दुनिया से चले जाएँगे।" जवाब में वे कहा करते, "मेरे सामने और चालीस वर्षों का

काम है। उसे पूरा करके मैं चला जाऊँगा।" उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि वे आराम से यह कर दिखाएँगे।'

सद्गुरु बताते हैं कि मल्लादिहल्ली स्वामी अपने जीवन के आख़िरी दिनों तक योग सिखाते रहे। जब वे एक सौ छह साल के थे, तब एक दिन मैसूर में एक लेक्चर देते समय अचानक गिरकर बेहोश हो गए। उनको अस्पताल ले जाया गया। जाँच करने पर पता चला कि उन्हें दिल का मामूली दौरा पड़ा था। रात को जब होश आया, तो उन्होंने ख़ुद को 'आई सी यू' में पाया। उनके शरीर में कई सुइयाँ और ट्यूब लगे हुए थे। अधीर गुरु ने ख़ुद उनको खींच कर निकाल दिया, और पहली मंज़िल से कूदकर दौड़ते हुए घर लौट आए। उसके तीन महीने बाद उन्होंने अपने आश्रम में ही शान्तिपूर्वक अपना शरीर त्याग दिया। इस तरह अपने जीवन के आख़िरी दिनों तक वे सक्रिय रहे।

काफ़ी समय के बाद सद्गुरु ने बताया कि मल्लादिहल्ली स्वामी और कोई नहीं, बल्कि पिछले जन्म के उनके गुरु श्री पलनी स्वामी के एक शिष्य थे। जब पहली बार मैंने यह सुना, तो मुझे बहुत हैरत हुई। मैंने उनसे पूछा कि क्या इसका मतलब यह है कि आपके गुरु ने ही इस जीवन में आपको अपने योग गुरु से मिलवाया? सद्गुरु ने इसका कोई सीधा जवाब नहीं दिया। वे कहीं दूर किसी सोच में खो गए, जैसा कि अपने गुरु का जिक्र आने पर अक्सर उनके साथ होता है। उन्होंने शान्तिपूर्वक कहा, 'गुरु की करुणा और गुरु की साजिश कई तरीक़ों से काम करती है। गुरु को तो ख़ुद इन दोनों के बीच अन्तर भी नहीं पता होता। उनकी जो भी मर्ज़ी होती है, वही संसार में प्रकट होती है। शायद मैं उनकी योजना का एक छोटा-सा हिस्सा था। कम से कम मेरा मानना तो यही है।'

ऐसा कुछ नहीं था जिससे ज़ाहिर हो कि बालक जग्गी किसी दूसरे अतिसक्रिय स्कूली बच्चे से अलग हो। वह शायद दूसरों से ज़्यादा ज़िद्दी था, मगर मूल रूप से वह एक उधमी और शैतान बच्चा था। लेकिन कुछ दूसरे लक्षण भी थे, जो उसके पास के लोगों से छिपे नहीं रह सके। जब वह कुछ ही दिनों या महीनों का था, तब घर में घटी कुछ घटनाओं या बातचीत को याद रखने की उसकी क़ाबिलियत से उसकी माँ हैरान रह जाती थीं। वह ऐसी छोटी-छोटी

बातों को भी याद रखता था – जैसे उसकी माँ की साड़ी का रंग या किसी ख़ास मौक़े पर किसी ने क्या कहा था, वगैरह – कि सब हैरानी में पड़ जाते। इसी तरह उसमें किसी आदमी को एक ही नज़र में पहचान लेने की क़ाबिलियत भी थी। यह गुण उनमें आज भी मौजूद है : किसी आगंतुक को तत्काल पहचान लेना, उसकी शख़्सियत के साथ-साथ उसके सामान्य जीवन का अंदाज़ा लगा लेना।

इन भीतरी गुणों ने उसे अपनी उम्र से ज़्यादा परिपक्व बना दिया। 'शायद यही वजह थी कि परिवार में कोई भी मुझसे दूसरे बच्चों की तरह गले लगाकर प्यार नहीं कर पाता था,' वे कहते हैं, 'मैं था ही ऐसा। इस चीज़ ने मुझे सामान्य बच्चों की तरह नहीं रहने दिया। इस वजह से कोई भी मुझे अपनी गोद में नहीं ले सकता था। कोई भी मुझे पुचकार नहीं सकता था, कोई भी मुझे उठा नहीं सकता था।' जब वह बहुत छोटा था, तब भी उसे यह पसन्द नहीं था कि कोई उसे उठा कर चले। जब कभी परिवार के साथ बाहर जाता, तो अपने पैरों से चलना पसन्द करता, जबकि उसके बड़े भाई को माता-पिता में से कोई एक गोद में लेकर चलता था। वे हँसते हैं, 'मुझे छोटे बच्चे की तरह गोद में उठा लेना या गले लगाना मुश्किल था। मैं अब भी एक मुश्किल इंसान ही हूँ, देखिए ज़रा...'

*जब मेरे पिताजी ने यह अजीब सी आवाज़ सुनी, तो घुटनों के बल झुककर देखा कि यह है क्या? मेरे पिता साँप देखकर भौंचक्के रह गए। जब मैं घर लौटा, तो वे गुस्से से पागल हो रहे थे। बेशक वे डरे हुए भी थे। घर में हर कोई कुर्सी या सोफ़े पर खड़ा था।*

उसमें एक और क़ाबिलियत थी, जिसके बारे में कोई नहीं जानता था। पाँच साल की उम्र में अचानक उसे लोग बिना कपड़ों के अपने कुदरती रूप में दिखने लगे, जबकि वे कपड़े पहने हुए होते थे। उसकी यह नज़र कामुकता से कोसों दूर थी। यह बस अपने आस-पास के लोगों को सिर्फ़ नग्न शरीरों के रूप में देखने की उनकी क्षमता थी। कुछ अरसे के बाद लोग उसको हवा

में बने धुँधले तरल आकारों की तरह दिखने लगे। इसके बारे में उन्हें बहुत बाद में मालूम हुआ कि इसे योग की भाषा में ऊर्जा-शरीर, कार्मिक-शरीर या प्राणमय कोष कहते हैं। जहाँ तक उसका सवाल था, ऐसी बातें उसे अजीब नहीं लगती थीं। वह तो यही मानता था कि हर किसी को दुनिया ऐसी ही नज़र आती होगी। बड़े हो जाने पर उनको पता चला कि बदले हुए स्वरूप वाले वे शुरुआती दृश्य किसलिए थे।

वे कहते हैं, 'जब मैं पाँच-छः साल का या उससे कुछ बड़ा था, तब ऐसा होता था। यह मेरे लिए आम बात थी। अगर मैं घर की बैठक में बैठा होता और लोगों - माँ, पिता, भाई, बहनों - को देखता तो वे मुझे धुँधले से और तरल नज़र आते। वे बिलकुल प्रेतों की तरह यहाँ-वहाँ मँडराते हुए दिखते। मुझे बहुत हैरानी होती कि आख़िर ये सब कर क्या रहे हैं? जब मैं चलता या बोलता, तभी वे मुझे इंसानों जैसे दिखते। पर जब मैं सिर्फ़ बैठा होता, तो वे मुझे धुएँ के गुबार जैसे मँडराते नज़र आते। एक बार जब आप लोगों को तरल और धुँधले रूप में देख लेते हैं, तो बाक़ी सब कुछ अर्थहीन हो जाता है। अचानक मेरे पिताजी आकर पूछते, "तुम्हारी गणित की तैयारी का क्या हुआ? तुम्हारी तिमाही परीक्षा कब है?" तो यह सब बड़ा अजीब लगता था। मेरी समझ में नहीं आता था कि वे किस चीज़ की बात कर रहे हैं। यह सब ऐसा लगता, जैसे आप आवाज़ बंद करके टी वी देख रहे हों। अचानक सारा नाटक बेतुका हो जाता है।'

उन दिनों उसकी ऐसी ख़ाली-ख़ाली सी नज़रों को किसी तरह के गहन ज्ञान का संकेत नहीं समझा गया। बल्कि इससे घर के लोग खीजते ही थे। वे बताते हैं, 'बात इस हद तक बढ़ गई कि मेरे पिता मुझे किसी मनोवैज्ञानिक को दिखाने की बात सोचने लगे। बचपन में ही मुझे एहसास हो गया था कि मैं कुछ भी नहीं जानता। इसी वजह से मुझे आसपास की हर चीज़ को बहुत ध्यान से देखना पड़ता था। मैं किसी पत्ती या पानी के गिलास को बहुत देर तक लगातार देखता रहता। मैं रातभर अंधेरे को घूरता रहता। अगर मुझे एक कंकड़ भी दिख जाता, तो वह बहुत देर तक मेरे दिमाग़ में घूमता रहता। ऐसा नहीं था कि मैं उसी के बारे में सोचता रहता था। बस, उसकी तसवीर बार-बार मेरे दिमाग़ में लौटती रहती। मुझे उसके हर कण, हर कोण की जानकारी हो जाती। जब कोई बोलता, तो मुझे ऐसा लगता कि वह सिर्फ़ आवाज़ें निकाल रहा है और मैं उसका मतलब निकाल रहा

हूँ। जब मैंने मतलब निकालना छोड़ दिया, तो आवाज़ें अजीब लगने लगीं। तब मुझे उनके मुँह से बस "पैटर्न" यानी आकार निकलते दिखते। अगर मैं घूरता रहता, तो लोग विघटित होकर प्रेतों जैसे दिखने लगते। उसके बाद सिर्फ़ पैटर्न बच जाते।'

चीज़ों के पार देख लेने की उसकी क़ाबिलियत से कभी-कभी बड़े बेतुके हालात पैदा हो जाते थे। जब वह पहली कक्षा में था, तो उसने बड़े भोलेपन से अपनी टीचर से पूछा कि वे लाल रंग का अंडरवियर क्यों पहने हुई हैं? उन्हें याद है कि वे भौंचक्की रह गई थीं।

बाद में अपनी किशोरावस्था में एक बार जब वह किसी दोस्त के यहाँ गया, तो उसके कमरे में दाख़िल होते ही अपने विकसित बोध के कारण सहज ही पूछ बैठा, 'अरे भाई, तुम्हारे कमरे में यह लड़की कौन है?' जबकि वहाँ किसी दूसरे इंसान के होने के कोई नामोनिशान भी नहीं थे। न ही कमरे में इत्र की कोई महक थी, जिससे ऐसा अनुमान लगाया जा सकता। उनके दोस्त ने झुँझलाकर बताया कि उसकी बहन आई हुई है और वह इस समय बाथरूम में है। सद्गुरु हँसते हैं, 'मैंने उसकी बहन का वहाँ होना भाँप लिया, तो वह उत्तेजित हो उठा।'

वे बताते हैं कि उनकी भाँप लेने की इस क़ाबिलियत ने कई बार जंगल में उनको ख़तरे से सावधान कर दिया, और इससे उनकी जान बच गई। 'इसने कई तरह से मेरे जीवन-अनुभव को समृद्ध बनाया है। मैं दुनिया को ज़्यादा गहराई से अनुभव कर पाता हूँ क्योंकि मैं इसकी गंध को भी समझ लेता हूँ।'

उसकी कल्पना करने की क़ाबिलियत शुरुआत से ही अच्छी ख़ासी थी। दस साल की उम्र में उसका रिश्ते का एक भाई मिलने आया, तो उसने उसे अपने घर की छत पर अपनी अजीबोग़रीब दुनिया दिखाई। उस दुनिया में छोटी से छोटी बात का ख़याल रखा गया था। 'मैं हमेशा तीसरी मंज़िल की छत पर चढ़ जाया करता था, जहाँ पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ नहीं थीं। वहाँ तक सिर्फ़ मेरी ही पहुँच थी, क्योंकि वहाँ कोई दूसरा नहीं चढ़ सकता था। मैंने वहाँ एक घर बनाया हुआ था - मेरी अपनी ख़ुद की दुनिया, एक बिलकुल दूसरी दुनिया, जिसमें मैंने छोटी-छोटी बातों का भी ध्यान रखा था। दूसरों के लिए यह सब समझ पाना बहुत मुश्किल है। मान लीजिए, मैं एक

फूल बनाना चाहता हूँ, तो मैं इसकी एक-एक कोशिका बनाते हुए इसे पूरा करता। आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि अपने दिमाग़ में एक फूल बनाने में कितना समय लगता होगा। इस तरह से थोड़ा-थोड़ा करके मैंने एक अलग दुनिया ही रच डाली थी। मैं पाँच-छह घंटे बिना हिले-डुले बैठकर इसका एक-एक हिस्सा बनाता जाता। वह मेरे लिए एक असली दुनिया बन गई थी। मेरी दुनिया में कोई दूसरा नहीं घुसता था मगर कभी-कभी मैं अपने इस भाई को अपनी दुनिया की सैर कराने ले जाया करता था। वो लड़का ऐसा दीवाना हो गया कि वहाँ हर रोज़ जाने की ज़िद करने लगा। अगर मैं न ले जाऊँ तो रोने लगता।'

आख़िर यह दुनिया थी क्या? 'बिना महलों की एक शानदार जगह।' वे कहते हैं, 'जंगली जानवरों से भरा एक जंगल। वहाँ एक चीता और एक गैण्डा था। गैण्डा मेरा पसन्दीदा जानवर था।'

इस सारे ब्योरे से एक युगद्रष्टा की क़ाबिलियत की शुरुआती झलक मिलती है - बहुत बड़े स्तर पर और बहुत छोटे स्तर पर, एक साथ सोच पाने की क़ाबिलियत। सद्‌गुरु कहते हैं, 'हर इंसान में यह क़ाबिलियत होती है। जब हम ऐसे सपने देखना सीख लेते हैं, जिनमें हम ख़ुद को अगुआई करने के लिए विवश महसूस नहीं करते, तभी यह क़ाबिलियत सामने आती है। आप जो कुछ कर रहे हैं, अगर उसमें से ख़ुद को अलग कर लेने के लिए ज़रूरी स्थिरता आप में है, जो कुछ आप करते हैं, अगर उसमें से ख़ुद का अहम, ख़ुद की शख़्सियत, ख़ुद की पहचान पूरी तरह से निकाल सकते हैं, अपने आप को पूरी तरह मिटा देने की क्षमता आप में है, तो आप अपने क्रियाकलाप को बिलकुल अलग और ऊँचे आयाम तक पहुँचा सकते हैं। लेकिन आमतौर पर लोगों को पता नहीं होता कि जिस चीज़ से उनका सरोकार नहीं है, या जिस चीज़ से उनकी पहचान नहीं है, उसके लिए मेहनत कैसे करें। बस, यही इंसान की सीमा है। इसी कमज़ोर बनाने वाली सीमा में इंसान ने ख़ुद को बाँध रखा है। वह किसी ऐसे काम को नहीं कर पाता, जिसमें उसका अपना कुछ न हो।'

वह छत जग्गी की निजी दुनिया थी और उसकी अनोखी योजनाओं की जगह थी। वहाँ वही पहुँच सकता था, जो कसरती और धुन का पक्का हो, खेलकूद में माहिर और मेहनती हो। जो पाइप, पेड़, या खिड़की की ग्रिल

के सहारे ऊपर चढ़ सके। इसलिए परिवार का कोई सदस्य भी वहाँ नहीं जाता था। जग्गी की दूसरी सनक के लिए, जो वाक़ई परेशान करने वाली थी, बस छत ही एकमात्र सही जगह थी - यह थी साँप पालने का जुनून। सारा का सारा परिवार इसके विरुद्ध एकजुट था। चिड़ियों और रेंगने वाले जीवों के बारे में उसकी जानकारी सहज-स्वाभाविक थी। चार साल की उम्र से ही उसे अपनी क्लास के साफ़-सुथरे, लेकिन बेजान माहौल से स्कूल के बाहर वाले गटर की गन्दगी ज़्यादा पसन्द थी। 'हमारी नौकरानी रोज़ सुबह मुझे ले जाकर स्कूल छोड़ती और फिर दोपहर को आकर ले जाया करती। मैं हमेशा उसे मना लेता कि वह स्कूल के अंदर न आए और मुझे गेट पर ही छोड़ दे। उसके वापस जाते ही मैं बाहर आकर गटर के पास बैठ जाता। कक्षा में मुझे कभी दिलचस्पी नहीं थी।'

*मैंने हमेशा देखा कि रेस्टोरेन्ट से बाहर आने वालों के चेहरे मंदिर से निकलने वालों से ज़्यादा शांत और खुश नज़र आते थे। ईश्वर और डोसा की प्रतियोगिता में निश्चय ही डोसा जीतता था।*

उसे मालूम था कि गटर में कभी ठहराव नहीं होता। उसकी उम्र के हिसाब से वह उसके लिए किसी 'ग्रैंड-कैन्यन' से कम न था जिसमें तमाम संभावनाएँ मौजूद थीं। इसमें तरह-तरह के साँप थे। पानी वाले साँप, बगीचे में पाए जाने वाले साँप, छोटे साँप, बड़े साँप, ज़हरीले और बिना ज़हर वाले साँप। 'मालूम नहीं क्यों, मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि साँप कोई डरने की चीज़ है। शायद इस वजह से मैं लोगों को थोड़ा अजीब लगता था। लेकिन जितना सहज मैं दूसरी चीज़ों के साथ था, उतना ही साँपों के साथ भी था। उनसे मुझे कभी ख़तरा नहीं महसूस होता था।'

वह अपने पिताजी से मिली दवा की ख़ाली बोतलों में मेंढक और उनके बच्चे इकट्ठा करता। अफ़सोस, कि साँप उतनी आसानी से इन बोतलों में नहीं रखे जा सकते थे। फिर भी यह परेशानी उसे बहुत दिनों तक साँप पालने से रोक नहीं पाई। परिवार में सबसे पहले रवींद्र को छत पर साँपों के एक छोटे फ़ार्म का पता चला। 'मैंने देखा कि जग्गी ने काँच के जार में साँप रखे

हुए हैं। यह मुझे बड़ा विचित्र लगा, पर मैंने माता-पिता को इस बारे में कुछ नहीं बताया। मैं जानता था कि पिताजी बहुत बिगड़ेंगे।'

धीरे-धीरे जग्गी आसपास के इलाक़े में साँप पकड़ने वाले के रूप में मशहूर हो गया। इस काम के लिए उसे अच्छे पैसे भी दिए जाते थे। 'आमतौर पर लोगों को साँपों की तेज़ रफ़्तार के कारण उनसे डर लगता है। लेकिन मेरे लिए यह कभी भी मुद्दा नहीं था क्योंकि मैं जान चुका था कि इंसान साँप से ज़्यादा तेज़ चल सकता है। मैं बिना कोई डण्डा लिए साँप पकड़ने जाता और उसके रुक जाने तक इंतज़ार करता। फिर उठाने से पहले उसे दबाकर पकड़ लेता। सँपेरे भी यही करते हैं। मैं फन उठाए उत्तेजित कोबरा को भी उसके पास जाकर सीधे पकड़ लेता था। ऐसे कारनामे मैं बरसों तक करता रहा। मैं नहीं कह सकता कि आज मुझमें ऐसा करने की फुर्ती है या नहीं। लेकिन तब मैं इसे बड़े आत्मविश्वास से करता था।'

अपने अंतर्बोध से वह साँपों की मौजूदगी भी भाँप लेता था। 'मुझमें एक तरह का सूक्ष्म इंद्रियबोध पैदा हो गया था, जो अभ्यास छूट जाने की वजह से अब ख़त्म हो गया है। मैं जंगल में बड़ी आसानी से साँप का पता लगा लेता था। मैं उसकी गंध से उसका पता लगा लेता और जाकर पकड़ लेता। अगर मैं चामुण्डी-पहाड़ी पर किसी जगह जाता, तो तुरंत जान जाता कि किस पत्थर के नीचे साँप होगा। अब यह इंद्रिय बोध मुझमें नहीं रहा। इसकी वजह यह है कि अब मैं बहुत-से लोगों और बहुत-सी शहरी चीज़ों से घिरा रहता हूँ।'

यह हुनर जग्गी के लिए बड़ा फ़ायदेमंद साबित हुआ। 'बचपन से ही मैंने अपनी माता-पिता से एक भी रुपया जेबख़र्च नहीं लिया। छठी-सातवीं में पढ़ने के दौरान भी मैं अपने लिए ख़ुद पैसे कमा लेता था। पास ही एक बड़ा सेंट्रल इंस्टीट्यूट था, जिसके अहाते में बहुत से साँप थे। वहाँ छोटा साँप पकड़ने पर पच्चीस रुपए और लगभग तीन फ़ुट लंबा या उससे बड़ा साँप पकड़ने पर पचास रुपए दिए जाते थे। उन दिनों पचास रुपए काफ़ी बड़ी रक़म होती थी। जब कभी मैं शनिवार को वहाँ पहुँच जाता, तो दोपहर भर में तीन या चार साँप पकड़ लेता। इससे मुझे डेढ़-दो सौ रुपए मिल जाते। मेरा जेबख़र्च कमाने का यह भी एक तरीक़ा था।'

एक दिन उसने एक स्थानीय ट्यूब-लाइट कारख़ाने में घुसे हुए एक साँप को पकड़ा। इससे कारख़ाने के कर्मचारियों ने बड़ी राहत की साँस ली। लेकिन वह इस बेशक़ीमती शिकार को खोना नहीं चाहता था। लिहाजा घर लाकर उसने चुपके से साँप अपने बिस्तर के नीचे छिपा दिया। जल्दी ही वह उसका एक क़रीबी साथी बन गया।

कुछ दिनों बाद पिता ने उसके बिस्तर के नीचे रहने वाले अजीब साथी को खोज निकाला। असल में एक तेज़ फुफकार सुनाई पड़ने पर उन्होंने इसकी वजह खोजने की कोशिश की थी। 'जब मेरे पिताजी ने यह अजीब सी आवाज़ सुनी, तो घुटनों के बल झुककर देखा कि यह है क्या?' सद्‌गुरु बताते हैं, 'मैंने उस साँप को काँच के एक बड़े जार में रखा हुआ था, जो ट्यूब-लाइट वालों ने मुझे भेंट में दिया था। इसमें मैं साँप रख सकता था और जार का मुँह आंशिक रूप से बन्द कर सकता था। मैं उसे दिनभर जार में रखता। शाम को जब स्कूल से लौटता, तो उसे बाहर कहीं ले जाता और घुमा-फिरा कर वापस जार में डाल देता। मेरे पिता साँप देखकर भौंचक्के रह गए। जब मैं घर लौटा, तो वे गुस्से से पागल हो रहे थे। बेशक वे डरे हुए भी थे। घर में हर कोई कुर्सी या सोफ़े पर खड़ा था।'

जग्गी की समझ में नहीं आया कि आख़िर इतना हंगामा क्यों हो रहा है? यह सच था कि उसका साँप बारह फुट लंबा कोबरा था। कहने की ज़रूरत नहीं है कि वह ख़ूबसूरत प्राणी उसका दोस्त था। उसने बड़े बेमन से साँप की जगह बदल दी। उसे बाहर फेंक दिए जाने के परिवार के सख़्त हुक़्म की परवाह न करते हुए उसने साँप के लिए एक बड़ा पिंजरा बनाया और उसे अपनी छत पर रखा। यह साँप तीन साल उसके साथ रहा। सौभाग्य से इस दौरान परिवार का कोई सदस्य छत पर नहीं गया।

आगे चलकर उसे साँपों के साथ अपने गहरे जुड़ाव की वजह का पता चला। उसे एहसास हुआ कि यह उसके एक पिछले जन्म की विरासत थी। लेकिन बात इतनी ही नहीं थी। वे अक्सर समझाते हैं कि भारतीय परम्परा में साँप और गाय के लिए आदर भाव निरा अंधविश्वास नहीं है। सद्‌गुरु का कहना है कि हर मनुष्य अपने अस्तित्व के विकास के दौरान कभी न कभी साँपों और गायों का जीवन जी चुका है। 'मनुष्य जीवन का एक पहलू है, *कुंडलिनी*-ऊर्जा। गति और निश्चलता में साँपों के साथ इसकी समानता

इसकी प्रकृति को उजागर करती है। एक और महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि किसी प्राणी के अस्तित्व के विकास में सर्प-योनि एक महत्त्वपूर्ण चरण है। जैसे कि शरीर के विकास की प्रक्रिया में बंदर एक महत्त्वपूर्ण चरण है। यही बात गाय के मामले में भी है। इसीलिए इस संस्कृति में यह माना जाता है कि आपको इन दोनों में से किसी को मारने की इजाज़त नहीं है। अगर भारत में आपको कोई मरा हुआ साँप मिल जाए, या किसी साँप को मारना पड़े, तो आपको ठीक तरह से उसका अंतिम संस्कार करना चाहिए। साँप का हमेशा उचित ढंग से अन्तिम संस्कार किया जाता है, क्योंकि जीव या प्राणी के दृष्टिकोण से यह मनुष्य के काफ़ी पास है। साँप मारने को हमेशा हत्या माना गया है।'

जग्गी की साँपों से मुठभेड़ हमेशा इतनी दोस्ताना नहीं रही। एक बार पहाड़ी पर जाते हुए जब उसने चट्टान की दरार से एक कोबरा को खींचा, तो एक की जगह दो लिपटे हुए साँपों को देखकर वह चौंक गया। इससे पहले कि वह कुछ समझ पाता, दूसरे कोबरा ने हमला कर दिया। इसके ज़हरीले दाँत तीन बार उसके पैर में गड़ गए, आख़िरी बार तो ख़तरनाक ढंग से। क्योंकि इस बार पैर की उँगलियों के बीच के माँस में दांत चुभे थे। वे कहते हैं, 'जब आपके शरीर में ज़हर प्रवेश करता है, तो अलग तरह का दर्द होता है। यह दर्द इंजेक्शन जैसा होता है। मैं जान गया था कि यह मेरे शरीर में पहुँच चुका है। लेकिन कितना, यह मुझे मालूम नहीं था। कोबरा के काटने के बारे में मुझे यह जानकारी थी कि इससे ख़ून जमने लगता है। हृदय को ख़ून पम्प करने में परेशानी होती है। जहाँ तक मुझे पता था, काली चाय पीने से इस प्रक्रिया की गति धीमी हो जाती है।'

वह और देर नहीं कर सकता था। उसने पहले साँप को छोड़ दिया। दूसरे से छुटकारा पाकर अपनी साइकिल पर सवार होकर तेज़ी से उसने घर की तरफ़ भागना शुरू किया। रास्ते में जो पहला घर दिखाई दिया, वो वहाँ रुक गया। उसने घर की महिला को अपनी दुर्दशा की कहानी सुनाई और उससे पाँच-छह कप बिना दूध की चाय देने को कहा। यह घटना सुनकर वो हैरान रह गई और साथ ही इस विचित्र अनुरोध से चौंक गई, लेकिन उसने जग्गी की बात मान ली। केतली भर चाय पीकर जग्गी जैसे-तैसे अपने घर पहुँचा।

उसने परिवार में किसी को इस बारे में नहीं बताया। 'पहले मैंने सोचा कि अपने पिता को इसकी जानकारी दे दूँ। बतौर डॉक्टर वे मुझे अस्पताल ले जा सकते थे या कुछ और कर सकते थे। तभी मैंने सोचा छोड़ो, जाने दो। मेरी पलकें कुछ भारी थीं और झुक रही थीं, लेकिन वैसे मैं ठीक-ठाक था। मैंने सोचा, ज़रा देखूँ होता क्या है।' जग्गी ने कुछ योगासन किए, जल्दी से खाना खाया और सो गया। बारह घंटे बाद जागा। काली चाय उसके लिए कारगर साबित हुई थी।

परिवार में एक ऐसा इंसान था, जिससे शायद जग्गी को ऐसे ख़तरनाक और मनमौजी तरीक़े विरासत में मिले थे। परिवार के सभी बच्चे अपनी छुट्टियाँ परनानी के घर पर बिताया करते थे। उन्हें 'शैतान की खाला' कहा जाता था। वे परिवार की असली विद्रोही थीं - एक ऐसी महिला जो अपने समय के रीति-रिवाजों की बिलकुल परवाह नहीं करती थीं। उनके धनवान पति के पास कई एकड़ ज़मीन थी, लेकिन उस महिला ने एक छोटा मंदिर बनवाने के लिए ज़िद करके दूसरे की ज़मीन चुनी। सद्गुरु कहते हैं, 'वे मानती थीं कि कोई भी इंसान ज़मीन का मालिक नहीं हो सकता। तेलुगु में एक कहावत है, "सिर्फ़ तीन फ़ुट चौड़ी और छह फ़ुट लम्बी ज़मीन पर ही आपका हक़ है," जहाँ आपको दफ़नाया जाना है।'

उनका बर्ताव परिवार को शर्मिंदगी में डाल देता था, लेकिन उन्होंने इसकी परवाह नहीं की। 'वे परिवार के लिए कलंक थीं और सबको काँटे की तरह चुभती थीं।' वे कहते हैं, 'आप उन्हें न तो भूल सकते थे, न ही अनदेखा कर सकते थे, क्योंकि वे लोगों से घिरी रहती थीं। अगर वे कहीं चली जातीं, तो लोग उन्हें भूल सकते थे। तब हम यह कह सकते थे कि वे मर गईं। लेकिन वे तो वहीं रहकर अपना ख़ुद का साम्राज्य चलाती थीं।'

उनके बावलेपन के चर्चे दूर-दूर तक फैल गए थे। वे एक सौ तेरह साल की उम्र तक ज़िंदा रहीं। उन्होंने अपने बच्चों और यहाँ तक कि अपने कुछ नाती-पोतों की भी मौतें देखीं थीं। अगर उनकी मौत पहले हो जाती, तो यह ख़ुद उनके लिए और उनके परिवार के लिए राहत की बात होती। लेकिन उन्हें जीवन से अथाह प्रेम था, इसलिए उन्हें जल्दी छुटकारा नहीं मिल सका। सद्गुरु कहते हैं, 'चौदह साल की उम्र से ही उन्होंने तम्बाकू खाना शुरू कर दिया था और ज़िंदगी भर खाती रहीं। एक सौ ग्यारह साल की उम्र

में उन्हें गले का कैंसर हो गया। उन्होंने इलाज करवाने से इनकार कर दिया। लिहाजा वे दो साल बाद बिना किसी इलाज के मर गईं। बहुत से लोग तो उनका नाम भी नहीं जानते थे। बूढ़ी होने पर कूल्हे में दर्द की वजह से वे लंगड़ाकर चलती थीं। इसलिए लोग उन्हें "कुंटम्मा," यानी लंगड़ी औरत कहा करते थे। किसी को उनका नाम मालूम न था, क्योंकि एक सौ तेरह वर्षों के बाद आपका नाम भला कौन याद रखेगा?'

सद्‌गुरु के जेहन में अपने परिवार की इस सनकी और ठसकेदार सदस्य की यादें बड़ी सजीव हैं। 'मैंने अपने परनाना को नहीं देखा। वे बहुत पहले स्वर्ग सिधार चुके थे। पर मेरे नाना शहर के सबसे धनवान आदमी थे। किसी ने उन्हें बता दिया होगा, "ग़रीबों को भोजन कराने से आप सीधे स्वर्ग जाएँगे।" इसलिए रोज़ सुबह वे हाज़िरी का रजिस्टर निकालते। शहर के सारे भिखारी – दो सौ के क़रीब – वहाँ आकर एक वक़्त का भोजन कर सकते थे। रजिस्टर में अपना नाम लिखवाए बिना उन्हें खाना नहीं मिलता था। मेरे नाना रोज़ सुबह घर के सामने बैठकर यह सब देखा करते थे। वे जानना चाहते थे कि कितने लोगों ने खाया। इसका रिकॉर्ड रखा जाता था। और भी बहुत से लोग उनके पास आते रहते थे, क्योंकि शहर के ज़्यादातर लोग उनके क़र्ज़दार थे। वे क़र्ज़ या उसका ब्याज चुकाने आते थे। मुझे पूरा यक़ीन है कि अगर उनके पास पैसा नहीं होता, तो कोई उनके पास न फटकता। लोग लगभग गिड़गिड़ाते हुए उनके पास आते थे, क्योंकि नाना के पास पैसा और ताक़त थी। यह सब कुछ सामने वाले दरवाज़े पर हुआ करता था। इस नापसन्द काम को निबटाने के बाद लोग आमतौर पर पिछले दरवाज़े की ओर चले जाते थे। वहाँ मेरी परनानी का शासन चलता था। वे वहाँ एक ख़ास अंदाज़ में बैठी होती थीं, जिसकी वजह से लोगों को वे घमण्डी लगती थीं। हालाँकि उन्होंने कभी किसी से रूखेपन से बात नहीं की। बस, उनके बैठने का ढंग ही वैसा था।'

सामने के दरवाज़े पर जहाँ जात-पाँत की अहमियत थी, वहीं पिछले दरवाज़े के नियम बिलकुल अलग थे। 'सामने के दरवाज़े पर अगर आप ऊँची जाति के हैं, तो आपको इज़्ज़त से पैसा दिया जाता था। अगर आप छोटी जाति के हैं, तो पैसा फेंककर दिया जाता था। लेकिन पिछले दरवाज़े पर जो भी आते, उन्हें वो बूढ़ी महिला बिना किसी भेदभाव के गले लगाती थीं।'

सद्‌गुरु को याद है कि परनानी की 'तेज़ हँसी' कैसे समूची गली में गूँजती थी। 'उस ज़माने में जब औरतों को हँसना तो दूर, बोलने की भी आज़ादी नहीं थी, यह बदनामी से कम नहीं था। वे जीवन को इतनी गहराई से देखती थीं, जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। इसलिए वे इस तरह हँस सकती थीं। उन्हें अपने आसपास हर कोई निरा मूर्ख नज़र आता था।'

जग्गी परनानी के घर छुट्टी मनाने के लिए ख़ूब उत्साहित होता था। उन्हें याद है कि वे बहुत शानदार ढंग से कहानी सुनाती थीं। 'जब हम गर्मी की छुट्टियों में तीस-चालीस दिनों के लिए वहाँ जाते, तो हमारे वहाँ रहने तक उनकी एक ही कहानी चलती रहती। हर दिन शाम को हम कहानी सुनने के लिए इकट्ठा होते। वे कहना शुरू करतीं, "एक दिन एक राजकुमारी आई..." और धीरे-धीरे अपने बालों में कंघी फेरने लगतीं। एक ही कहानी पूरे महीने या उससे ज़्यादा समय तक चलती रहती थी।'

उनका पूजा करने का तरीक़ा परम्परा से बिलकुल हट कर था। अपने पूजाघर में वे विधि-विधान को छोड़ एक अलग क़िस्म की बेफ़िक्री से पूजा में लगी रहतीं थीं, जो रीतियों के हिसाब से अधार्मिक माना जा सकता था। कभी-कभी जग्गी उनके पूजाघर में जाकर बैठ जाता था, लेकिन इस धृष्टता के लिए उसे कभी डाँट नहीं पड़ी। वह अक्सर उनको रोते-हँसते, नाचते-गाते, अपने आराध्य को किसी क़रीबी दोस्त की तरह बुलाते, बात करते और उनकी तरफ़ पैरों से फूल उछालते देखता रहता।

वे कहते हैं, 'मैंने उनको पूरी तरह से उल्लासपूर्ण और आनन्द विभोर अवस्था में देखा है। वे अक्सर पूजाघर में रहती थीं। भारतीय परिवारों में, धन-दौलत के साथ-साथ पूजाघर में देवी-देवताओं की संख्या भी बढ़ती जाती है। यह काफ़ी धनवान परिवार था, इसलिए हमारे यहाँ दर्जनों देवी-देवता थे। चाँदी के, सोने के, हर तरह के। परनानी के बाल काफ़ी लम्बे, कूल्हों के नीचे तक थे और वे उनको खुला छोड़ दिया करती थीं। वे नाचती-गाती रहतीं। उनकी आँखों से आँसू बहते रहते मगर वे पागलों की तरह हँसती रहतीं। अपने पैरों के अँगूठों से फूल उठाकर देवी-देवताओं की तरफ़ उछालतीं। मैं नहीं जानता था कि वे ऐसा क्यों किया करती थीं, लेकिन हर कोई उनके क़रीब रहना पसन्द करता था, क्योंकि वे उत्साह से भरी हुई थीं। सबसे बड़ी बात यह कि वे ख़ूब खुलकर हँसती थीं।'

सद्गुरु ने परनानी को याद करते हुए आगे बताया कि वे कैसी असाधारण महिला थीं। 'वे बिलकुल तर्कसंगत नहीं लगती थीं - ऐसा इंसान, जिसे आप अपने परिवार में नहीं चाहेंगे। वे सबके लिए एक परेशानी थीं। चूँकि वे अंतर्मन में देखने वाली महिला थीं, इसलिए उन्हें ऐसी चीज़ों का ज्ञान था, जिनका कोई दूसरा पता नहीं लगा सकता था। वे इन बातों को किसी को खुलकर नहीं बता सकती थीं, क्योंकि एक भी ऐसा इंसान नहीं था, जिससे वे बात कर सकतीं। इसलिए वे हँसकर रह जातीं। उनको सभी निरे मूर्ख नज़र आते थे, क्योंकि जो वे देख पाती थीं, दूसरे लोग नहीं देख सकते थे।' एक बार जग्गी ने उनसे पूछा, 'आप यह सब क्या कर रही हैं?' वे बोलीं, 'कोई बात नहीं, एक दिन तुम समझ जाओगे।'

जग्गी एक लम्बे अरसे के बाद उनकी बातें समझ पाया। लेकिन उस छोटी उम्र में भी परनानी के बर्ताव से उसे कोई झटका नहीं लगा, बल्कि इसमें उसे मज़ा ही आता था। अपनी परनानी की कुछ रीति-रिवाज़ विरोधी भावनाएँ वो भी साझा करता था। उसमें पारम्परिक रस्मों में बैठ पाने का धीरज नहीं था। वो पक्का नास्तिक था, परिवार के साथ मंदिर में जाने से मना कर देता था और अक्सर बाहर जूते-चप्पल की रखवाली करने वाले के पास छोड़ दिया जाता था। वहाँ होने वाली चीज़ों को देखकर उसे पक्का यक़ीन हो गया कि पारम्परिक पूजा-पाठ में कोई भारी गड़बड़ है। 'मैं ऐसी किसी चीज़ में यक़ीन नहीं करता हूँ, जो मुझे नज़र नहीं आती। मेरे साथ यह समस्या किशोरावस्था से नहीं, बचपन से ही थी। बहुत छुटपन से ही मैं अपने आसपास होने वाली बातों पर तब तक विश्वास नहीं करता था, जब तक मैं उन्हें देख या समझ न लेता। इसलिए चार या पाँच साल की उम्र में ही मैंने अपने माता-पिता के साथ मंदिर जाने से मना कर दिया। वे बहुत धार्मिक प्रवृत्ति वाले नहीं थे। वे साल में बस एक या दो बार ही मंदिर जाते थे। फिर भी मैं मना कर देता था। मेरे मन में सवाल थे। वे मेरे सवालों का जवाब देने के लिए कभी तैयार नहीं हुए, इसलिए मैं कभी मंदिर के अंदर नहीं गया। मुझे हमेशा चप्पलों की देखभाल करने वाले की निगरानी में छोड़ दिया जाता था। वे अपने जूते-चप्पल सौंपने के साथ मुझे भी उसे सौंप देते। वे उससे कहते, 'इसका ध्यान रखना वरना यह कहीं भाग जाएगा।' इसलिए चप्पल वाला एक हाथ से मुझे पकड़े रहता और दूसरे हाथ से अपना काम करता। वो जानता था कि अगर उसने कहीं और देखा, तो मैं भाग जाऊँगा।

उसकी संगत में मैंने भारतीय जूते-चप्पल की समस्या के बारे में बहुत कुछ जाना। बरसों बाद ईशा केन्द्र में मैंने जिस सबसे पहली चीज़ का पक्का इंतज़ाम किया, वह यह कि हर कोई अपने जूते-चप्पल कैसे रखे।'

*उस रात उसने खाना भी नहीं खाया और बोतल की सारी दवाई गटक कर लेट गया। फिर इंतज़ार करने लगा कि देखें, आगे क्या होता है? तीन दिन बाद उसकी नींद पिता के अस्पताल में खुली।*

खिलखिलाते हुए वे आगे कहते हैं, 'आज हम बड़े गर्व से कह सकते हैं कि आठ से दस लाख लोग हमारे समारोहों में आते हैं, लेकिन कभी एक चप्पल भी गुम नहीं होती। मैं हमेशा कहता हूँ, "यह ऐसा काम है जो मैंने बचपन में सीखा।" मुझे बहुत पहले से ही जूते-चप्पलों की गम्भीर समस्या की जानकारी है।'

जूते-चप्पल के स्टॉल पर बैठकर जग्गी ने दूसरी बातों पर ग़ौर करना शुरू किया। 'आठ-नौ साल का होने पर मुझमें कौतूहल जागा कि सभी लोग भगवान से बात करने के लिए मंदिर जाते हैं! मैं जानना चाहता था कि उससे मिलने के बाद वे कैसे हो जाते हैं। इसलिए मैं एक बड़े मंदिर के बाहर बैठ गया और बाहर निकलने वाले हर किसी को बहुत ध्यान से देखने लगा। मैंने अधिकतर यही पाया कि जब वे बाहर आते, तो मंदिर में देखी किसी चीज़ के बारे में गपशप करते होते थे। या जब उन्हें पता चलता कि उनके जूते कोई और पहन कर चला गया है, तो इस दुनिया को और उसे बनाने वाले को कोसने लगते। कोई ऐसा कभी नहीं सोचता था, "मेरे जूते भगवान ने ले लिए, क्योंकि उन्हें शायद इनकी ज़रूरत थी।" लेकिन नहीं, लोग तो सारी दुनिया को कोसने लगते थे। मैंने हमेशा देखा कि रेस्टोरेन्ट से बाहर आने वालों के चेहरे मंदिर से निकलने वालों से ज़्यादा शांत और ख़ुश नज़र आते थे। ईश्वर और डोसा की प्रतियोगिता में निश्चय ही डोसा जीतता था।'

जग्गी को जाति के आधार पर भेदभाव किए जाने से नफ़रत थी। इसी वजह से जब कोई पण्डित परिवार में पूजा कराने आता, तो वो भड़क जाता। बाद में वो सोचता कि क्या कभी-कभार उसकी निंदा लोगों को

बेवजह तकलीफ़ पहुँचाती थी? लेकिन उस वक़्त वो ख़ुद को रोक नहीं पाता था। खुले-आम या दबे-छिपे ऊँच-नीच का बर्ताव देखकर उसका ख़ून खौल उठता। उसको यह साफ़ समझ में आता था कि ये कर्मकाण्ड आध्यात्मिक लालसा से ज़्यादा इंसान की असुरक्षा की भावना से जुड़े हुए हैं। 'मैंने देखा कि डर या लालच ही इस सब पूजा-पाठ का आधार है। उस समय भी मैं जानता था कि इसे आध्यात्मिकता नहीं कह सकते। यह बस इंसान की ख़ुद को सुरक्षित रखने की लालसा थी, जिसने उसे स्वर्ग की तरफ़ मोड़ दिया था। लेकिन यह उपाय कारगर भी नहीं था। हमारा देश इसकी जीती-जागती मिसाल है कि यह तरीक़ा कारगर नहीं है। हमारे पास लगभग तीस लाख से भी ज़्यादा देवी-देवता, हर तरह के कर्मकाण्ड और हर तरह की प्रार्थनाएँ हैं, जिनकी जानकारी इस धरती पर किसी और को नहीं है। फिर भी यहाँ के आधे लोगों को भरपेट खाना नहीं मिलता। सिर्फ़ वही लोग कुशल हैं, जिन्होंने समझदारी से अपना जीवन चलाया है। इसलिए मैंने पाया कि अपना वजूद बनाए रखने के लिए आपको सिर्फ़ हाथ-पैरों और दिमाग़ की कुछ कोशिकाओं का इस्तेमाल सीखने की ज़रूरत होती है। जीवित रहने के लिए हमें भगवान की ज़रूरत नहीं है। अपना धन्धा चलाने के लिए या अपने पैसे या बच्चों की देखभाल के लिए आपको अपने जीवन में ईश्वर को लाने की ज़रूरत नहीं है।'

एक और शुरुआती लक्षण था - अनासक्ति का भाव, जिसका असर उसके क़रीबी रिश्तों पर भी पड़ा। जग्गी तीव्र पारिवारिक भावनाओं या किसी क़िस्म के गहरे लगाव से अछूता था। उसमें अपने परिवार के लिए प्रेम तो था, लेकिन रिश्तों को लेकर उसमें इतनी स्पष्टता थी कि एक बार उसकी माँ तक हैरान रह गईं। 'मेरी माँ एक बहुत समर्पित महिला थीं। उनके लिए उनके पति और चार बच्चे ही उनका सारा जीवन थे। उन्होंने अपने बारे में कभी नहीं सोचा, उन्होंने अपना जीवन हम पर ही न्योछावर कर दिया। इसलिए उनको कभी "मैं तुम्हें प्यार करती हूँ," या ऐसा कुछ कहने की ज़रूरत नहीं पड़ी। इसकी उनसे उम्मीद नहीं की जाती थी। मैंने उनसे ऐसा संबंध बना लिया था जिसमें परिवार में सबसे छोटा होते हुए भी मैं कई मायनों में उनका बड़ा भाई था। वे मुझसे ऐसी बातें साझा करती थीं, जो किसी और से नहीं करतीं। जब मैं इसका फ़ायदा उठाकर उनसे मज़ाक करता, तो वे हमेशा कहतीं, "मैं इन बातों को तुम्हें क्यों बता रही हूँ?" एक दिन कुछ आपसी

बातचीत के दौरान वे जरा ज़्यादा कोमल हो गईं और मेरे लिए अपना प्रेम प्रकट किया। वे साफ़-साफ़ यह नहीं कह रही थीं, “मैं तुम्हें प्यार करती हूँ,” लेकिन उन्होंने किसी तरीक़े से अपनी गहरी भावनाएँ ज़ाहिर कीं। मेरे लिए यह बस एक सच्चाई थी। मैंने उनसे सिर्फ़ यह पूछा, “अगर मैं पड़ोस के घर में पैदा हुआ होता, तो क्या तब भी आप मेरे लिए ऐसा ही महसूस करतीं?” इस सवाल से उनको बहुत ठेस लगी। वे रोती हुईं वहाँ से चली गईं। मेरा इरादा उन्हें चोट पहुँचाने का नहीं था। मैंने बस एक सीधा सा सवाल पूछा था। हर चीज़ के बारे में ऐसे सवाल मेरे अंदर चलते रहते थे।’

*सुशीला के इस चौदह साल के बेटे ने उनके अंदर अंतर्बोध का एक भाव जगा दिया था। कुछ देर बाद वे लौटकर आईं। वे बताते हैं – ‘वे आईं, अब भी उनकी आँखों में आँसू थे, उन्होंने झुककर मेरे पैर छुए और चली गईं। उनके भीतर एक तरह का आत्मबोध हुआ था। यह उनके लिए अच्छी बात थी।’*

जग्गी कुछ साबित नहीं करना चाहता था। लेकिन सुशीला के इस चौदह साल के बेटे ने उनके अंदर अंतर्बोध का एक अहम भाव जगा दिया था। कुछ देर बाद वे लौटकर आईं। वे बताते हैं, ‘वे आईं, अब भी उनकी आँखों में आँसू थे, उन्होंने झुककर मेरे पैर छुए और चली गईं। उनके भीतर एक तरह का आत्मबोध हुआ था। यह उनके लिए अच्छी बात थी। हम जिन चीज़ों से जुड़े होते हैं – हमारा शरीर, हमारे माता-पिता, हमारे बच्चे, हमारी पत्नी, हमारा पति, हमारा घर, वगैरह वगैरह – हमारी सोच और भावनाएँ उनसे बहुत गहराई से अपनी पहचान बना लेती हैं।’

जग्गी के बारे में शायद सबसे अजीब बात जो है – जिसकी जानकारी उसके परिवार और दोस्तों को अभी भी नहीं है – वो है मौत के बारे में सोचते रहना। आधी रात को वह अक्सर अपने घर से चुपके से खिसक जाता और मैसूर के स्थानीय क़ब्रिस्तान में पहुँच जाता। कभी-कभी वह अपने कुत्ते को (रूबी, जो एक वाटर स्पेनियल थी और बाद में सीजर, जो एक

जर्मन शेफ़र्ड था) घुमाने के बहाने चुपके से श्मशान पहुँच जाता। आत्माओं को लेकर उसमें स्कूली बच्चे जैसा जोश था। लेकिन उसके मन में मरने की प्रक्रिया को जानने की उत्सुकता उससे भी ज़्यादा गहरी थी। वह जली हुई लाशों, खोपड़ियों, शरीर से अलग हो चुके अंगों, और अंतिम संस्कार के डरावने मलबे को घंटों देखता रहता। कभी-कभी वह अलग हुए अंग को उठाकर सुलगती चिता पर वापस फेंक देता। अंतिम संस्कार में शोक प्रकट करने आए लोगों के जाने के बहुत देर बाद तक जग्गी वहीं आसपास बना रहता और बिना भावुक हुए सब कुछ देखता रहता।

जब वह नौंवीं कक्षा में था, तब स्कूल की छुट्टियों के दौरान सुचरिता नाम की उसकी एक सहपाठी की निमोनिया से मौत हो गई। शुरुआत में तो सहपाठियों को इस बारे में पता नहीं था। सुचरिता दशहरे की छुट्टियों के बाद नहीं लौटी। टीचर द्वारा उसका नाम पुकारे जाने पर, जग्गी और उसके दोस्त उसकी आवाज़ की नक़ल करके उसकी हाज़िरी लगवा दिया करते थे। बीस दिनों बाद उनको पता चला कि वह तो मर चुकी है। जग्गी को बड़ी हैरानी हुई। इस बात से उसे दुख महसूस नहीं हुआ, क्योंकि उसकी उस लड़की से घनिष्ठता नहीं थी, हालाँकि कभी-कभी जग्गी उसके लंच बॉक्स पर हाथ साफ़ कर दिया करता था। उसके मन में गहरी जिज्ञासा थी कि उसके साथ क्लास में इतने वर्ष बैठने वाली लड़की का क्या हुआ? सुचरिता के भाई से उसे मालूम हुआ कि अपने अंतिम दिनों में बेहोशी के दौरान वह अक्सर 'जग्गी' नाम लिया करती थी। इससे उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। सुचरिता को वाक़ई क्या हुआ था? वह कहाँ ग़ायब हो गई? अब वह कहाँ है?

पता लगाने का सिर्फ़ एक ही तरीक़ा था। एक दिन उसने अपने पिताजी के दवाख़ाने से गार्डिनल-सोडियम की अट्ठानवें गोलियाँ चुरा लीं। उसने इसके लिए ख़ूब सावधानी से तैयारी की। उसने कोई लिखित नोट नहीं छोड़ा। उसने ऐसे भावुक दिखावे की कोई ज़रूरत नहीं समझी। मगर उसके पास जो भी क़ीमती चीज़ें थीं, वह उसने अपने दोस्तों में बाँट दीं। एक स्कूली लड़के के लिहाज से वह काफ़ी सम्पन्न था। उसके जैसी संपत्ति की इच्छा उसके साथी भी रखते थे। मगर जग्गी के लिए यह त्याग का एक महान मौक़ा था। उसने अपनी तांबे की बेशक़ीमती गुलेल और साँप पकड़ने से हुई कमाई (एक सौ बारह रुपए की बड़ी रक़म) अपने दोस्तों में बाँट

दी। उसने अपना पालतू कोबरा और दूसरे साँप चामुण्डी पहाड़ियों पर छोड़ दिए और पालतू कछुआ कुक्कराहल्ली तालाब में। इस तरह उसने अपनी सारी भौतिक संपत्ति से मुक्ति पा ली। उस रात उसने खाना भी नहीं खाया और बोतल की सारी दवाई गटक कर लेट गया। फिर इंतज़ार करने लगा कि देखें, आगे क्या होता है?

*जग्गी के बारे में पूछने पर, उसने एक विशेषज्ञ की तरह उसे ऊपर से नीचे तक देखा, और भविष्यवाणी की कि यह लड़का सैंतीस साल की उम्र तक एक मंदिर बनाना शुरू करेगा। एक घोर नास्तिक और मंदिर? ज़ाहिर था कि उस आदमी के ज्योतिष ज्ञान में कुछ कमी थी।*

तीन दिन बाद उसकी नींद पिता के अस्पताल में खुली। वह सबकी घबराहट, आपाधापी में अस्पताल ले जाए जाने, और पेट की धुलाई के दौरान सोया रहा। माता-पिता के पूछने पर वह बुदबुदाया कि उसने ग़लती से नागफनी का फल खा लिया था। किसी को कभी भी सच का पता नहीं चला। जग्गी के लिए खीजने वाली बात यह थी कि उसे मौत के बारे में भी कुछ पता नहीं चल पाया। अगर कोई ध्यान देने वाली बात थी, तो यह कि अगले तीन महीने तक जब कभी भी वह हँसता तो हँसी बेक़ाबू हो जाती। उसने सोचा कि हो न हो, यह बोतल भर ज़हरीली गोलियाँ खाने का ही नतीजा है। इस हरकत का एक और नुक़सान यह हुआ कि वह पहले के मुक़ाबले काफ़ी ग़रीब हो गया था। उदारता दिखाते हुए उसने अपने दोस्तों को जो कुछ भी दिया था, वे उसे लौटाने में आनाकानी कर रहे थे। उसने तकाजे करके और धमकियाँ देकर उनमें से कुछ से आधी रक़म तो वसूल कर ही ली।

इस घटना के तीन दशक से भी अधिक वक़्त बीत जाने के बाद, जब उनके जीवन में कई नाटकीय मोड़ आ चुके हैं, हाल ही में सद्‌गुरु की मुलाक़ात फिर से स्कूल की उस मित्र से हुई। वे सच्चाई बयान करने के अंदाज़ में कहते हैं, 'वो क़रीब-क़रीब वैसी ही दिखती है। वही ऊँचाई, वही बनावट। वो आश्रम भी आ चुकी है। वो अब भी अपने पिछले जन्म के

कुछ शब्दों का प्रयोग करती है।' नई 'सुचरिता' अब उनसे आधी उम्र की है। उन्होंने उसे पहचाना कैसे? ज़ाहिर है, कार्मिक शरीर से। वे कहते हैं, 'कार्मिक शरीर पहचानना उतना ही आसान है, जितना एयरपोर्ट के 'बैगेज क्लेम' से अपना सामान पहचानना। हरेक इतना ख़ास और अलग होता है कि हम इसे कोई दूसरा नहीं समझ सकते।'

---

जब जग्गी चौदह साल का हुआ, तो उसके अंदर एक नया रुझान पैदा हुआ। वह राजनीति की तरफ़ आकृष्ट होने लगा। इसके साथ ही इंद्रियों के परे जो बोध उसे होते थे, वे अब घटने लगे। ये बोध फिर उम्र के पच्चीसवें साल में जाकर लौटे। अब उसके लिए सिर्फ़ बाहरी दुनिया मायने रखती थी। उसे सामाजिक न्याय की बहुत चिंता थी। क्रांति उसका प्रिय सिद्धांत हो गया था। यह उसके विद्रोही स्वभाव से मेल खाता था। उन दिनों की मनोस्थिति को वे 'उग्र विचार-प्रक्रिया' कहते हैं, जो ग़रीबी और भेदभाव जैसे मुद्दों के हल खोजने को प्रतिबद्ध थी।

उसकी संवेदनाएँ शुरुआत में प्रोफ़ेसर रामलिंगम के भाषणों से प्रेरित थी, जो स्कूल में उससे एक साल जूनियर सहपाठी के पिता थे। उसके एक-दो दोस्त भी उसके जैसी भावनाएँ रखते थे। यह ग्रुप बाद में देवानुर महादेव के महान प्रेरणादायक सान्निध्य से प्रभावित हुआ। वे मैसूर यूनिवर्सिटी के प्रसिद्ध लेखक, बुद्धिजीवी और क्रांतिकारी थे। महादेव ने एक छोटी लेकिन प्रभावशाली उग्रवादी पत्रिका *बंदाया* (क्रांति) की शुरुआत की थी। बाद में इसका नाम *नर-बंदाया* (मानव क्रांति) कर दिया गया।

दो साल तक जग्गी नक्सली गुटों को अपना समर्थन देता रहा। वह कई राजनैतिक प्रचार पत्रिकाओं का ग्राहक बन कर उनको पढ़ने लगा। जब यूनिवर्सिटी में एक लड़की के साथ किसी प्रोफ़ेसर के बुरे बर्ताव के कारण छात्र आंदोलन भड़क उठा, तो वह भी उसमें कूद पड़ा। हिंसा भड़क उठी और पुलिस को बुलाया गया। जग्गी पूरे शहर में मैनेजमेंट के ख़िलाफ़ तीखे पोस्टर लगाने के लिए आगे आया। यहाँ तक कि उसने कुछ पोस्टर पुलिस वैन पर भी लगाने का दुस्साहस किया। इसके लिए बड़ी हिम्मत चाहिए थी, जिसकी कमी जग्गी को कभी महसूस नहीं हुई। इसके चलते वह अपने साथियों से

शर्त भी जीत गया। एक पोस्टर चिपकाने का मतलब था बीस रुपए, और जग्गी ने पूरे सौ रुपए कमाए। वे बताते हैं, ‘ऊँघते, गप्पें मारते, सिगरेट के कश लगाते पुलिसवाले वैन के अंदर थे। रात के आठ से दस बजे के बीच का समय रहा होगा। बस इतना ही करना था कि चुपके से जाकर एक पोस्टर चिपकाओ और चलते बनो। थोड़ी दूर जाकर इंतज़ार करो। बाद में दूसरी दिशा से आओ, दूसरा पोस्टर चिपकाओ और चलते बनो। मैं वैन पर पाँच पोस्टर चिपकाने में कामयाब रहा। उनमें से आधे मैंने विंडशील्ड पर और बाक़ी बोनट पर चिपकाए। मैं तो सारे-के-सारे विंडशील्ड पर चिपकाना चाहता था पर ऊपर तक न पहुँच सका। खैर, मैंने पाँच पोस्टर चिपकाए और उस आंदोलन से सौ रुपए कमा लिए।’

मगर सोलह साल की उम्र तक उसका लगाव इससे ख़त्म हो गया। वह जिनसे ये मुद्दे साझा करता था, उनके आत्म-छलावे से उसे बेचैनी महसूस हुई। इनमें से कई लोग अपनी क्रांतिकारी राजनीति और अपनी निजी सुरक्षा के बीच की दरार से जानबूझ कर आँखें बंद किए हुए लगते थे। जग्गी ने मार्क्स को पढ़ना और चे-गुएवारा की सराहना करना जारी रखा, लेकिन ख़ुद को कठोर वामपंथ से अलग करने का फ़ैसला कर लिया था। उसे लगा कि कोई रचनात्मक विकल्प देखने के बजाए, उनमें बस तीव्र आक्रोश और घृणा थी। बरसों बाद, सद्गुरु के लिए वह एक महत्त्वपूर्ण क्षण था, जब उनसे उम्र में काफ़ी बड़े देवानुर महादेव ने, जो उनके क्रांतिकारी ज़माने के हीरो थे, अपने परिवार के साथ इनके एक ध्यान शिविर में हिस्सा लिया।

अपनी ज़िंदगी के राजनीतिक दौर को याद करते हुए वे कहते हैं, ‘मुझे इस रास्ते में कमियाँ साफ़ दिख रहीं थीं। इस दौर में मैं कुछ महत्त्वपूर्ण चीज़ें सीख सका, लेकिन इसने मुझे ज़्यादा दिनों तक प्रेरणा नहीं दी। मुझमें सक्रिय और गतिशील बने रहने के लिए बहुत उत्साह और जीवंतता थी। लेकिन कुछ भी प्रेरणादायक नहीं था - न कोई शख़्स, न कोई ऐतिहासिक या कोई दूसरी विशेष घटना। शायद मैं बहुत घमंडी था। मुझे नहीं मालूम।’

कुछ सोचकर वे इसकी वजह चीज़ों के प्रति अपने नज़रिए की स्पष्टता बताते हैं, जिसमें कोई निहित स्वार्थ नहीं होता। ‘मैं कभी भी संदेह करने वाला इंसान नहीं था। मेरे विचार से मेरा सबसे अहम पहलू स्पष्टता है। सभी चीज़ों के प्रति पूरी स्पष्टता। तो मुझे कमियाँ इसलिए दिखीं, क्योंकि

उसमें वाक़ई कमियाँ थीं। मैं उन्हें खोज नहीं रहा था। मैंने अपने जीवन में कभी किसी चीज़ को नहीं ढूँढ़ा। मैं सिर्फ़ देखता हूँ। और अब वही चीज़ मैं लोगों को सिखाने की कोशिश कर रहा हूँ। अगर आप सचमुच आध्यात्मिकता को जानना चाहते हैं, तो कुछ भी मत ढूँढ़िए। लोगों को लगता है कि आध्यात्मिकता का मतलब ईश्वर की खोज करना है। मैं उन्हें कहता हूँ कि कुछ भी मत खोजिए। बस बिना किसी पूर्वाग्रह और पक्षपात के देखना सीख लें। तभी आप जान पाएँगे कि असलियत क्या है। एक साधक किसी चीज़ को नहीं खोजता, वह सिर्फ़ देखता है। अगर आपमें सहजता से देखने का गुण विकसित नहीं होता,तो आपको बाक़ी सब कुछ नज़र आएगा, असलियत नहीं।'

इन्हीं दिनों एक घुमक्कड़ ज्योतिषी उनके घर की तरफ़ आया। जग्गी की माँ अपनी पहली बेटी की शादी की सम्भावना के बारे में जानना चाहती थीं, इसलिए उन्होंने उसे अंदर बुलाया। लेकिन उन्हें लड़कियों का एक अजनबी से सीधे मिलना पसन्द नहीं था, लिहाजा उन्होंने अपने बेटे जग्गी को उससे मिलने को राज़ी किया। हालाँकि ऐसी बातों में उसकी ज़रा भी दिलचस्पी नहीं थी, फिर भी वह बेमन से तैयार हो गया। जब उस आदमी ने परिवार के बारे में तमाम अंदरूनी बातें बताईं तो जग्गी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने जग्गी की बड़ी बहन के बारे में कुछ भी कहने से इनकार कर दिया, लेकिन दूसरी बहन के लिए बताया कि अगली मई तक उसकी शादी होगी। जग्गी के बारे में पूछने पर, उसने एक विशेषज्ञ की तरह उसे ऊपर से नीचे तक देखा, और भविष्यवाणी की कि यह लड़का सैंतीस साल की उम्र तक एक मंदिर बनाना शुरू करेगा।

एक घोर नास्तिक और मंदिर? ज़ाहिर था कि उस आदमी के ज्योतिष ज्ञान में कुछ कमी थी। घरवालों ने इस बात को हँसी में उड़ा दिया। जग्गी ने तो सबसे ज़ोर का ठहाका लगाया। फिर भी, उसकी बहन की शादी अगले साल 25 मई को हो गई। बड़ी बहन आध्यात्मिक मार्ग चुन कर रामकृष्ण मिशन के शारदा मठ से जुड़ गई। बहरहाल, जग्गी ने मंदिरों से दूरी बनाए रखी।

उसकी बड़ी बहन का आध्यात्मिक जीवन अपनाने का फ़ैसला घरवालों को नहीं जँचा। मंजू हमेशा से बेफ़िक्र और थोड़ी फ़ैशन-परस्त युवती थी।

भौतिकता की तरफ़ उसके झुकाव को कम करने के लिए डॉ. वासुदेव उसे अपने साथ स्थानीय रामकृष्ण मठ ले जाने लगे थे। हालात बड़ी तेज़ी से बदल गए। देखते ही देखते मंजू की कपड़ों की अलमारी में ठसाठस भरी आधुनिक पोशाकों की जगह चार साधारण साड़ियों ने ले ली। वह रामकृष्ण मिशन बार-बार जाने लगी। अचानक आए इस बदलाव से परेशान डॉ. वासुदेव और उनकी पत्नी ने अपनी बड़ी बेटी के लिए शादी के रिश्ते तलाशने शुरू कर दिए। पर मंजू इस बात पर अड़ी हुई थी कि शादी से उसका कोई लेना-देना नहीं है। उसकी दिलचस्पी कहीं और है।

एक बार जब माता-पिता बेंगलुरु गए हुए थे, तो जग्गी ने मंजू को चुपके से घर की अलमारी से अपना स्कूल लीविंग सर्टिफ़िकेट और मार्क-शीट निकालते देखा। वह तुरन्त भाँप गया कि कुछ चल रहा है। जग्गी तो अक्सर घर से भागने की योजनाएँ बनाता रहता था, इसलिए ताड़ गया कि घर छोड़ते समय अपनी पहचान के ये अहम काग़ज़ात साथ होने चाहिए। उस दिन जब मंजू टाइपिंग स्कूल जाने के बहाने घर से निकली, तो जग्गी ने जाकर उसकी अलमारी देखी - उसकी चारों साड़ियाँ ग़ायब थीं।

*मैं वहाँ बैठा रहता और उलझन से भरे उन प्राणियों को अपनी समस्याएँ लेकर आते देखता रहता। मैं ही एक ऐसा झक्की था, जिसे कोई समस्या नहीं थी। मैं उनकी हर समस्या का अपने ही तरीक़े से निराला हल बताता।*

उसको मंजू के आध्यात्मिक रुझान से कोई ख़ास लगाव न था। (उसका मानना था कि मंजू का रामकृष्ण मिशन के बजाय क्रांति से जुड़ना बेहतर होता।) लेकिन घर से भागने की इच्छा रखने वालों से उसने अपनी सहानुभूति बनाए रखी। मंजू को घर से भागने में सफल होने के लिए जग्गी ने उसे वक़्त दिया। उसके बाद उसी शाम को पाँच बजे उसने फ़ोन पर बेंगलुरु में अपने माता-पिता को सब कुछ बता दिया। खलबली मच गई। वासुदेव परिवार उल्टे पाँव लौट आया। नाराज़ परिवार की ज़ोरदार खोजबीन के बाद, मंजू के त्रिशूर के शारदा मठ में होने का पता चला। इससे पहले कि बहुत देर

हो जाए, अब यह परिवार की इज़्ज़त बचाने और 'गुमराह' लड़की को वापस घर लाने की बात थी। उन्हें मठ में घुसने नहीं दिया गया, तो लौटना पड़ा। वे बेहद गुस्से में थे, लेकिन हार चुके थे। जग्गी को याद है कि उसके पिता उस घटना से टूटकर तीन दिन तक रोते रहे।

एक महीने के बाद जब गुस्सा शान्त हुआ और उसकी जगह 'भगवान की इच्छा' ने ले ली, तब वासुदेव परिवार मंजू से मिला। वह अब अपनी नई ज़िंदगी से संतुष्ट एक ब्रह्मचारिणी थी। उसके माता-पिता के पास हालात से समझौता करने के सिवाय और कोई चारा न था। आख़िरकार परिवार में हमेशा से आध्यात्मिक प्रवृत्ति रही थी - उसकी परनानी के बारे में सोचकर उन्होंने ख़ुद को समझाया। इसके अलावा परिवार में तीन और बच्चे तो थे ही, जिनसे उन्हें उम्मीद थी कि वे दुनियादारी निभाते हुए उनका नाम रोशन करेंगे। उनके भाग्य में और क्या लिखा हुआ था, इसकी उन्हें ज़रा भी जानकारी नहीं थी।

एक नया दौर शुरू हुआ। घर में जग्गी के करियर के विकल्पों के बारे में बातें होने लगीं। तभी एक सुबह जग्गी ने सेना में भरती होने का फ़ैसला किया। जब उसने नेशनल डिफ़ेंस अकादमी की परीक्षा दी, तब तक उसने बारहवीं की परीक्षा पास नहीं की थी। सेना में जाने का फ़ायदा साफ़ ज़ाहिर था। उसे लगा कि इससे ज़िंदगी में वह सब मिल जाएगा, जो वह चाहता था - हैंग-ग्लाइडिंग, पहाड़ों पर चढ़ना, ट्रैकिंग, हॉकी। जैसा कि बाद में उन्होंने कहा, 'मैंने तो बस इतना ही सोचा था कि मेरे रोमांचक कारनामों के लिए वे मुझे पैसे देंगे।'

शारीरिक-क्षमता और रुझान परीक्षा में वह आसानी से पास हो गया। इसके बाद उसे इंटरव्यू के लिए भोपाल बुलाया गया। इंटरव्यू वाले कमरे में तीन ब्रिगेडियर बैठे थे, बड़ी-बड़ी मूँछों वाले, चमकते तमगे लगाए हुए। उसके बैठते ही याद दिलाया गया कि उसे बैठने की इजाज़त नहीं दी गई थी। इस तरह शुरुआत ही ख़राब हो गई। बात आगे और तेज़ी से बिगड़ती चली गई। यह जानकर कि उसकी भूगोल में दिलचस्पी है, एक ने स्कॉटलैंड की वह जगह पूछी, जो मछली पकड़ने के लिए मशहूर है। जग्गी ने जवाब दिया कि उसे नहीं मालूम। साथ ही मस्ती में यह भी कह दिया कि तीन महीने में वह उनको थोड़ा-बहुत भूगोल पढ़ाने लायक़ हो जाएगा। कहना न होगा, यह

जवाब इंटरव्यू लेने वालों को हज़म नहीं हुआ। जग्गी ने बिना ज़्यादा निराश हुए सेना में नौकरी करने का सपना छोड़ दिया।

उधर, घर पर जग्गी के लगातार विरोधी रवैए से डॉ. वासुदेव निराश होने लगे थे। वे अपने बेटे को डॉक्टर बनाना चाहते थे। सद्गुरु कहते हैं, 'इसके लिए वे इतने ज़्यादा उत्सुक थे कि जब कभी मुमकिन होता, तो बातचीत के दौरान अपने सारे पुराने नोट्स निकाल लाते। अपने समय में वे कॉलेज में प्रथम आए थे। उन्होंने न सिर्फ़ अपनी पाठ्य-पुस्तकें सँभालकर रखी हुई थीं, बल्कि सारे नोट्स और मरीजों की केस हिस्ट्री भी रखी हुई थी। उन्होंने सब कुछ अपने साफ़ और छोटे अक्षरों में लिख कर रखा हुआ था। वे हमें बताया करते थे कि मैंने यह सब इसलिए रखा हुआ है कि तुममें से कोई एक डॉक्टरी पढ़ेगा।'

जब डॉक्टरी की बात बिलकुल ख़त्म हो गई, तो इंजीनियरिंग दूसरा सबसे अच्छा विकल्प लगा। लेकिन जग्गी को वह भी नापसन्द था। किसी तरह परिवार की लाज रखने वाली साइंस और कॉमर्स की डिग्रियाँ लेना भी जब उसने नामंजूर कर दिया, तो पिता बहुत परेशान हो गए। क्या यह लड़का कभी भी समझदार नहीं होगा, कभी भी अपना रवैया नहीं सुधारेगा?

जग्गी का अगला फ़ैसला माता-पिता की चिंताओं को कम करने वाला नहीं था। उसने औपचारिक शिक्षा को छोड़ मैसूर यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी में अपने आप पढ़ने का फ़ैसला किया। वह सुबह नौ बजे घर से निकल जाता और रात आठ बजे से पहले घर न लौटता। जिस घर में उसे कुल का कलंक समझा जाता हो, वहाँ समय बिताने का कोई तुक भी नहीं था। जो खाने की शौकीन रहा हो, उसे उस साल अपने आहत स्वाभिमान की वजह से अधिकतर भूखा ही रहना पड़ा। नाश्ते और रात के खाने के बीच किताबें ही उसका एकमात्र सहारा हुआ करती थीं। उसने हर चीज़ पढ़ी। इसमें होमर, थॉमस मूर, पश्चिमी दर्शन और लोकप्रिय मेकैनिक्स भी शामिल थी। मेकैनिक्स के अध्ययन से उसे हैंग-ग्लाइडर बनाने की प्रेरणा मिली। 'मैंने इसे बाँस और कहीं से हाथ लगे पैराशूट सिल्क से बनाया। इसके बाद नंदी हिल्स से उड़ान भरने की कोशिश की।' उसने उड़ान तो भरी, लेकिन वो उम्मीद से पहले ही नीचे भी आ गया। इस कोशिश में उसके दोनों टखने टूट गए। बरसों बाद उसने एक अंग्रेज़ पायलट से हैंग-ग्लाइडिंग की ट्रेनिंग

ली, और आख़िरकार उड़ान भरने में सफल हुआ।

पैसा कोई समस्या नहीं थी। जग्गी हमेशा ही साधन-संपन्न रहा था। उसने अपने फितूर के किसी भी काम पर ख़र्च के लिए माता-पिता से कभी मदद नहीं ली। कबूतर पालने, पीठ के बल पानी की टंकियों पर चढ़ने और ऊटी से लाकर गायें बेचने जैसे ग़ैर-परम्परागत हुनर उसे काफ़ी आमदनी करा देते थे। एक वक़्त था जब उसके पास नक़द पैंसठ हज़ार रुपए थे। एक किशोर के लिए यह अच्छी ख़ासी रक़म थी। उसके पैसे अक्सर सामूहिक साइकिल अभियान और अपनी साइकिल को टिपटॉप रखने में ख़र्च होते थे। काफ़ी पैसे उसने साइकिल से मॉस्को जाने की अपनी आगामी महत्त्वाकांक्षी योजना के लिए अलग से रखे थे।

एक साल तक किताबी-कीड़ा होने का आनन्द उठाने के बाद जग्गी कॉलेज जाने को राज़ी हो गया। आख़िरकार अपनी माँ के आँसुओं के सामने वह हार गया, न कि जग्गी के ग्रेजुएट न हो पाने के पिता के दुख की वजह से, क्योंकि घर में बाक़ी सब ग्रेजुएट थे। लेकिन वह क्या पढ़ेगा, इसके लिए वह अड़ा रहा। उसकी ज़िद थी कि या तो वो अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ेगा, या फिर कुछ नहीं। 'भला कविताएँ पढ़कर तुम अपनी रोटी-रोज़ी कैसे कमा पाओगे?' सदा से व्यावहारिक पिता ने पूछा। लेकिन जिसके पास पैसा कमाने की योजनाओं की कभी कमी न रही हो, उसके दिमाग़ में रोज़ी के सवाल कभी फटकते ही न थे। जग्गी ने कहा, 'या तो साहित्य, या फिर लाइब्रेरी की ओर वापसी।' इस बात पर पिता को लगा कि साहित्य फिर भी थोड़ा बेहतर है।

जग्गी अगले तीन साल तक सिर्फ़ दिखावे के लिए मैसूर यूनिवर्सिटी का एक छात्र था। उसने साफ़ बता दिया था कि वह शाम वाली कक्षाओं में ही जाया करेगा। 'शाम की पढ़ाई छह बजे से रात साढ़े नौ बजे तक होती। मैंने तय कर लिया था कि दिन का वक़्त ख़ुद के लिए रखूँगा और शाम माता-पिता के लिए।' एक बार फिर उसका वक़्त कक्षा के मुक़ाबले बाहर ज़्यादा बीतने लगा। वह अपनी एक शिक्षक का लाड़ला नहीं बन पाया, जब उसने कक्षा में खड़े होकर कहा कि वे अपने नोट्स फ़ोटोकॉपी कराने के लिए दे दें। इससे शिक्षक की डिक्टेशन देने की तकलीफ़ कम हो जाती, और साथ ही जग्गी की कक्षा में बैठने की भी। वे कहते हैं, 'मैंने देखा कि

कक्षा में केवल डिक्टेशन ही होता था। और मेरा इरादा स्टेनोग्राफ़र बनने का क़तई नहीं था। मेरे दिमाग़ में हर समय लाखों सवाल हुआ करते थे। मैं हमेशा उनके जवाब देने वालों की तलाश में रहता था। इसलिए मैंने कहा कि मैं नोट्स लिखने को तैयार नहीं हूँ। लेकिन मेरे पास सवाल हैं। क्या आप उनके जवाब दे सकती हैं?’

इसमें हैरानी की कोई बात नहीं थी कि उसके प्रोफ़ेसर ख़ुशी-ख़ुशी अगले तीन साल के लिए उसे हाज़िरी लगाने से मुक्त करने को तैयार हो गए। कक्षा में उसके मौजूद रहने से माहौल तो बिगड़ता ही था। ‘इसलिए मैंने अपने शिक्षकों से एक समझौता कर लिया था। महीने के हर दिन वो मेरी हाज़िरी लगा दिया करते थे; महीने के आख़िरी दिन हाज़िरी रजिस्टर में दर्ज की जाती थी। सिर्फ उस दिन मैं कक्षा में आकर निश्चित कर लेता कि वे समझौते का पालन कर रहे थे।’

*अपनी अनियमित हाज़िरी और पढ़ाई के उल्टे-सीधे ढर्रे के बावजूद जग्गी ग्रेजुएट हो गया। उसने मैसूर यूनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी साहित्य में दूसरा स्थान भी हासिल कर लिया - इस बात ने उन सबको चौंका दिया, जो उसे जानते थे।*

कक्षाओं में हाज़िरी मिल जाने के बाद उसे बस इम्तिहान देने के लिए जाने की ज़रूरत थी। जब भी मुमकिन हुआ, उसने इम्तिहान दिया। लेकिन एक बार यह सम्भव नहीं हो पाया। ‘मैं अंडरग्रेजुएशन के दूसरे साल में था। इंटर-यूनिवर्सिटी फुटबाल मैच चल रहे थे। मैंने सोचा कि आधा घंटा मैच देख कर इम्तिहान देने चला जाऊँगा। मैंने पूरी तैयारी कर रखी थी। वहाँ बैठकर मैं मैच देखने लगा। देखते-देखते मैं इतना खो गया कि मैं मैच के ख़त्म होने तक उसे देखता रह गया। तब जाकर मुझे मालूम हुआ कि इम्तिहान भी ख़त्म हो चुका था।’

एक-दो शिक्षक ऐसे भी थे, जिनकी कक्षाएँ उसको प्रेरणा देने वाली लगती थीं। वह उनके लेक्चर सुनता, बाक़ियों के छोड़ देता। ‘मैंने अंग्रेज़ी साहित्य यह सोचकर चुना था कि यह मेरे क्रियाकलापों में कम दख़ल देने

वाला होगा।' वे हँसते हैं, 'मैंने सोचा कोई दूसरा विषय मेरी ज़िंदगी में बहुत ज़्यादा दख़ल देगा। मैंने सोचा था, साहित्य का मतलब है कि मैं बहुत सी कहानियाँ और कविताएँ पढ़ सकता था। लेकिन साहित्य के साथ मुझे समाजशास्त्र और भूगोल भी पढ़ने पड़े। भूगोल मुझे पसन्द था। यह उस ग्रह के बारे में था, जिस पर हम सब विचरण करते हैं। लेकिन समाजशास्त्र तो पूरी तरह से लोगों की राय के बारे था। यह मुझे इतना ज़्यादा बेवकूफ़ी भरा लगता कि मैं इस कक्षा में जाता ही नहीं था। आप तो जानते ही हैं कि हाज़िरी कैसे दर्ज होती है। मेरा नाम जे से शुरू होता है, लिहाजा यह पहले तीन मिनटों में ही पुकारा जाता था। कक्षा में तीन मिनट रुकना ज़रूरी था। वे तीन मिनट भी बहुत लम्बे लगते थे। उसके बाद मैं खिड़की से निकल कर चला जाता। खिड़कियाँ दरवाज़ों से भी बड़ी हुआ करती थीं। समाजशास्त्र की शिक्षिका ने मुझसे कहा कि यह बहुत असामान्य व्यवहार है और मैं बच्चों जैसी हरकतें करता हूँ। खिड़की से बाहर निकलना कोई मामूली-सी चीज़ नहीं, बल्कि "असामान्य" था! मेरे लिए खिड़की से निकलना असामान्य नहीं, बल्कि बस एक सुविधाजनक तरीक़ा था। लेकिन उस दिन से मैंने दरवाज़े से जाना शुरू कर दिया।'

जग्गी ख़ुशी-ख़ुशी बगीचे में चला जाता। इस दौरान समस्याओं का समाधान सुझाने वाले एक अनौपचारिक मनोचिकित्सक के तौर पर भी उसकी माँग बढ़ने लगी। उसे यह काफ़ी आसान लगता। वह लोगों की बातें ध्यान से सुनता और अपने स्पष्ट नजरिए से अलग-अलग मसलों पर सही सलाह दिया करता। वे याद करते हैं, 'मेरे साथ पढ़ने वाले छात्र हर तरह के मसले लेकर आते। पढ़ाई के मसले, यूनियन के मुद्दे, ब्वाय फ्रेंड, गर्ल फ्रेंड वाली समस्याएँ और घर की परेशानियाँ। जल्दी विश्वास नहीं होता कि युवा लोग भी इतनी समस्याओं से घिरे रहते हैं! ऐसा नहीं है कि सिर्फ़ बड़ों को ही समस्याएँ पालने का हक़ है। मगर जब आप जवान होते हैं, तो बुजुर्गों से मूर्खता और युवाओं से जीवन के प्रति सजग रहने की उम्मीद करते हैं। तो मैं वहाँ बैठा रहता और उलझन से भरे उन प्राणियों को अपनी समस्याएँ लेकर आते देखता रहता। मैं ही एक ऐसा झक्की था, जिसे कोई समस्या नहीं थी। मैं उनकी हर समस्या का अपने ही तरीक़े से निराला हल बताता।'

फिर भी उन अनोखे सुझावों में से कुछ में इंसानियत साफ़ झलकती थी। 'शुरू में मुझे लोगों की बेवकूफ़ियों पर बस गुस्सा आया करता था।

लेकिन मैं उलझन से भरे उन प्राणियों की समस्याएँ सुनते-सुनते उनसे हमदर्दी करने लगा। मैं उनकी ओर हाथ बढ़ाने लगा। मैं जानता था कि यह बेवकूफ़ी है। चाहिए तो यह था कि मैं उनके सिर पर ठोककर उन्हें बताऊँ कि तुम लोग बेवकूफ़ हो। लेकिन किसी वजह से मेरा गुस्सा हमदर्दी में बदलने लगा।'

इसी दौरान जग्गी ने अपने जैसे मोटरसाइकिल वाले सनकी साथियों का गुट बना लिया। 'हम लोग अपनी मोटरसाइकिलों पर ही रहते थे। हम इनके लिए पागल थे। हम हर पल इनसे चिपटे रहते। हम अपना सारा वक़्त इंजन से छेड़छाड़ करते हुए, इस उम्मीद में बिताते कि इस मशीन को कुछ और तेज़ चलाया जा सके।'

कैंपस ग्राउंड में एक बड़े बरगद के पेड़ के नीचे सहज ही हमारा एक फ़ोरम बन गया। किसी ने इसका नाम 'बेनियान ट्री क्लब' रख दिया और यह नाम चल निकला। किसी दूसरे दोस्त ने एक पत्रिका निकालने का सुझाव दिया, और देखते ही देखते यह मासिक पत्रिका की तरह प्रकाशित होने लगी। क्लब का सीधा-सा सिद्धांत था - यह सब हम लोग मौज़-मस्ती के लिए करते हैं। इसने तमाम तरह की बहस में हिस्सा लेने के इच्छुक साथियों को आकर्षित किया - चर्चा में जावा मोटरसाइकिल से लेकर दुनिया को एक बेहतर जगह कैसे बनाएँ, तक शामिल था। 'हम सब इस पेड़ के नीचे इकट्ठे हो, अपनी-अपनी मोटरसाइकिलों पर बैठे हुए, घण्टों बातें किया करते।' सद्गुरु बताते हैं, 'हम अपनी मोटरसाइकिल से कभी अलग नहीं होते थे। ऐसा करना तो हमारे लिए अधर्म की बात होती।'

इस तरह अनौपचारिक रूप से इकट्ठा होना किसी क्लास में जाने से ज़्यादा समझदारी भरा लगता। वे कहते हैं, 'असल में मैं घमण्डी नहीं था। बात शायद मेरे बर्ताव की नहीं, बल्कि नज़रिए की थी। यह कुछ-कुछ दूसरों से यह कहलाने जैसा था कि जीवन के मेरे लिए कोई मायने नहीं हैं। मैं जानता था कि मोटरसाइकिल चलाने या पैसा कमाने के लिए मुझे किसी के प्रमाणपत्र की ज़रूरत नहीं है। अगर और कुछ कारगर नहीं हुआ होता, तो मैंने मोटरसाइकिल गराज शुरू कर दिया होता।' हाल ही में उन्होंने इस बात को फिर एक सत्संग में उठाया, 'मैंने हमेशा यही माना कि दरवाजे आपके लिए आपकी डिग्रियों की वजह से नहीं, बल्कि आप जो हैं, उसके कारण खुलने चाहिए।'

ज़िंदगी को लेकर जग्गी का नज़रिया इतना लापरवाही भरा नहीं था, जितना 'बेनियान ट्री क्लब' का मज़ाकिया सिद्धांत बताता है। एक बार उसका कोई दोस्त किसी ट्रक से टकराकर बुरी तरह से घायल हो गया। उसका भेजा फटकर बाहर आ गया और उसकी खोपड़ी के टुकड़े सड़क पर बिखर गए। जग्गी ने सभी टुकड़ों को उठाया और अपने दोस्त को लेकर अस्पताल भागा। 'उसका सिर खुल गया था और उसकी खोपड़ी के टुकड़े उस जगह बिखरे पड़े थे। मैंने उन सबको उठाकर अपनी जेब में रखा और उसे उठाकर आपातकालीन वार्ड में ले गया। वहाँ बहुत शोरशराबा था।'

जग्गी को अस्पताल में दुर्घटना सम्बन्धी लाल-फ़ीताशाही का सामना करना पड़ा। उसे नियम-क़ानून से जुड़े कई सवालों के जवाब में झाँसा देकर काम चलाना पड़ा, ताकि इलाज जल्दी शुरू हो सके। इसके बाद आपातकालीन ऑपरेशन के लिए ख़ून का इंतज़ाम करने के लिए उसको ज़मीन-आसमान एक करना पड़ा। उसका दोस्त उस रात ज़िंदा तो था पर उसकी हालत बहुत गंभीर, लेकिन स्थिर थी। 'अगली सुबह मैं बुरी तरह थका हुआ घर पहुँचा। मैं नहाने जा रहा था, तभी अपनी जेब टटोली, तो पाया कि उसकी खोपड़ी के सारे टुकड़े मेरी जेब में थे। मैं उन्हें डॉक्टर को देना भूल गया था। मैंने वापस जाकर डॉक्टर को बताया कि उसकी खोपड़ी के टुकड़े मेरे पास हैं। उसने कहा, "कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, मैंने उसकी पट्टी कर दी है। उसे पहले स्थिर होने दो, तब हम देखेंगे।" खैर जो मेरे पास था, उसने ले लिया। मेरी जेब में तीन टुकड़े थे। उन्होंने उस लड़के को बेंगलुरु के एक बड़े अस्पताल में भेजने की कोशिश की, लेकिन उसने रास्ते में ही दम तोड़ दिया।'

इस अनुभव से जग्गी और उनके युवा दोस्तों को आपातकालीन वार्ड मैनेजमेंट दल बनाने की प्रेरणा मिली। इसके तहत शहर के प्रमुख अस्पताल के आपातकालीन वार्ड में कम से कम एक स्वयंसेवी के लगातार मौजूद रहने का इंतज़ाम किया गया। ज्यों ही किसी दुर्घटना में घायल इंसान को अस्पताल में दाख़िल कराया जाता, उस स्वयंसेवी का काम उस घायल इंसान की ज़िम्मेदारी लेना था। वह स्वयंसेवी उस घायल से जान-पहचान होने का दावा करता और उसके पास से मिलने वाली जानकारी के आधार पर उसके परिवार से संपर्क करता। यह दल लगभग डेढ़ साल तक सक्रिय रहा। ख़ुद जग्गी को दुर्घटना के शिकार पाँच लोगों को अस्पताल में दाख़िल कराना याद है, जिनमें से तीन की मौत हो गई और दो की जानें बच गईं।

*मेरे सोने के कमरे में लगभग बीस से पच्चीस साँप रहते थे। सब के सब ज़हरीले थे, आमतौर पर कोबरा, कुछ वाइपर भी। जब आपके कमरे में इतने सारे साँप हों, तो यह पता नहीं होता कि वे कहाँ होंगे! जब मैं सोता, तो वे अक्सर मेरे कंबल के अंदर भी घुस जाते थे।*

उसके कॉलेज के दिन, ऐसी ही अराजकता और सामाजिक ज़िम्मेदारियों का अनोखा मेल रहे। जग्गी के नज़रिए से दोनों के बीच असल में कोई फ़र्क़ नहीं है। (आज भी वे करुणा या हमदर्दी के लिए किसी नैतिक आचार संहिता के होने की ज़रूरत महसूस नहीं करते) उसके दिन व्यस्त रहा करते थे। उसे दोस्तों की कमी कभी नहीं रही। उसके ट्रेकिंग वाले दोस्त थे, कॉलेज के दोस्त थे, मोटरसाइकिल पर सवारी करने वाले दोस्त थे। ‘अलग-अलग गतिविधियों के लिए मेरे पास अलग-अलग दोस्त थे। अगर मैं जंगलों में ट्रेकिंग पर जाता, तब मेरे दोस्तों का एक गुट था। जब मैं शहर में मोटरसाइकिल की सवारी करने निकलता, तो मेरे उन दोस्तों का गुट दूसरा था। इनमें से हरेक ग्रुप में मैं अलग तरह का इंसान होता था। कई जगहों पर लोग मुझे चुप रहने वाला इंसान समझते थे, लेकिन कुछ जगहों पर लोग मुझे बातूनी और मस्तमौला मानते थे। कुछ जगहों पर लोग मुझे अंतर्मुखी समझते थे और कुछ दूसरी जगहों पर बड़ा जोशीला। मैं जिस ग्रुप के साथ होता, उसी पर यह निर्भर करता।’

लेकिन उसे एहसास था कि उसकी तरफ़ से यह दोस्ती, किसी गहरी भावनात्मक ज़रूरत के बजाय उनके संग-साथ का मज़ा लेने के लिए थी। उन्हें याद है कि एकान्त और दोस्तों का साथ, दोनों ही उनको अच्छे लगते थे। वह जानता था कि उसके कुछ दोस्तों की बुद्धि उससे पैनी है, लेकिन उसे काफ़ी पहले से यह एहसास था कि उसकी स्पष्टता दूसरों से कहीं ज़्यादा है। इसमें कोई श्रेष्ठता की भावना नहीं थी। वे आगे बताते हैं कि उनमें विरक्त वेदान्ती जैसी कोई बात कभी न थी। बस इतना ही था कि जब कभी वे अपने संगी-साथियों के साथ शमिल होते, तो उनसे कोई ख़ास उम्मीद नहीं रखते थे। यही बात अपने परिवार वालों के साथ उनके सम्बन्ध पर भी

लागू होती है। 'मेरे आसपास बहुत से लोग हुआ करते थे। उनमें से बहुत से लोग मुझे प्रिय थे, लेकिन भावनात्मक सहारे के लिए मैंने कभी किसी से दोस्ती नहीं की। मुझे कभी ऐसी ज़रूरत महसूस नहीं हुई। मेरी ज़िंदगी शायद हमेशा दो स्तरों पर रही है। एक स्तर पर मैं अपनी उम्र के हिसाब से रहने की कोशिश कर रहा था। दूसरे स्तर पर मैं इतना बूढ़ा था, इतना बूढ़ा कि...' वे चुप हो जाते हैं, शायद वे किसी रहनुमा या दाता जैसे नहीं लगना चाहते थे। कुछ देर रुक कर वे कहते हैं, 'ज़्यादातर मैं उन्हें धुन्धली, आधी रोशनी, आधी परछाईं जैसी आकृतियों की तरह चलते-फिरते देखता था। मैं यह नहीं कहना चाहता कि मुझे कोई लगाव नहीं था, क्योंकि यह आध्यात्मिक-सा लगता है, जबकि मैं किसी भी तरह से आध्यात्मिक नहीं था। वे मुझसे जुड़े थे, लेकिन मैं उनसे जुड़ा नहीं था। उस स्थिति का मैं सबसे क़रीबी बयान ऐसे ही कर सकता हूँ।'

शायद इसी वजह से उनकी दिलचस्पी यूरोपीय अस्तित्ववादी लेखकों को पढ़ने में थी। 'मुझे चौदह साल की उम्र में कामू की 'द आउटसाइडर' पढ़ना याद है, और यह मुझे बहुत जाना-पहचाना सा लगा था। मिसाल के लिए, जिस तरह से उसका नायक माँ की मौत पर अपनी प्रतिक्रिया ज़ाहिर करता है, वह मैं तुरंत समझ गया। अगर माँ मर जाती है - जैसा कि हमेशा होता है - तो इससे दुनिया तो ख़त्म नहीं हो जाती! अधिकतर लोग दुख के बजाय अपराध-बोध से ज़्यादा पीड़ित होते हैं। हालात को सँभालने के नज़रिए से हिंदू रीति-रिवाज़ों में शोक में डूबे हुए लोगों को मौत के फ़ौरन बाद बहुत से कर्मकाण्डों में लगा देने का तरीक़ा, मुझे हमेशा इसी वजह से चतुराई भरा लगा।' जब जग्गी सिर्फ़ सात साल का था, तब उसके दादाजी की मौत पर शोक प्रकट करने आए लोगों को उसने, बिना किसी दुख के, यह कहकर चौंका दिया, 'आख़िरकार वे बूढ़े थे, उनको तो मरना ही था।' क्या यह संवेदनहीनता थी, या बड़ी बुद्धिमानी वाली बात? यह कोई नहीं तय कर पाया। एक असहज सन्नाटा छा गया था।

स्वाभाविक संवेदनशीलता के बावजूद ज़िंदगी चलाने के जग्गी के रवैए में कायरता या डर जैसी कोई चीज़ नहीं थी। शान्ति उसे पसन्द थी, लेकिन वह अकर्मण्य क़तई नहीं था। एक शाम अपने पिता के पुराने मर्फ़ी रेडियो पर वह रेडियो ऑस्ट्रेलिया पर पश्चिमी संगीत सुनने की कोशिश कर रहा था। तभी उसको परदे के छल्लों के टकराने की आवाज़ सुनाई दी। असल में

एक चोर चुपके से घर में घुस आया था। वह उससे बारह फ़ुट से भी कम दूरी पर खड़ा था। 'परदे धोने के लिए निकाल लिए गए थे। जब चोर ने दरवाजे की चौखट को पकड़ा, तो स्प्रिंग वायर हिलने से छल्लों की आवाज़ आई। मुझे याद है, वह लम्बा-चौड़ा आदमी था। उसने अपनी पैंट को घुटनों तक मोड़ा हुआ था।' जग्गी ने चोर के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा फुर्ती दिखाई। उसने पास रखा एक लोहे का फूलदान उठाकर चोर के सिर पर ज़ोर से दे मारा। चोर चकराकर कुछ पल के लिए ज़मीन पर बैठ गया। फिर उठकर भाग खड़ा हुआ। उसके सिर से बहा काफ़ी ख़ून फ़र्श पर गिर चुका था। जग्गी पड़ोस के मकान से अपनी माँ को बुलाकर लाया और बड़े इत्मीनान से उन्हें चोर के बारे में बताया। जहाँ एक तरफ़ यह बात माँ को बहुत घबरा देने वाली थी, वहीं दूसरी तरफ ग्यारह साल का बालक अपने कारनामे से पूरा संतुष्ट था, जैसे कि इसमें घबराने जैसी क्या बात है? 'यह तो मेरी क्रिकेट-प्रैक्टिस का कमाल था।'

उन्होंने जीवन से जो कुछ सीखा, वह ख़ुद के तजुर्बे पर आधारित था, न कि दूसरों से बटोरा हुआ। 17 साल की उम्र में घर की छत पर ख़ाली हाथों से एक बंदर को मार डालना उनको याद है। किस बात ने उसे उकसाया? असल में बंदर ने उस पर हमला कर दिया था। 'यह घटना मेरी माँ के मायके चिक्काबल्लापुर की है। मैं छत पर था और बंदर एक बिजली के खम्भे पर बैठा हुआ था। उसने मेरी तरफ़ देखकर मुँह बनाया। जवाब में मैंने भी मुँह बना दिया। वह प्राणी फ़ौरन मुझ पर कूद पड़ा। यह सीधा हमला था। मैंने उसको गले से पकड़ लिया और तब तक कसकर पकड़े रहा जब तक मेरा अँगूठा उसमें धँस नहीं गया। मैं उसी तरह से उसका गला दबाए रहा जब तक कि उसका सारा विरोध ख़त्म नहीं हो गया। बाद में मैंने उसे बगीचे में दफ़न कर दिया।' घर वाले फुसफुसा रहे थे कि लड़के ने एक हनुमान को मार दिया। लेकिन जग्गी को इसमें कोई नैतिक उलझन नहीं हुई। उसने बस वही किया था, जो किया जाना था।

आठ साल की छोटी उम्र में जब उसको अपने दादा के घर में दोपहर के भोजन के लिए मुर्गा मारने को कहा गया, तो इस हुक़्म को मानने में वह ज़रा भी नहीं हिचकिचाया। 'मेरे पिता के यहाँ चिकन बाज़ार से ख़रीदा जाता था। लेकिन दादाजी के घर में परिवार के लड़कों से मुर्गा मारने की उम्मीद की जाती थी। इसलिए मुझे एक मुर्गा मारने के लिए घर के अहाते में भेजा गया।

इसका तरीक़ा आसान था। आप जानवर के ज़रा शांत होने का इंतज़ार करें, और फिर अचानक उसकी गरदन मरोड़ दें। यह इतनी फुर्ती से किया जाता कि मुर्गे को पता ही नहीं चल पाता कि कब उसकी मौत हो गई।' इस काम के बारे में जैसा उसने सोचा था, उससे कुछ ज़्यादा ही महारत की ज़रूरत थी। उन्हें इस हत्या के समय अचानक निकलने वाली ऊर्जा से सराबोर हो जाना याद है। जग्गी कुछ दूर जाकर बैठ गया, क्योंकि वह थोड़ा अस्वस्थ सा महसूस करने लगा था। उसे यह समझ में आया कि किसी की जान लेने में, जितना वह सोचता था, उससे कहीं ज़्यादा कुछ लगता है। 'यह कोई नैतिक मुद्दा नहीं था।' वे कहते हैं, 'बात बस इतनी थी कि मैं जीवन-ऊर्जा के इतने बड़े विस्फोट के लिए तैयार नहीं था। इससे मेरा सिर चकराने लगा। अगर किसी जानवर को खाने से पहले, उसे ख़ुद मारना ज़रूरी हो, तो मुझे लगता है बहुत कम लोग मांसाहारी रह जाएँगे।'

जग्गी में इस भावना-रहित रवैए के साथ-साथ जानवरों के लिए सच्ची करुणा भी थी। जिन्होंने उसे अपने पालतू कुत्तों के साथ देखा है, वे इसकी पुष्टि करेंगे। जब उसके बचपन के कुत्ते रूबी को ('जो कि सिर्फ़ मेरा था, नैंसी की तरह नहीं, जिससे वे चारों भाई-बहन हिले-मिले हुए थे') चमड़ी की कोई बीमारी हो गई, तो जग्गी अपने पिता की इस बात से राज़ी नहीं हुआ कि उससे छुटकारा पा लिया जाए। उसे जड़ी-बूटी के एक इलाज का पता चला। रोज़ वह पास की एक पहाड़ी से जड़ी-बूटी तोड़ लाता, उसका लेप बनाकर कुत्ते के शरीर पर लगाता। अंत में वह कुत्ता मर गया, लेकिन ज़रूरी देखरेख और इलाज की कमी से नहीं। कई वर्षों के बाद जब वे एक खेत के मालिक बने, तब खेत जोतने के लिए उनके पास एक जोड़ी बैल थे। 'मैंने बैलों की खुरों में नाल न ठुकवाने का फ़ैसला किया। मुझे ऐसे निर्दयी बर्ताव से नफ़रत थी, जिसमें खुरों में नाल ठोकने के लिए उन्हें गिराकर उल्टा लिटाया जाता था।' लेकिन यह करुणा उनको महँगी पड़ी। उन्होंने पाया कि बैलों के खुर घिस गए हैं, और वह काफ़ी तकलीफ़ में हैं। 'मेरे पास दो लंगड़े बैल थे, जो काम नहीं कर पाते थे। मैंने उनके पैरों में नाल ठुकवा कर उन्हें अपने पास रख लिया। आख़िर में मैंने खेत बेच दिया और साथ में बैल भी। मैंने अपने बैलों को कसाईघर कभी नहीं भेजा। उनके बूढ़े और नाकारा हो जाने के बाद भी मैंने उनको अपने पास रखा।'

जवानी के दिनों में जग्गी ने अपने हिस्से का रोमांस भी किया। वह उन्नीस साल का था, जब उसे पड़ोस की एक मुस्लिम लड़की से प्यार हो गया। वे दोनों चोरी-छिपे अपने जादुई लम्हे कविताएँ सुनाकर, एक दूसरे के हाथों में हाथ डाले बिताते। यह रिश्ता प्रगाढ़ होता गया और कुछ सालों तक चला। यह रिश्ता गुप्त ही रहा, और किशोर उम्र के दूसरे कई प्रेम-सम्बन्धों की तरह यह भी किसी मुक़ाम पर नहीं पहुँचा। अन्त में, उसकी शादी कहीं और तय हो जाने पर, यह रिश्ता अचानक ख़त्म हो गया।

यह जग्गी की ज़िंदगी का एक नया मोड़ साबित हुआ, अब तक के तजुर्बों से कहीं बड़ा। जहाँ इस घटना से उसकी अंदरूनी यात्रा की शुरुआत में मदद मिली, वहीं उस वक़्त यह एक दिल टूटने वाली बात थी, जिसमें निराशा और हार जाने का गहरा एहसास था। 'मुझे बस चोट ही नहीं पहुँची थी, मैं उजड़ गया था। सब कुछ बिखर गया था। इसने मुझे अपने भीतर एकदम नए आयाम में पहुँचा दिया। अगर आप कुछ हद तक टूट जाते हैं, तो इससे तकलीफ़ होती है। जो कुछ बच गया होता है, वह पीड़ा दे सकता है। लेकिन अगर आप पूरी तरह से तहस-नहस हो जाते हैं, तो यह आपको शून्य में पहुँचा देता है। बाद में यह एहसास होता है कि यह शून्य नहीं है - ये तो आपके अपने विचार हैं, तुम्हारी ही कल्पना है, जो टूट चुकी है।'

इस बिछुड़ने के बाद उसने ख़ुद को एक कवच में समेट लिया। एक हफ़्ते तक घर में किसी से बात नहीं की, जो माँ के लिए काफ़ी चिंता की बात थी। बाद में उसने एक के बाद एक कई दूसरी लड़कियों से रोमांस किया। इनमें से कई तो उसकी प्रेमिका की सहेलियाँ थीं। मैंने कहा कि यह तो बदला लेने जैसा है। वे इस बात से सहमत नहीं हुए। 'कोई बदले की भावना नहीं थी। मैंने गंभीरता त्यागकर चंचलता को चुना। मुझे ताज्जुब हुआ कि मैं हर तरह से ख़ुद को नकार क्यों रहा हूँ? जिसका अब वजूद नहीं है, उसकी वजह से मैं ख़ुद को क्यों नकार रहा हूँ? अगर यह रिश्ता न भी होता, तो भी मैं शायद इसी तरह से होता। यह तीव्र भावनाओं का दौर था और बड़ी जल्दी गुज़र गया। जब यह ख़त्म हुआ, इसने मुझे सुन्न और जड़ बना दिया था। सब कुछ ढह गया था। शायद कहीं मैं यह महसूस करने लगा था कि अपना जीवन किसी के इर्द-गिर्द या ख़ुद अपने इर्द-गिर्द जीना निरर्थक है। आप और दूसरा शख़्स, दोनों ही आपकी कल्पना का हिस्सा हैं।

मैं हमेशा सोचता था कि ख़ुद अपने इर्द-गिर्द जीवन खड़ा करना बेमानी है। लेकिन कुछ अरसे तक, किसी दूसरे के आसपास जीवन बुनना बहुत अच्छी बात लगती थी। लेकिन अब मुझे एहसास हुआ कि जीवन को ऐसा नहीं होना चाहिए। जीवन जीने के लिए है, न कि गढ़ने के लिए। इस एहसास में कोई मायूसी या कुण्ठा नहीं थी। मैंने पाया कि जीवन तो चलता रहता है - आप उसमें जितना हो सके, उतना हिस्सा लें। लेकिन "मेरा जीवन" और "तुम्हारा जीवन" जैसी बातों से आप ऐसी चीज़ों के आसपास ढाँचे खड़े करने लगते हैं, जिनका कोई वजूद नहीं होता।'

जब जग्गी अपने प्रेम-प्रसंगों की बाढ़ से बाहर निकला, तब उसमें प्रेम की कहीं ज़्यादा गहरी, ज़्यादा परिपक्व समझ थी - ऐसी समझ, जो न तो गैर-ज़िम्मेदाराना थी, और न ही आदर्शवादी। अब वह अपने असफल प्रेम को भी एक परोक्ष वरदान की तरह देख सकता था। वे कहते हैं, 'भगवान का शुक्र है कि उस लड़की ने यह संबंध इतनी जल्दी तोड़ दिया, वरना मैंने अपना सारा जीवन इसी तरह बिताया होता। बाद में मैंने प्रेम, सहभागिता और प्रतिबद्धता को अपने संबंधों का आधार बनाया। लेकिन उनके इर्द-गिर्द अपना जीवन कभी नहीं गढ़ा।'

एक बार देर रात तक चली बातचीत के दौरान उन्होंने मुझे बताया कि उनकी पहली गर्लफ़्रेंड का रूपरंग उस औरत से बिलकुल मिलता-जुलता था, जिसे वह तीन जन्म पहले बहुत क़रीब से जानते थे। काफ़ी बाद में उनको एहसास हुआ कि उसका क़द और बनावट बिलकुल शाम्भवी जैसी थी, जो उस जन्म में सँपेरे बिल्वा की प्रेमिका थी। मैंने उनसे पूछा कि क्या इस संयोग ने उनको किसी ऊर्जा के स्तर पर भ्रम में डाल दिया था? क्या इसी वजह से इस ज़िंदगी में वे उसकी तरफ़ आकर्षित हुए थे? वे ज़रा देर को रुके और इसे पुनर्जन्म का भावुक रोमांस न समझने के लिए सावधान किया। 'उस समय यह संबंध ही मेरे लिए सब कुछ था,' वे धीरे से बोले, 'और मैं इसे किसी दूसरी चीज़ से नहीं जोड़ना चाहता, जो इस बात से भिन्न हो। अगर हम पिछले जन्म की बात बीच में लाकर इसे छोटा न बनाएँ, तो बेहतर होगा।'

वे मानते हैं कि अब उनको मैसूर के कॉलेज के समय के कुछ दोस्तों से मिलकर बड़ा अटपटा लगता है। इनमें से कुछ अपने करियर में सफल रहे हैं,

जबकि कुछ उतने सफल नहीं हो पाए। लेकिन अब जो बात उनको खटकती है, वह यह कि वे सभी दुनिया से कितने थके-हारे और निर्जीव से जान पड़ते हैं। वे उन सभी को काफ़ी जोशीले युवकों के तौर पर याद करते हैं। कुछ की तो ख़ूबसूरत लड़कियों पर नज़र रहती थी। पर अब काम के बोझ, परिवार की ज़िम्मेदारियों और अधेड़ उम्र के तकाजे के चलते उनमें जीवन का सारा उत्साह ही ख़त्म हो गया है। वे सभी अब जग्गी का आदर करने के प्रति सावधान रहते हैं। उन्हें समझ नहीं आता कि एक दोस्त से आध्यात्मिक गुरु बन गए इंसान से मिलने पर, किस तरह के सामाजिक-शिष्टाचार का पालन करें। उस दोस्त में जीवन का आनन्द और जोश देखकर उन्हें और भी अटपटा लगता है, क्योंकि यह किसी भी तरह उनके दिमाग़ में बसी गुरु की छवि से मेल नहीं खाता। इस वजह से वे बीते दिनों के सखाभाव को फिर से ज़िंदा नहीं कर पाते। सद्‌गुरु कहते हैं, 'विडम्बना यह है कि मैं तो नहीं बदला, लेकिन वे बदल गए हैं।'

वे कहते हैं, 'जब हमारी मुलाक़ात होती है, तब वे लोग काफ़ी असहज हो जाते हैं। मैं तो बिलकुल सहज हूँ, बल्कि पहले से भी ज़्यादा जीवंत हूँ। लेकिन आमतौर पर वे लोग बहुत गम्भीर हो गए हैं। उनके पास परिवार, बच्चे, काम-धंधे, यानी वह सब है, जिसे वे ख़ुशी का सामान समझते थे। लेकिन वही सब चीज़ें अब उनके लिए बोझ बन गई हैं।' वे हँसते हुए आगे कहते हैं, 'और वे विश्वास नहीं कर पाते कि मैं अब भी हँसता हूँ, मज़ाक करता हूँ और बातें करता हूँ। ऐसे मौक़ों पर वे अपनी सिगरेट निकाल लेते हैं, और पूछते हैं कि क्या तुम सिगरेट पीते हो?'

मैं कहता हूँ -"नहीं।"

"अरे, तो तुम सिगरेट नहीं पीते? ठीक है।"

फिर वे झिझकते है कि मेरे सामने सिगरेट पियें या न पियें? और मैं कहता हूँ कि ''तुम सिगरेट पियो, इससे मुझे फ़र्क़ नहीं पड़ता।"

"तुम सिगरेट नहीं पीते और शराब भी नहीं?"

"नहीं, इस तरफ़ कभी मेरा ध्यान नहीं गया।"

"ओह, तो तुमने सब कुछ छोड़ दिया है?"

वे फिर हँसते हैं, 'ज़रा उनके नज़रिए को देखिए। लोग मानते हैं कि

अगर आप सिगरेट नहीं पीते, शराब नहीं पीते, तो आपने सब कुछ छोड़ दिया है।'

अपनी अनियमित हाज़िरी और पढ़ाई के उल्टे-सीधे ढर्रे के बावजूद जग्गी ग्रेजुएट हो गया। उसने मैसूर यूनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी साहित्य में दूसरा स्थान भी हासिल कर लिया - इस बात ने उन सबको चौंका दिया, जो उसे जानते थे। वह ख़ुद भी हैरान था। परिवार में सवाल उठना ही था, 'अब आगे क्या?' घर में एम ए करने की चर्चा हो रही थी, लेकिन जग्गी का ऐसा कोई इरादा नहीं था। उसने अपने माता-पिता को बता दिया कि उस कोर्स की सारी किताबें वह पहले ही पढ़ चुका है। अब वह अपनी रोज़ी-रोटी कमाएगा और मोटर साइकिल पर दुनिया की सैर करने का लम्बे अरसे से संजोया अपना सपना पूरा करेगा। 'लेकिन रोटी कमाने की तुम्हारी योजना क्या है?' माता-पिता ने ज़रा सँभलकर पूछा। वे एक अरसे से जग्गी के धमाकेदार जवाबों के आदी हो चुके थे। लेकिन इस बार जो जवाब मिला, उसके लिए वे क़तई तैयार न थे। 'मुर्गी-पालन,' उनके बेटे ने छोटा-सा जवाब दिया।

और उनका यही मतलब भी था। 'तब तक मैं मोटरसाइकिल से देश में हर जगह घूम चुका था। जब मैं नेपाल की सीमा पर पहुँचा, तो मुझे एहसास हुआ कि आगे जाने के लिए मुझे कुछ काग़ज़ात की ज़रूरत थी। तब तक मुझे यही लगता था कि अपनी मोटरसाइकिल पर मैं कहीं भी जा सकता हूँ। लेकिन सीमा पर तैनात लोगों ने कहा, "नहीं, जब तक आपके पास ये काग़ज़ात नहीं हैं, आप आगे नहीं जा सकते।" मुझे नहीं मालूम था कि वे कौन से काग़ज़ात माँग रहे थे। मेरे पास मेरी मोटरसाइकिल का रजिस्ट्रेशन और मेरा लाइसेंस था। लेकिन इतना काफ़ी न था। तभी मैंने सोचा, ठीक है, मुझे जहाँ जाना है, वहाँ जाने के लिए मुझे किसी दूसरी चीज़ की भी ज़रूरत है। तबसे मैं इसका ख़्वाब देखता रहा। मैंने कहा, एक बार अगर मेरे पास काफ़ी पैसा हो जाए, तो मैं ऐसी जगह जाऊँगा, जहाँ लोग मुझे रोक नहीं सकते। मैं जल्दी ही कुछ पैसे कमाकर जाना चाहता था। उन दिनों मुर्गी-पालन के धंधे में ख़ूब कमाई थी, तो मैं इसमें कूद पड़ा। मेरे पिता ने कहा, "मैं लोगों को क्या बताऊँगा? मेरा बेटा मुर्गियाँ पाल रहा है?" मैंने

कहा, "यह आपकी समस्या है।" मैंने अकेले अपने हाथों बड़ी मेहनत से अपना पोल्ट्रीफ़ार्म तैयार किया।'

ढाई एकड़ का यह फ़ार्म जग्गी के घर से बारह किलोमीटर दूर, मैसूर से लगभग बाहर था। जग्गी पौ फटते ही अपना काम शुरू कर देता और देर रात तक लगा रहता। कई बार ऐसे मौक़े भी आए, जब देर हो जाने की वजह से, उसने रात घर के बाहर बिताई, क्योंकि वह घरवालों को आधी रात में परेशान नहीं करना चाहता था। पहले छह महीने कड़ी मेहनत के थे, और वह इसके लिए तैयार था। उसने अकेले बड़ी मेहनत से 3,200 मुर्गियों के लिए पिंजरे तैयार किए। इस काम के दौरान कई बार उसके हाथों से ख़ून भी बहने लगता। पैसा बचाने के लिए उसने कई दिनों तक केले खाकर काम चलाया। उसने आमदनी में थोड़ी बढ़ोत्तरी के लिए कुछ नए तरीक़े भी निकाले। वह सुबह-सुबह शहर में सड़क के किनारे लगे पेड़ों से गिरी लकड़ियाँ इकट्ठी कर लेता और फिर इनकी आग से ईंटें पकाता। एक समय ऐसा भी आया जब वह मैसूर का एक सफल ईंट-निर्माता माना जाने लगा। यह पैसा कमाने की आसान रणनीति थी। वह हैरान था कि यह योजना किसी और के दिमाग़ में क्यों नहीं आई। इससे उसके दिमाग़ में बहुत अरसे से बैठी यह धारणा और मज़बूत हो गई कि लोग अगर बिलकुल मूढ़ नहीं हैं, तो थोड़े मंद तो हैं ही।

जल्दी ही उसका धंधा चल निकला। मुनाफ़ा बढ़ने लगा। वासुदेव परिवार को विश्वास नहीं हो रहा था कि उनका बिगड़ैल बच्चा रातों-रात एक सफल कारोबारी बन गया है। जीवन बड़ी आसानी से चल रहा था। जग्गी रोज़ सुबह के चार घण्टे मुर्गी-पालन में बिताता था। उसका बाक़ी सारा दिन पढ़ने, कविताएँ लिखने, कुएँ में तैरने, पेड़ों पर चढ़कर दिवास्वप्न देखने, और अपने फ़ार्म में बनाए गाँव के माहौल का आनन्द लेने में बीतता। 'तेरह साल की उम्र से मैं आसन और प्राणायाम कर रहा था। अब मेरे जीवन में ध्यान भी शामिल हो गया था। इसलिए मैं या तो ध्यान में लीन रहता या पढ़ाई-लिखाई करता। अण्डों का उत्पादन अच्छा हो रहा था, पैसे भी आराम से आ रहे थे। सुबह के काम से निबटने के बाद मैं बरगद के एक बड़े पेड़ पर सबसे ऊपर चढ़कर बैठ जाता। अगर मैं आँखें बंद करके वहाँ बैठ जाता, तो उसके बाद दीन-दुनिया से पूरी तरह बेख़बर हो जाता। घण्टों मैं उस पेड़ पर बैठा रहता। पोल्ट्रीफ़ार्म वाले वे दिन बहुत ख़ूबसूरत थे। मैं जीभर

कर पढ़ सकता था। मैं बहुत-सी कविताएँ लिख रहा था। कोई भी आकर मुझे परेशान नहीं करता था। कई-कई दिनों तक मैं एक या दो मज़दूरों के अलावा किसी आदमी की शक्ल नहीं देखता था। वह एक बढ़िया ज़िंदगी थी।'

यह जगह शहर से काफ़ी दूर थी, तो कोई उससे मिलने भी नहीं आता था। इस वजह से यह साँप पालने के लिए बहुत अच्छी जगह थी। बहुत जल्दी ही उसने एक फलती-फूलती साँपों की कॉलोनी तैयार कर ली। हर सुबह वह बड़े आहिस्ते से उठता। उसे इस बात का ध्यान रखना होता था कि उनके बिस्तर पर या आसपास सोने वाले दो दर्जन कोबरा और वाइपर साँपों को कोई परेशानी न हो। उनका कहना है कि साँपों की सोहबत में उन्होंने योग के बारे में बहुत कुछ जाना। उनकी मौजूदगी का मतलब यह सीखना था कि बिलकुल स्थिर और जागरूक कैसे रहें?

'मेरे सोने के कमरे में लगभग बीस से पच्चीस साँप रहते थे।' वे कहते हैं, 'यह एक बड़ा कमरा था, जहाँ मैं सोता था, थोड़ा-बहुत खाना पकाता था और अपनी कुछ किताबें रखता था। फ़ार्म में बस वही एक कमरा मेरे रहने की जगह थी। ये साँप वहाँ हर जगह घूमा करते थे। सब के सब ज़हरीले थे, आमतौर पर कोबरा, कुछ वाइपर भी। मैं हमेशा वाइपरों से कोबरा के मुक़ाबले ज़्यादा होशियार रहता था, क्योंकि कोबरा के काटने पर आपके पास काफ़ी वक़्त होता है। यह आपको लगभग छह घण्टे का वक़्त देता है। जबकि वाइपर के काटने पर आपके पास सिर्फ़ ढाई से तीन घंटे की मोहलत होती है। कोबरा के काटने पर तो शरीर कुछ देर काम कर सकता है, लेकिन वाइपर के काटने पर देखते ही देखते लक़्वा हो सकता है। मेरे पास दोनों थे, पर कोबरा ज़्यादा थे। क्योंकि कोबरा ज़्यादा ख़ूबसूरत होता है। यह कुछ गर्वीला होता है और उसमें कुछ शानदार बात होती है। तो जब आपके कमरे में इतने सारे साँप हों, तो यह पता नहीं होता कि वे कहाँ होंगे! साँप असंभव लगने वाली छोटी-सी दरार में भी घुस सकता है। जब मैं सोता, तो वे अक्सर मेरे कंबल के अंदर भी घुस जाते थे। अगर मैं सुबह जल्दी या आधी रात को उठता, तो अपने कंबल में एक न एक साँप को रेंगते पाता। यानी मुझे काफ़ी सावधानी से हिलना-डुलना पड़ता था। एक भी ग़लत हरकत की, तो वह काट सकता था। आपको यह पता नहीं होता था कि उसका सिर किधर है और पूँछ किधर, वह पूरा कपड़े के नीचे ढँका होता था। तो मेरे लिए यह जागरूक रहने का कड़ा प्रशिक्षण था। मुझे अत्यंत

जागरूकता के साथ हिलना-डुलना सीखना पड़ा, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अगर मैं ज़रा भी झटके से हिला, तो यह जानलेवा हो सकता है।’

यह जंगली लीक चलती रही। जैसा कि वे अक्सर कहते हैं, ‘यह नीली जींस और बीटल्स का जमाना था।’ जग्गी के पास अब अपनी मोटरसाइकिल थी। उस पर उसके करतब रोंगटे खड़े करने वाले होते। चुनौती स्वीकार करने में हमेशा आगे रहने वाला जग्गी, मैसूर-हंसूर हाइवे पर टिंबर ट्रकों के पहियों के बीच ख़तरनाक ढंग से मोटरसाइकिल निकालता। ‘इन ट्रकों की साइड-बॉडी नहीं होती। बस, टिंबर ही होता है। आगे और पीछे के घूमते हुए पहियों के बीच ख़ाली जगह होती है। मैं दोनों पहियों के बीच अपनी मोटरसाइकिल ले जाता, और फिर बाहर निकल आता। अगर इसमें ज़रा सी भी चूक हो जाए, तो आप सड़क पर पलस्तर की तरह चिपके रह जाएँगे। लेकिन मैं और मेरे दोस्त आराम से कई-कई बार इसके अंदर जाकर बाहर निकल आते थे।’

पास की चामुण्डी हिल इन सबकी पसन्दीदा जगह थी और जग्गी अक्सर वहाँ जाया करता था। ‘चामुण्डी पर मोटरसाइकिल चलाना मानो हमारा धर्म था। रात को हम मोटरसाइकिल पर ऊपर चले जाते और रातभर पहाड़ी के तीखे मोड़ों पर ऊपर-नीचे, और ज़्यादा बेहतर तरीक़ों से और तेज़ी से बाइक चलाया करते। एक दिन मैंने सोचा कि सड़क पर ही सवारी क्यों? मैं पहाड़ी पर से, बिना सड़क पर आए, नीचे उतरूँगा।’ उसने तय किया कि चामुण्डी से सीधे नीचे जाने वाला यह रास्ता सबसे तेज़ और मज़ेदार होगा। इसका मतलब सड़क से बचना था। यह सबसे ज़्यादा तेज़ी और पूरी रफ़्तार के साथ पहाड़ी से नीचे उतरने का तरीक़ा था। इसका मतलब था, पेड़ों, झाड़ियों, चट्टानों, और पेड़ों के नीचे उगे बहुत से पौधों के बीच बाइक चलाना। एक जगह पर उसकी यह रोमांचक यात्रा झटके के साथ रुक गई, जब उसकी बाइक एक टहनी में अटक गई। लेकिन उसने ख़ुद को वहाँ से निकाला और अपना मिशन पूरा किया। जब वह नीचे पहुँचा तो ख़ून से लथपथ था, लेकिन वह एक विजेता की तरह पहुँचा। टूटी हुई अनामिका उंगली, जीत की इस ख़ुशी की एक छोटी सी क़ीमत लगी।

एक बार आदर्शवाद के उत्साह से प्रेरित उनके बाइकर दोस्तों को एक ‘कम्यून’ बनाने की सूझी। इस महत्त्वाकांक्षी प्रोजेक्ट के लिए उन्होंने सौ एकड़

क्षेत्रफल का एक भूखण्ड तलाशना शुरू किया। 'हमने टिंबर का व्यापार करने वाले एक दोस्त की ज़मीन देखी। यह जंगल का इलाक़ा था। यह दो या तीन सौ रुपए प्रति एकड़ की दर से मिल रही थी। हमने एक समुदाय शुरू करने की योजना बनाई, जहाँ सभी युवा लोग आकर साथ रहें।'

इसकी रूपरेखा जान-बूझकर ऐसी बनाई गई, जिसका कोई नियम-क़ायदा न हो। किसी भी तरह का थोपा हुआ बाहरी अनुशासन न हो। यह अपने आप में एक सम्भ्रान्त और ऊँची सोच वाला क़दम था। पर ऊँचे इरादों वाली, लेकिन व्यावहारिकता से परे दूसरी योजनाओं की तरह यह भी कामयाब न हो सकी। इसके कई सदस्यों में से कुछ की ज़िंदगियाँ तो कई तरह की बुरी लतों की वजह से बर्बाद हो गईं। सद्गुरु व्यंग्यपूर्ण लहजे में कहते हैं, 'कुछ सपनों का पूरा न होना वरदान सिद्ध होता है।'

वे याद करते हैं, 'दस में से एक तो लगभग हर समय शराब के नशे में रहता था। बाक़ी पाँच से दस प्रतिशत, गाँजा या कोई और नशा करते थे। वे अच्छे लोग थे, पर किसी तरह उनको ऐसी बुरी लतें लग गई थीं। मैं उनकी संगत में काफ़ी रहा, लेकिन ऐसी किसी हरकत में शामिल होने की कभी ख़्वाहिश नहीं हुई। न तो मैंने कभी इससे बचने की कोशिश की, न कभी उसके पीछे पड़ा। ऐसा भी नहीं था कि किसी नैतिक डर से मैंने ख़ुद को रोक रखा था। न ही कभी मैंने यह सब करना चाहा। इसकी वजह शायद यह थी कि मैं अपने आप में इतना डूबा हुआ था कि इनमें से कुछ करने की मुझे कभी ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई। अगर मैंने इन लोगों के साथ एक समुदाय बना लिया होता, तो मैं कल्पना कर सकता हूँ कि ये लोग इसे कहाँ ले गए होते।'

अपने धंधे में मिली सफलता से जग्गी और भी ज़्यादा साहसी बन गया। उसने व्यापार और फैलाना चाहा। वे मानते हैं कि इस दौरान उन्होंने अपने जीवन के फ़ैसलों को समाज की उम्मीदों के मुताबिक़ तय करना चाहा था। 'बस, इसी दौरान मैंने सामाजिक हालात के मुताबिक़ चलना चाहा और ज़िंदगी में थोड़ा उलझ गया। मेरे पिता हमेशा इसी बात का रोना रोते थे कि हर किसी के बेटे कुछ न कुछ बन गए हैं। कोई इंजीनियर, कोई उद्योगपति, कोई आई ए एस, तो कोई अमेरिका चला गया है। जहाँ कहीं भी और जिस किसी से भी मैं मिलता, - मेरे दोस्त, रिश्तेदार, मेरे स्कूल या कॉलेज

के पुराने शिक्षक - तो वे कहते, "अरे, हम तो सोचते थे कि तुम अपनी ज़िंदगी में कुछ बनोगे, कुछ करोगे। लेकिन तुम तो इसे यूँ ही बर्बाद कर रहे हो।" धीरे-धीरे यह बात मुझे चुभने लगी। मैंने तय किया, ठीक है, मैं कुछ करता हूँ।'

अपने एक सिविल इंजीनियर दोस्त के साथ साझेदारी में उन्होंने भवन-निर्माण का बिज़नेस शुरू किया। घरवालों को इस पर यक़ीन न हुआ। अब क्या? क्या यह नई योजना कामयाब होगी? यह वाक़ई कामयाब हुई। 'पाँच साल के अंदर ही हम मैसूर के जानेमाने ठेकेदारों में एक बन गए और एक बड़ी कंस्ट्रक्शन कम्पनी के तौर पर उभरे। हम एक लघु-उद्योग चला रहे थे। हम सिर्फ़ दो युवक थे और हर कोई हमसे बहुत ख़ुश था। अब हम अच्छा पैसा कमा रहे थे। मेरे पिता भी बहुत ख़ुश थे। आप डॉक्टर हैं या नहीं, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। आप कामयाब हैं, बस इसी की अहमियत है। सफलता का मतलब है कि आप अच्छी कमाई कर रहे हैं।'

ऐसा लगा कि मोटरसाइकिल पर दुनिया की सैर करने का जग्गी का सपना पूरा होने में अब देर नहीं है। ज़िंदगी इतने आराम से चल रही थी कि अक्सर वे मज़ाक में कहते हैं - कि कभी-कभी तो उन्हें लगता था मानो धरती, सूरज के बजाय, उन्हीं के चारों ओर घूम रही है। ऐसा लगता था कि कुछ भी ग़लत नहीं हो सकता। तभी कुछ ऐसा हुआ कि एक दिन जग्गी की योजनाएँ खिड़की से फुर्र हो गईं।

④

# शख़्स : जो ऊपर तो गया पर कभी नीचे नहीं आया

## मोटरसाइकिल की मस्ती से आत्मज्ञान तक

वह दिन भी दूसरे किसी दिन की तरह था, न कोई पूर्व-शकुन, न कोई पैगंबरी सपना। 23 सितंबर 1982 का दिन जग्गी के जीवन का एक व्यस्त कामकाजी दिन था। उन्होंने रोज़ की तरह नाश्ता किया, और काम से जुड़ी एक मीटिंग के लिए निकल पड़े। (उन्हें याद है कि नाश्ते में उन्होंने उपमा खाया था, जब मैंने उनसे पूछा कि क्या ऐसे यादगार दिन की छोटी-मोटी बातें भी आपको याद रहती हैं?) कुछ दिन पहले उन्हें एक बड़ा ठेका मिला था। उन्हें अपने कारोबारी पार्टनर से इस मामले में काफ़ी बातचीत करनी थी। दोपहर के बाद अपने पार्टनर को आराम करने के लिए छोड़, जग्गी खाना खाने घर चले गए। उस दिन का मुख्य व्यंजन उनको अभी भी याद है : बसीदा-सारू। यह कर्नाटक का ख़ास व्यंजन है। इसे एक अलग तरीक़े से आंध्रप्रदेश में भी बनाया जाता है। इसे बनाने में उनकी माँ को महारत हासिल थी। अभी दो बजकर तीस मिनट ही हुए थे। अगली मीटिंग से पहले उन्हें काफ़ी वक़्त काटना था।

ज़ाहिर है कि वक़्त काटने के लिए जग्गी की पसंद मोटरसाइकिल की सवारी थी। उन्होंने अपनी पहली मोटरसाइकिल कुछ ही साल पहले ली थी। स्कूल के दिनों में साइकिल चलाने, चोरी-छिपे जब-तब अपने पिता का स्कूटर चलाने, और अपने स्कूल व कॉलेज के दिनों में भाई की मोटरसाइकिल चलाने के बाद मिली यज़्दी मोटरसाइकिल अब उनकी सबसे प्रिय चीज़ थी। वे बड़ी दीवानगी के साथ इसकी देखरेख करते और उसे हमेशा बढ़िया कन्डिशन

में रखते थे। अब उनके कई ऐसे दोस्त थे, जो उनकी तरह मोटरसाइकिल के दीवाने थे और उनके साहसी अभियानों में साथ देते थे। लेकिन किसी और में, जोखिम भरे कारनामों को आख़िरी हद तक ले जाने का इरादा, जग्गी जितना पक्का नहीं था। अगर किसी रात जग्गी गोआ जाना तय कर लेते, तो वे तुरंत निकल पड़ते। साथ आने के लिए दूसरों का इंतज़ार करने का सवाल ही नहीं था। जग्गी जानते थे कि योजना बनाने का मतलब है, अंतहीन टालमटोल, और इसके लिए उनमें सब्र नहीं था। 'लोग आपके साथ सिर्फ़ उतनी दूर चलने को राज़ी होते हैं, जितना उनके लिए सुविधाजनक होता है। जब वह सीमा पार हो जाती है, तो वे साथ छोड़ देते हैं। कम लोग ही आख़िर तक साथ निभाते हैं। पर मैं हमेशा से उनमें से एक रहा हूँ, जो एक बार मन बना लें, तो आख़िर तक करते हैं।'

*जिस हवा में मैं साँस ले रहा था, जिस चट्टान पर मैं बैठा हुआ था, मेरे चारों तरफ़ का माहौल – सब कुछ मेरे साथ एकाकार हो गया था। मैं जितना ज़्यादा बताऊँगा, यह उतने ही पागलपन की बात लगेगी, क्योंकि जो हो रहा था, उसे बयान नहीं किया जा सकता।*

उनकी साँपों और मोटरसाइकिल की सनक और निर्भीक स्वभाव की वजह से दोस्तों ने उनका नाम 'डेडली जग्गी' रख दिया था। वे कहते हैं, 'ऐसी बात नहीं है कि मैं बिना सोचे-समझे चीज़ें किया करता था। मुझमें बस ज़िंदगी जीने का जुनून था। मैं अपने कारनामों के नतीजों को हमेशा तौलता था। बात बस इतनी थी कि जो काम जितना ज़्यादा ख़तरनाक होता, उसकी तरफ़ मेरा खिंचाव उतना ही ज़्यादा होता था। एक बार किसी ने मुझ से कहा कि मेरे रक्षक-देवदूत ज़रूर बहुत अच्छे होंगे और वे ज़रूरत से ज़्यादा मेहनत भी करते होंगे! मुझमें हमेशा सीमाओं की चुनौती पार करने की लालसा रही है। मेरे लिए कभी *"क्या"* और *"क्यों"* का सवाल नहीं था। मुझे बस "कैसे" से मतलब था। अब, जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो मुझे एहसास होता है कि मैंने यह कभी नहीं सोचा कि मुझे जीवन में क्या बनना है। मैंने बस

इतना सोचा कि मुझे अपना जीवन कैसे जीना है। मैं जानता था कि "कैसे" का फ़ैसला आपके ख़ुद के भीतर और ख़ुद आपके द्वारा ही हो सकता है।'

चामुण्डी पहाड़ी युवा मैसूर वासियों का प्रिय ठिकाना था। हर सैलानी भी ज़रूर यहाँ आते थे, क्योंकि इस पहाड़ी से शहर का नज़ारा बड़ा सुंदर दिखता था। साथ ही यहाँ पर मैसूर के महाराजाओं की कुलदेवी चामुण्डेश्वरी देवी का भव्य शक्ति-मंदिर भी है। जग्गी इस पहाड़ी के चप्पे-चप्पे से वाक़िफ़ थे। बचपन से ही वे वहाँ घूमने जाया करते थे। कई वर्ष पहले उनको यहीं पर एक ज़हरीले साँप ने काटा था। इन्हीं ढलानों पर उन्होंने मोटरसाइकिल चलाई थी और बुरी तरह से खरोंचें लगाकर लहूलुहान भी हुए थे। हाल के वर्षों में वे अपनी बिज़नेस मीटिंग भी यहाँ कर चुके थे। रात में मोटरसाइकिल सवारी और पार्टियाँ रोज़मर्रा की चीज़ें थीं। किसी अनजान वजह से पहाड़ों ने हमेशा जग्गी को मोहित किया है। छोटी उम्र में ही उनकी आँखों में पहाड़ों के दृश्य तैरते रहते थे। ख़ासकर एक पहाड़ उनकी नज़र में अक्सर आता था। उन्होंने इस पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। वे समझते थे कि दूसरों को भी ऐसे ही दृश्य दिखते होंगे।

जग्गी की अगली मीटिंग शुरू होने में अभी एक घंटा बाक़ी था, तो वे चामुण्डी की तरफ़ चल पड़े। 'मैसूर में एक प्रथा है। अगर आपके पास कुछ करने को है, तो चामुण्डी हिल जाइए। अगर आपके पास कुछ करने को नहीं है, तो चामुण्डी हिल जाइए। अगर प्रेम हो जाए, तो चामुण्डी हिल जाइए। अगर प्रेम में नाकाम हो जाएँ, तो चामुण्डी हिल जाइए। हाल ही में मैं अपने प्रेम में नाकाम हो गया था और मेरे पास करने को कुछ नहीं था, तो मैं चामुण्डी हिल चला गया।'

आगे क्या हुआ, इसका खुलासा वे इस तरह करते हैं, 'मैं ऊपर तो गया पर कभी नीचे नहीं आया।' जब वे लौटे, तो पाँच घंटे बीत चुके थे। जब वे ऊपर गए थे, तो एक युवा, ख़ुशमिजाज बाइकर थे, और जब लौटे, तो एक योगी और आत्मज्ञानी।

'मैं बस इस चट्टान पर बैठा हुआ था,' उन्होंने वर्षों बाद बताया, 'मेरी आँखें खुली हुई थीं, बंद भी नहीं थीं। मुझे लगा कि सिर्फ़ दस मिनट हुए हैं, मगर मेरे भीतर कुछ होने लगा था। पूरी ज़िंदगी मैं यही समझता रहा कि "यह" मैं हूँ। (ख़ुद की ओर इशारा करते हुए) अचानक, मैं यह नहीं

समझ पा रहा था कि मैं क्या था और क्या नहीं। जिस हवा में मैं साँस ले रहा था, जिस चट्टान पर मैं बैठा हुआ था, मेरे चारों तरफ़ का माहौल- सब कुछ मेरे साथ एकाकार हो गया था। मैं जितना ज़्यादा बताऊँगा, यह उतने ही पागलपन की बात लगेगी, क्योंकि जो हो रहा था, वह बयान नहीं किया जा सकता। जो "मैं" था वह इतना फैल चुका था, इतना विस्तृत हो चुका था कि वह हर जगह था। मुझे लगा कि यह अनुभव कुछ मिनटों के लिए ही था, लेकिन जब मैं अपने सामान्य होश में आया, तो शाम के लगभग साढ़े सात बज चुके थे। मेरी आँखें खुली थीं, सूरज ढल चुका था और चारों तरफ़ अंधेरा था। मैं पूरी तरह से होश में था, लेकिन उस पल तक जिसे मैं अपना अस्तित्व समझता था, वह ग़ायब हो चुका था। मुझे वह घटना अच्छी तरह याद है, जब मैं आठ साल का था - कुछ बात हुई थी और मैं रोने लगा था। उसी दिन मैंने यह तय कर लिया था कि मैं अब आगे कभी नहीं रोऊँगा; मुझे कभी नहीं रोना चाहिए। मैंने ख़ुद को सख़्ती से इस तरह बाँध रखा था। (बँधी मुट्ठी दिखाते हुए) फिर चाहे जैसे हालात आए, मैंने कभी एक भी आँसू नहीं बहाया, आठ साल से पच्चीस साल की उम्र तक। यहाँ मैं बैठा हुआ हूँ, आँसू इस कदर बह रहे हैं कि मेरी कमीज़ गीली हो चुकी है और मैं परम आनन्द में भावविभोर हो रहा हूँ। मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि यह क्या हो रहा है। मैं हमेशा से शांत और ख़ुशमिजाज रहा हूँ। यह मेरे लिए कभी कोई मुद्दा नहीं रहा है। मैंने जैसा चाहा, वैसा जीवन जिया। लेकिन यहाँ मैं एकदम नए तरह के परमानन्द में भीगा हुआ हूँ। जब मैं अपनी तर्क-बुद्धि का इस्तेमाल करता हूँ, तो यह मुझे यही बताती है कि मैं अपना संतुलन खो रहा हूँ। मेरा दिमाग़ बस इतना ही बता सकता है। लेकिन यह इतना सुंदर है कि मैं इसे खोना नहीं चाहता।'

सद्‌गुरु चामुण्डी हिल की उस दोपहर के बारे में इससे ज़्यादा कभी-कभार ही बताते हैं। उस अनुभव को शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता था। ऐसे शब्द न कभी थे, न हैं। फिर भी थोड़ा ज़ोर देने पर, उन्होंने उस अनुभव के बारे में गूढ़ तरीक़ों से बताया है। 'यह कुछ वैसा ही है जैसे कि कोई हर वक़्त नशे में धुत हो, एक बूँद भी शराब पिए बिना।' एक दूसरे मौक़े पर उन्होंने कहा, 'सब कुछ जो है, बस जीवन है। न कोई पहाड़ है, न फूल, न बादल, कुछ भी नहीं। यह बस ऊर्जा है - शुद्ध स्पंदनशील ऊर्जा। आप उसे सृष्टिकर्ता या सृष्टि कह सकते हैं, या फिर आप इसे ख़ुद अपना

स्वरूप कह सकते हैं। कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।' एक और मौक़े पर उन्होंने कहा, 'आत्मज्ञान कोई उपलब्धि नहीं है। यह घर लौटने की तरह है। पूरी तरह से घर लौटना – यही आत्मज्ञान है।'

एक और मौक़े पर उन्होंने कहा, 'इसका मतलब है कि आप जीवन को उसी तरह देखते हैं, जैसा वह असल में है। आप उसमें से हर चीज़ निकाल दें – सारी कविता, सारी जमा पूँजी – जीवन को बस उस तरह देखें, जैसा यह है। तब आपको एहसास होगा कि जीवन के कई आयाम हैं। तब आपकी समझ में आता है कि अगर आप जीवन की पूरी विशालता का आनंद नहीं लेते हैं, तो यह जीने का बेवकूफ़ी भरा तरीक़ा है। "यह जीवन है" या "वह जीवन है," जैसी कोई बात ही नहीं है। इसमें कुछ भी "यह" या "वह" नहीं है। इसमें कोई "हाँ" या "ना" भी नहीं है; बस "हाँ" और "हाँ" है।'

एक और मौक़े पर, चामुण्डी हिल की उस ऐतिहासिक दोपहर के बाद की उनकी आंतरिक अवस्था के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने कहा, 'अब मैं पूरी तरह नक़ली हूँ। आप सिर्फ़ आधे नक़ली हैं। मेरा वजूद पूरी तरह से ख़ुद का बनाया हुआ है। यह सब बस एक नाटक है।' यह पूछने पर, 'और क्या इस झूठ के पीछे झूठ बोलने वाला भी है?' उन्होंने कहा, 'नहीं, सिर्फ़ झूठ है, कोई झूठ बोलने वाला नहीं है।' 'तो इस नाटक के पीछे क्या है?' मैंने पूछा। उनका गूढ़ जवाब था, 'अथाह शून्य।'

उनसे पहले सांसारिक और अलौकिक के बीच की रहस्यमय ड्योढ़ी पार करने वाली सभी हस्तियों के लिए भी उस अनुभव को तार्किक भाषा में बयान करना नामुमकिन रहा है। इसके अलावा, आत्मज्ञान के समय जग्गी ख़ुद को भी नहीं समझा पा रहे थे। उस पहाड़ी से नीचे उतरने वाले युवक के लिए सिर्फ़ एक बात साफ़ थी : जीवन अब पहले जैसा कभी नहीं होगा।

जग्गी जब ऑफ़िस पहुँचे तो रात के आठ बज चुके थे। वे ठिठके। खिड़की से वे अपने बिज़नेस पार्टनर को मेज़ पर बैठा देख सकते थे। उनके पार्टनर ने उम्मीद से उनकी तरफ़ देखा कि वे अंदर आकर पाँच घंटे की देरी की वजह बताएँगे और उस दिन की गतिविधियों की जानकारी हासिल करेंगे।

यज़्दी का इंजन चालू था। जग्गी मोटरसाइकिल पर लगभग दस मिनट तक बिना उतरे बैठे रहे। उसके बाद वे मुड़े और चले गए, जिसे देखकर उनके पार्टनर को बड़ी हैरानी हुई। वे शहर की जानी-पहचानी सड़कों पर धीरे-धीरे मोटरसाइकिल चलाते रहे। सब कुछ वैसा ही लग रहा था। मैसूर की रात में कोई बदलाव नहीं आया था। उस रात वे साढ़े दस बजे घर पहुँचे। उन्होंने किसी से कोई बात नहीं की और यंत्रवत भोजन किया। उस रात वे तीन बजे तक बिस्तर पर बैठे रहे।

एक हफ़्ते के बाद उनको वही अनुभव फिर से हुआ। उस वक़्त वे अपने परिवार के साथ खाने की मेज़ पर थे। अचानक उनका सिर फटने लगा। उन्हें लगा कि यह सिर्फ़ कुछ मिनटों के लिए था, लेकिन सात घंटे बीत चुके थे। एक और मौक़े पर तेरह दिन बीत गए। 'मैं पूरे तेरह दिन बस बैठा रहा,' वे कहते हैं, 'इन तेरह दिनों में मैंने न तो कुछ खाया, न सोया, न टॉयलेट गया। मैं बस बैठा रहा था। मेरे अपने अनुभव में यह बस 15 या 20 मिनट जैसा ही लगा। तो मेरे अनुभव में समय का एहसास ख़त्म होता जा रहा था। इसे संतुलित करने में और इसे हर वक़्त की जीती-जागती हक़ीक़त बनाने में मुझे लगभग छह हफ़्ते का समय लगा। इस अनुभव को अपने भीतर स्थिर करने में मुझे थोड़ा और वक़्त लगा।' जो हो रहा था उसकी वजह समझ से परे थी। उनका परिवार भी उनकी तरह ही चकराया हुआ था। उन्होंने कुछ दोस्तों से इस बारे में बात की, लेकिन वे भी अनजान थे। कुछ ने पूछा कि क्या उसने कोई नशे की चीज़ खा ली है?

*इन तेरह दिनों में मैंने न तो कुछ खाया, न सोया, न टॉयलेट गया। मैं बस बैठा रहा था। मेरे अपने अनुभव में यह बस 15 या 20 मिनट जैसा ही लगा। तो मेरे अनुभव में समय का एहसास ख़त्म होता जा रहा था।*

हालात तेज़ी से बदलने लगे। उनके पिता के रेलवे अस्पताल से आई एक नर्स अचानक उनके पैरों पर गिर पड़ी। दूसरे भी अनजाने में वैसा ही करने लगे। एक ऐसे इंसान के लिए, जिसने अपनी ज़िंदगी में कभी किसी के

पैर नहीं छुए, जग्गी के लिए यह बड़ा विचित्र अनुभव था। उससे भी ज़्यादा बेतुका तब लगा, जब लोग उनसे अपना भविष्य पूछने लगे। एक ने तो उनसे अपनी बेटी की शादी की तारीख़ निकालने के लिए कहा! इधर जग्गी को भी इस बात का एहसास था कि वे अब पहले जैसे नहीं रहे। असल में उनकी सूरत भी बदलने लगी थी। सिर्फ़ चेहरे के हावभाव ही नहीं, बल्कि उनके नाक-नक़्श, आँखों का आकार, आवाज़ और यहाँ तक कि शारीरिक बनावट में भी बदलाव आ गया। दूसरे लोगों का ध्यान भी इन बदलावों की तरफ़ गया। वे कहते हैं, 'मेरी आवाज़ बदल गई थी। आँखें पहले के मुक़ाबले ज़्यादा बड़ी और चमकदार हो गईं थीं।'

इस शारीरिक रूपांतरण की वजह क्या थी? वे कहते हैं, जो कुछ हुआ, वह उनकी पूरी भीतरी संरचना का पुनर्गठन था। 'पिछले तेरह वर्षों से लगातार किए गए योग का फल अब मिला था। योग मुख्य रूप से शरीर के पुनर्निर्माण का एक तरीक़ा है, ताकि उसके द्वारा एक उच्च उद्देश्य हासिल किया जा सके। इसी वजह से यह प्रणाली काम करती है। शरीर में 'चक्र' स्थिर नहीं हैं, वे गतिमान होते हैं। हम उनको अपने शरीर के अंदर और बाहर गतिशील कर सकते हैं। देवी-देवताओं का सृजन करने का विज्ञान यही है। मनुष्य को चैतन्य (डिवाइन) में रूपांतरित करने की एक पूरी तकनीक है। मानव शरीर हाड़-मांस के एक पुतले की तरह भी काम कर सकता है और सृष्टि के स्रोत के रूप में भी। मनुष्य का मेरुदंड सिर्फ़ हड्डियों का एक अनूठा ढाँचा ही नहीं, यह ब्रह्मांड की धुरी भी है। यह बस इस बात पर निर्भर है कि आप अपने शरीर का पुनर्गठन किस तरह करते हैं। मेरे अपने मामले में, शारीरिक तौर पर एक बेहद सक्रिय इंसान होने की वजह से, मैंने अपने शरीर को इस तरह चलाना सीख लिया था, मानो उसका अस्तित्व ही न हो। मेरा शारीरिक पहलू बहुत शांत हो गया। पहले वह सारी तीव्रता मेरे शरीर में थी। लोग भी इसे महसूस करते थे। अगर मैं किसी कमरे में घुसता था, तो इसका मतलब कुछ न कुछ करना होता था। पर अब मैंने अपने शरीर को अलग ढंग से चलाना सीख लिया। मेरे चक्रों के पुनर्गठन का यह भी मतलब था कि मैं अलग-अलग हालात में अलग-अलग क़िस्म का इंसान हो सकता हूँ। यह चीज़ आज भी बरकरार है। हालात के तकाजे के मुताबिक़ मैं एक बिलकुल अलग इंसान हो सकता हूँ, जिसे कुछ लोग पहचान ही न पाएँ।'

उनके भीतरी अनुभव का प्रत्यक्ष प्रमाण भी था। जीवन तो हमेशा से रोमांचक रहा था, लेकिन अब यह अधिक समृद्ध और तीव्र था। यह इस अंदरूनी खोज के तेज से दमक रहा था। ऐसा उन्हें पहले कभी महसूस नहीं हुआ था। इसके बाद से जग्गी के बाहरी जीवन के मुक़ाबले, उनके भीतरी जीवन में बहुत ज़्यादा चीज़ें घट रही थीं। 'अब मैं अपने भीतर एक ही क्षण में हो रही करोड़ों अलग-अलग चीज़ों के प्रति जागरूक था। मेरे साथ अब भी ऐसा ही है। किसी से बातचीत करते हुए भी, मैं अपने भीतर एक साथ घट रही अनगिनत चीज़ों के प्रति जागरूक रहता हूँ। यह कैलाइडोस्कोप की तरह है। इससे लोगों का दिमाग़ चकरा जाता है। उन्हें समझ नहीं आता कि मेरी बातों का क्या मतलब निकालें।' उनके पिता हमेशा अपने इस विचित्र बेटे पर हैरान होते रहे, जिसका जीवन ध्यान और मोटरसाइकिल सवारी के बीच तेज़ी से झूल रहा था। अपनी माँ के लिए तो जग्गी पहले से ही बेटे के बजाय बड़े भाई ज़्यादा थे।

इस अनुभव का उनके ऊपर दूसरा असर यह हुआ कि अब वे अपने आसपास के लोगों की भावनाओं के प्रति बहुत ज़्यादा संवेदनशील हो गए थे। यह बात जग्गी की समझ के बाहर थी कि उनके आसपास के लोग इतना असंतुष्ट जीवन जी रहे हैं, जबकि उनका जीवन परमानंद से सराबोर है। ऐसे कई मौक़े आए, जब किसी अजनबी राहगीर को तकलीफ़ में देखना भर उन्हें रुला देने को काफ़ी था। बाद में उन्हें अपनी उस प्रतिक्रिया पर क़ाबू पाना सीखना पड़ा। अब वे कभी-कभार ही कष्ट के प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया दिखाते हैं। 'मिसाल के लिए, जब मैं किसी पेड़ की टूटी शाखा को देखता हूँ, तो अब मेरी भावनाओं के बजाय मेरी ऊर्जा उमड़ती है। कभी-कभार ही मैं भावुक होकर प्रतिक्रिया करता हूँ। ऐसा करना मेरे लिए एक "लग्ज़री" जैसा है। मैं अब भी दूसरों की तकलीफ़ के प्रति बहुत संवेदनशील हूँ, लेकिन अब यह एक मनोवैज्ञानिक या भावनात्मक प्रतिक्रिया कतई नहीं है।'

चामुण्डी हिल की उस दोपहर के छह हफ़्ते बाद जग्गी ने अपना कारोबार छोड़ दिया। उन्हें किसी ऐसी चीज़ का हिस्सा बने रहना अनुचित लगा, जिसमें उनके हाल में हासिल बोध से फ़ायदा उठाया जा सके। उनका यह फ़ैसला नैतिकता के किसी मुद्दे का नहीं, बल्कि 'जीवन की उनकी समझ' का नतीजा था। अब वे अपने अनुभव से जान गए थे कि नैतिक

आचार-विचार बस असल जीवन की नक़ल ही हैं। अब वे पहले से ज़्यादा स्पष्ट रूप से जानते थे कि उनको कभी नैतिकता से प्रेरित होकर काम करने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि केवल अपनी मानवता से प्रेरित होना काफ़ी है। वे सहज ही कहते हैं, 'अब दूसरों के मन की बात जान लेना, और किसी से बिलकुल वही काम करा लेना, जो मैं उससे चाहता था, मेरे लिए आसान हो गया था। अब भी मैं ऐसा कर सकता हूँ। लेकिन इसका क्या तुक है? यह तो किसी पाँच साल के बच्चे के साथ गोल्फ़ खेलने जैसा है। मैं ऐसा नहीं करना चाहता। यह कोई नैतिकता का सवाल नहीं है, बल्कि जीवन की सुंदरता (एस्थेटिक्स) का सवाल है।' ईशा का विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों में विस्तार होने पर भी, मीटिंग में ख़ुद जाने के बजाय, आज भी वे अपने प्रतिनिधि को ही भेजते हैं।

जब उनमें स्थिरता आने लगी, तब उन्हें एहसास हुआ कि जो कुछ उनके साथ घटित हुआ था, 'वह किसी इंसान के साथ हो सकने वाली सबसे सुंदर चीज़ थी। लोग बचपन को सबसे सुंदर इसलिए कहते हैं, क्योंकि बच्चा हँस सकता है, इधर-उधर उछल-कूद कर सकता है, बेवजह ख़ुश हो सकता है। लेकिन मैंने पाया कि वयस्क होने पर भी, कुदरती तौर पर, बेवजह परमानन्द में भाव-विभोर होना सम्भव है। जब मैंने देखा कि यह हर किसी के लिए मुमकिन है, तो ज़ाहिर है कि मैं इसे बाँटना चाहता था। तभी से मेरी पूरी कोशिश यही रही है कि किसी-न-किसी तरह मैं इस अनुभूति को दूसरों के लिए भी सम्भव बनाऊँ।'

अब उन्हें यह समझ में आना शुरू हो रहा था कि चामुण्डी हिल पर उस दोपहर जो कुछ अचानक हुआ, वह कोई रहस्यमय (मिस्टिकल) चीज़ थी। उन्होंने कभी कोई आध्यात्मिक पुस्तक नहीं पढ़ी थी। इसलिए उनके पास कोई ऐसी मिसाल नहीं थी, जिससे वे अपने अनुभव की तुलना कर सकते। बाद में, वे अक्सर अफ़सोस के साथ कहा करते कि उनकी बोध प्राप्ति में, सदियों पहले गौतम बुद्ध के आत्मज्ञान की लुभावनी दंतकथा जैसी बातें नहीं थीं। न तो पूर्णिमा का चमकता हुआ चाँद था, और न पीपल के पेड़ की छाँव। इसके बदले उनके चारों तरफ़ दोपहर की चिलचिलाती धूप और पथरीली दक्षिणी चट्टान थी। फिर भी नतीजा वही था - निजी तौर पर उतना ही महत्त्वपूर्ण, जीवन को उतना ही रूपांतरित करने वाला।

अगर बुद्ध ने उसके बाद के कई हफ़्ते अपनी स्पष्ट अंतर्दृष्टि का आनन्द लेते हुए और अपने वर्षों तक चलने वाले मिशन की तैयारी करते हुए बिताए थे, तो जग्गी ने भी वही किया। 'मैं अपनी आँखें मूँद लिया करता और किसी चट्टान पर या किसी पेड़ के नीचे बैठ जाता, और बस... मेरा जीवन सार्थक हो चुका था। कुछ दिनों के उपरांत मैंने सचमुच यही सोचा, "यही तो सब कुछ है। अब कुछ और करने को बचा ही क्या है? यही तो संपूर्णता है।" अब सवाल बस प्रस्थान की योजना बनाने का रह गया था। मैंने सोचा कि बस कुछ समय के लिए यहाँ रहूँगा, इस अवस्था की सुंदरता का भरपूर आनन्द लूँगा। उसके बाद फिर अपने ही ढंग से इस नश्वर शरीर को त्याग दूँगा। उस समय मुझे जानने वाले लोग मुझे हमेशा इस बारे में बात करते हुए सुनते थे कि मैं कब दुनिया से कूच करूँगा। लेकिन वे इस सबको समझ नहीं पाते थे। वे कहते, "तुम आत्महत्या करने वाले इंसान तो नहीं लगते?" मैं जवाब देता कि यह आत्महत्या तो निश्चित रूप से नहीं है। मैं बस इस शरीर से बाहर निकल जाऊँगा। मुझे क़ब्र तक ले जाने के लिए, मैं चार लोगों को तकलीफ़ नहीं दूँगा। मैं ख़ुद चलकर अपनी समाधि तक जाऊँगा।'

*अब दूसरों के मन की बात जान लेना, और किसी से बिलकुल वही काम करा लेना, जो मैं उससे चाहता था, मेरे लिए आसान हो गया था। अब भी मैं ऐसा कर सकता हूँ। लेकिन इसका क्या तुक है? यह तो किसी पाँच साल के बच्चे के साथ गोल्फ़ खेलने जैसा है।*

इसके बावजूद, शाक्य-मुनि गौतम बुद्ध की तरह, उन्हें भी एहसास होने लगा था कि उनकी खोज सिर्फ़ ख़ुद अपने लिए नहीं थी। हालाँकि एक रहस्यमय वैरागी का जीवन लुभाने वाला था, फिर भी यह उनके लिए नहीं था। उनका अब तक का जीवन सिर्फ़ इस पल की एक तैयारी की तरह था। आत्मज्ञान ज़रूर हुआ था, पर किसी और चीज़ के बजाय, यह याद दिलाने के लिए ज़्यादा था। ऐसा पहले भी हुआ था, लेकिन उससे कहीं ज़्यादा

महत्त्वपूर्ण चीज़ - ध्यानलिंग - का साकार होना अभी बाक़ी था। एक अधूरे वचन की कुरेदती पीड़ा एक झटके में उनके पास लौट आई। जो कुछ हुआ था, वह सिर्फ़ नाटक की शुरुआत थी। इससे कहीं बड़ी, कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण कहानी आगे आने वाली थी।

अब उन्हें एहसास हुआ कि उनके इसी परिवार में पैदा होने के पीछे भी एक वजह है। इसका उनके पिछले जन्म के कर्मों से कोई ख़ास संबंध नहीं था, लेकिन यह ऐसा परिवार था, जिसने उनके जीवन के मिशन में नहीं के बराबर दख़ल दिया। 'बहुत से लोगों के माता-पिता उनके जीवन को दिशा देने में एक बड़ी भूमिका निभाते हैं। मैंने यहाँ जन्म लेना इसलिए चुना, क्योंकि यह परिवार सबसे कम दख़ल देने वाला था। मेरी माँ में थोड़ा आध्यात्मिक रुझान था। नौ साल की उम्र में उनको एक योगी ने नंदी हिल पर दीक्षा दी थी। उन्होंने मेरे जीवन में किसी तरह की बाधा नहीं डाली। जब तक मैं अपनी परीक्षाओं में पास होता रहता, तब तक मेरे पिता भी मुझसे कोई सवाल-जवाब नहीं करते थे।'

उन्हें यह भी एहसास हुआ कि यह याद दिलाने वाली घटना उनके जीवन के इसी ख़ास वक़्त पर क्यों घटी। ध्यानलिंग के निर्माण के लिए ऊर्जा पर एक ख़ास महारत की ज़रूरत थी। इसका संबंध शारीरिक या बौद्धिक निपुणता से न होकर ऊर्जा और उसकी संभावनाओं की समझ से है। पच्चीस साल की उम्र में जग्गी अपने जीवन के चरम पर थे और अपनी ऊर्जा को संचालित करने की उनकी क़ाबिलियत काफ़ी पैनी हो चुकी थी। इस क़ाबिलियत के बिना उनके लिए अपने भौतिक शरीर में बने रहना बड़ा मुश्किल होता। 'अज्ञानता के बिना आप भौतिक शरीर में बने नहीं रह सकते।' उन्होंने बाद में कहा था, 'एक आत्मज्ञानी के लिए उन तरकीबों को जानना ज़रूरी है, वरना वह भौतिक शरीर में क़ायम नहीं रह सकता। इस नज़रिए से, धरती पर कोई भी आत्मज्ञानी इंसान नहीं है। ज़्यादातर लोग मजबूरी में अज्ञानी हैं, और कुछ लोग जान-बूझकर अज्ञानी हैं, बात बस इतनी सी है।'

जहाँ तक ध्यानलिंग का सवाल था, इसे कैसे साकार किया जाए? इसकी तकनीक की तब उनको चिंता न थी। वे जानते थे कि तकनीक मौजूद है। एक बार जब वे इस पर दिमाग़ लगाएँगे, तो चीज़ें अपने आप स्पष्ट होती

चली जाएँगी। उन्होंने कई वर्षों बाद इसकी पुष्टि भी की। 'मेरे साथ ऐसा ही रहा है। मैं जो कुछ भी जानना चाहता हूँ, वह जानकारी पलभर में मेरे पास होती है। मैं सड़क पर ज्ञान का बोझ लेकर नहीं चलता। आमतौर पर लोग ज्ञान के बोझ से भारी और गंभीर हो जाते हैं। पर जब ज्ञान, याददाश्त के बजाय ऊर्जा के रूप में आप तक पहुँचता है, तो ज्ञान का बोझ आप पर नहीं होता। जब मेरे गुरु पलनी स्वामी ने मुझे अपनी छड़ी से छुआ था, तब जो कई जीवनकालों में नहीं सीखा जा सकता था, वह एक क्षण में मेरे पास आ गया था।' यह तत्काल ज्ञान प्राप्त करने का तंत्र ही है, जिसने उन्हें एक अनोखे और विशाल ज्ञान का भंडार बना दिया है, और इसके बावजूद वे निर्बोझ दिखते हैं। बहुत से लोगों ने इस बात पर ग़ौर किया है।

जग्गी जानते थे कि इस समय उन्हें सबसे पहले सबकी सद्‌भावना की ज़रूरत थी। उनसे पहले अपनी कोशिशों में नाकाम रहे योगियों की यादें उनके दिमाग़ में फिर से ताज़ा हो गईं। पिछले तीन जीवनकालों के दौरान अपनी ही प्रचण्ड लेकिन नाकाम कोशिशों की यादें उन्हें सताने को लौट आईं। वे जानते थे कि सामाजिक स्वीकृति के बिना कुछ भी मुमकिन नहीं था। सबसे पहले उनके लिए अपने उन चुनिंदा भरोसेमंद लोगों से मिलना ज़रूरी था, जिनको उन्होंने एक जीवनकाल पहले तैयार किया था। इसके बाद उनका अगला मिशन यह पक्का करना था कि उनके गुरु के सपने को, इंसानी अज्ञानता और शक की वजह से, फिर से कोई नुक़सान न पहुँचे। इस बार इसके लिए कोई भी क़ीमत चुकाना ज़्यादा न था। जैसा कि एक बार उन्होंने बताया था, इस बार वे कुछ भी करने के लिए तैयार थे, 'जो कि एक आदमी को करना चाहिए या नहीं करना चाहिए।'

तो ऐसा लगा कि घोर नास्तिक जग्गी आख़िरकार मंदिर बनाने जा रहे हैं! लेकिन उन्हें मालूम था कि इस वक़्त किसी को भी इस बारे में बताने का कोई मतलब नहीं है। ऐसा नहीं था कि उनके पास भरपूर समय है, पर जग्गी को कुछ और भी पता था। कुछ और, जो उनकी योजना में तीव्रता लाने वाला था। वे जानते थे कि वे बयालीस साल की उम्र में अपना शरीर त्याग देंगे। इसका अर्थ था, अपने जीवन के बाकी बचे सत्रह वर्षों में पूरे ज़ोर-शोर से काम करना। इसका यह भी मतलब था कि उन्हें सभी बंधनों को कम से कम रखना था। उन्हें हल्का रहकर सफ़र करना था।

और तब 1984 में उनकी मुलाक़ात विजी से हुई।

एक बार सद्‌गुरु ने बातचीत के दौरान मज़ाक में कहा, 'मेरी समस्या यह है कि मैं ज़रूरत से ज़्यादा लोकतांत्रिक दिव्यदर्शी हूँ।'

उनका इशारा उस तरफ़ था, जब उन्होंने अपने जीवन के घटना-क्रम की दिशा, अपने क़रीबी दूसरे लोगों को तय करने दी, जबकि उनकी ख़ुद की समझ उन्हें बताती थी कि वह क़दम ग़ैरज़रूरी और अवांछनीय था।

यह टिप्पणी उस इंसान पर कुछ रोशनी डालती है, जिसने अपना जीवन नियंत्रण और लापरवाही, योजना की सतर्कता और शानदार उपायों के अनूठे तालमेल के साथ जिया है। उन्होंने अपनी दूरदर्शिता से ध्यानलिंग की सारी योजना अपने पिछले जीवनकाल में ही बना ली थी। हमेशा से विद्रोही जग्गी ने दुस्साहस भरा जीवन जिया, लेकिन कभी भटके नहीं। जागरूकता और दीवानगी- इसी सिद्धांत पर उन्होंने कभी ध्यानलिंग के निर्माण का खाका तैयार किया था। इसलिए इसमें अस्थिर और अप्रत्याशित का होना भी ज़रूरी था।

इस नज़रिए से देखें, तो शायद उन्हें आत्मज्ञान मिलने के बाद का घटनाक्रम ज़्यादा हैरान नहीं करेगा। सबसे पहले, एक साल तक ख़ुद में सीमित रहने, ध्यान और यात्रा करने के बाद जग्गी ने योग सिखाने का फ़ैसला किया। उनमें अपने अद्‌भुत अनुभव को दूसरे लोगों तक पहुँचाने की चाह थी। 'जब मैंने पाया कि बड़े होने पर भी हम बिना किसी कारण के आनंदविभोर हो सकते हैं, तो मैं इसे दूसरों के साथ साझा करना चाहता था। तब से यही मेरी कोशिश रही है। मैंने योग इसलिए चुना, क्योंकि बहुत कम उम्र से ही मैं इसका अभ्यास करता रहा हूँ। मैंने महसूस किया कि मेरे भीतर जो कुछ हो रहा है, उसे व्यक्त करने के लिए यही जरिया सही रहेगा।' अपने मिशन को कारगर करने के लिए उन्हें जिन लोगों से जुड़ने की ज़रूरत थी, उनके संपर्क में आने के लिए यही तरीक़ा तर्कसंगत लगा।

योग की पहली क्लास के लिए लोगों को आकर्षित करना आसान नहीं था। मैसूरवासी उनको एक जोशीले मोटरसाइकिल सवार और सफल कारोबारी के तौर पर जानते थे। मगर बहुत से लोगों को इस बात से शक

हुआ कि उन्होंने अपना काम-धंधा छोड़कर ऐसी जीवन शैली अपना ली थी, जो लोगों को आलस भरी दिखती थी। सद्‌गुरु याद करते हैं, 'पूरे साल मैं बस ख़ाली बैठा रहा, क्योंकि सिर्फ़ बैठे रहना मेरे लिए सबसे शानदार अनुभव था। लेकिन इससे मुझ पर एक ख़तरनाक इंसान होने का ठप्पा लग गया। बहुत समझाने-बुझाने, ख़ुशामद करने, ज़ोर-ज़बर्दस्ती के बाद सात लोग मेरे कार्यक्रम में आने के लिए तैयार हुए।'

*जब मैंने पाया कि बड़े होने पर भी हम बिना किसी कारण के आनंदविभोर हो सकते हैं, तो मैं इसे दूसरों के साथ साझा करना चाहता था। तब से यही मेरी कोशिश रही है। मैंने योग इसलिए चुना, क्योंकि बहुत कम उम्र से ही मैं इसका अभ्यास करता रहा हूँ।*

पहला कार्यक्रम रोज़ाना दो घंटे के लिए चार दिनों का था। दूसरे दिन क्लास पाँच घंटे तक चलती रही, और ऐसा ही तीसरे दिन भी हुआ। फिर सबकी माँग पर कार्यक्रम को छह दिनों का बना दिया गया। उसके बाद पीछे मुड़कर देखने की ज़रूरत नहीं पड़ी। आगे चलकर कार्यक्रम की बनावट और ढाँचे में बदलाव और सुधार करके उसे ईशा-योग के वर्तमान स्वरूप में ढाला गया। लेकिन इसकी शुरुआत उन सात छात्रों से ही हुई, जिन्होंने एक अज्ञात शिक्षक पर भरोसा करके एक अनजान डगर पर चलने की हिम्मत की थी। ऐसा जोखिम उठाने के लिए जग्गी उनके आभारी थे। वे कुछ सिखा सकते थे, यह बात जग्गी के साथ-साथ उनके छात्रों को भी पहली बार पता चली।

एक तरह से अगर देखें तो यह महज उनकी प्राथमिकता में आया बदलाव मात्र था - पहले मोटर साइकिल की देखरेख महत्त्वपूर्ण थी और अब भीतरी देखरेख महत्त्वपूर्ण हो गई- मगर इसने उनका और बहुत से दूसरे लोगों का जीवन स्थाई तौर पर बदल दिया। सद्‌गुरु कहते हैं, 'उसके बाद से मैंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। इन कार्यक्रमों में लाखों लोग भाग ले चुके हैं। यह विकास के कई चरणों से गुज़र चुका है और अब हमने इसे ऐसा

रूप दे दिया है कि यह हर तरह के लोगों के लिए कारगर है। उस समय इसका स्वरूप तय नहीं था। मुझे जैसे अच्छा लगा, वैसे ही मैंने सिखाया। आध्यात्मिक माहौल से मेरा कभी वास्ता नहीं पड़ा था, और न ही मैंने कुछ पढ़ा था। अभी भी मैं आध्यात्मिक रूप से शिक्षित नहीं हूँ, इसीलिए लोग मुझे सद्गुरु कहते हैं, जिसका मतलब है, एक अशिक्षित गुरु।' हँसते हुए वे आगे कहते हैं, 'इसका शाब्दिक अर्थ है, "वह जो भीतर से प्रकट होता है।" जो शास्त्रों या धर्मग्रंथों या ऐसी किसी चीज़ के बारे में नहीं जानता।'

कुछ समय तक जग्गी ने अपनी ख़ुद की कक्षाएँ चलाईं। फिर उन्होंने ऐसे ही लक्ष्यों वाले दूसरे योग संगठनों की छत्रछाया में काम करने का फ़ैसला किया। उद्देश्य भले ही एक से रहे हों, पर उन्हें शुरू से ही एहसास था कि जिनके साथ वे जुड़े थे, उनमें से किसी को भी उनके जैसा भीतरी अनुभव नहीं हुआ था। पर मिलकर काम करने के अपने फ़ायदे थे। इससे वे अपने काम का बोझ, जितना चाहें, हल्का रख सकते थे। 'मैंने देखा कि इनमें हरेक के पास हर क़िस्म की युक्तियाँ, तरकीबें और तकनीकें थीं, लेकिन उनके पास कोई अनुभव नहीं था। मेरे पास गहन अनुभव था, पर तरीक़ा या तकनीक नहीं थी। दूसरों के तरीक़ों को देखने से मुझे मदद मिली। इससे कम से कम यह साफ़ तौर पर सीखने को मिला कि क्या नहीं करना चाहिए। यह बहुत क़ीमती योगदान था- कई स्तरों पर आध्यात्मिक गतिविधियों में लगे लोगों के कुछ समूहों को सिर्फ़ देखकर यह समझना कि क्या चीज़ नहीं की जानी चाहिए। उनमें से कुछ ने अपने ही तरीक़े से ईशा कार्यक्रम में योगदान दिया है। जाने-अनजाने में ही उन लोगों को कुछ ऐसी चीज़ें मिल गई थीं, जिनकी क़ीमत वे नहीं जानते थे। वही बातें मैंने भी चुनीं, और आगे चलकर उनसे एक बिलकुल अलग चीज़ बना दी। ईशा योग में जो हम करते हैं, वह कई तरह से अनोखा है। इस धरती पर और कहीं भी योग को इस तरह से पेश नहीं किया जाता। विषय-सामग्री एक जैसी हो सकती है, लेकिन जिस तरह से इसे प्रस्तुत किया जाता है - जिस आयाम और गहराई में इसे पेश किया जाता है - वह, जहाँ तक मुझे मालूम है, कहीं और नहीं किया जाता।'

उन्होंने अपने पोल्ट्रीफ़ार्म से आने वाले किराये की आमदनी पर, साधारण भोजन करके और सिर्फ़ तीन जोड़ी जीन्स में गुजारा किया। वे योग सिखाने की फ़ीस नहीं लेते थे। योग-कक्षा से जमा हुए पैसों को, वे क्लास के आख़िरी सत्र में सबकी मौजूदगी में अनाथालय, वृद्धाश्रम या दूसरी ऐसी

संस्थाओं को दान कर देते थे। इसके बाद वे मोटरसाइकिल पर सवार होकर एक महीने के लिए ग़ायब हो जाते। अपने लक्ष्य के लिए प्रतिबद्धता उनकी मूल रूप से आज़ाद प्रकृति को बाँध नहीं सकी।

उनके आध्यात्मिक बोध को दो साल ही बीते होंगे कि उनकी शादी हो गई। इसके छह साल बाद उनकी एक संतान भी हुई। इस स्वच्छंद दिव्यदर्शी व योगी को एक गृहस्थ बनने की क्या ज़रूरत थी? क्या वे भूल गए थे कि बयालीस साल की उम्र में उनको अपना शरीर छोड़ना था? उस इंसान के लिए, जो जानता था कि उसके जीवन का बस एक ही लक्ष्य है, क्या यह क़दम पूरी तरह असंगत नहीं था?

ऐसा लगता तो है, पर शायद ऐसा नहीं है। सद्‌गुरु में हमेशा से जीवन के प्रति इतना तीव्र प्रेम रहा है (अगर इसे विलास कहा जाए, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी) कि वे उसे सिर्फ़ एक शतरंज का खेल नहीं बना सकते थे। उनके जीवन के छोटे-बड़े ज़्यादातर फ़ैसले उनकी संतुलन करने की क़ाबिलियत पर आधारित लगते हैं - एक बेहद सक्रिय और ख़तरनाक संतुलन, जो कभी-कभी स्वयं शिव के ताण्डव की याद दिलाता है। यह विरोधाभासों के बीच एक संतुलन है - यानी रचनात्मकता और गणना, जोश और परिशुद्धता, लापरवाही और तर्क के बीच संतुलन। कुछ ऐसे मौक़े भी आए, जब संतुलन ठीक से काम नहीं कर पाया, जब चीज़ें ढह गईं, ग़लत हो गईं, और ख़ुद उनका जीवन बिखर गया। पर इस लोकतांत्रिक दिव्यदर्शी के लिए शायद यह भी रोज़मर्रा की बात जैसी थी।

उन्हें याद है कि वे विजी से पहली बार कब मिले थे। यह मुलाक़ात मैसूर में एक योग कार्यक्रम के बाद हुई थी। इक्कीस साल की ज़िंदादिल विजी (जो एक अत्याचारपूर्ण शादी और तलाक़ के हादसों से गुज़र चुकी थी) बेंगलुरु से कार्यक्रम में शामिल होने आई थीं। तीव्र मनोवैज्ञानिक स्वरूप वाले उस कार्यक्रम में भाग लेने वालों की भावनाएँ उफान पर थीं। जग्गी इस कार्यक्रम का संचालन नहीं कर रहे थे, लेकिन उनको दोपहर के भोजन पर बुलाया गया था। चार बजे के बाद खाना परोसा गया। वे भोजन करने बैठे। उन्होंने उस समय यूँ ही कमरे में चारों तरफ़ देखा, और उनकी नज़र विजी पर पड़ी। कोई बहुत पुरानी याद उभर आई।

चामुण्डी हिल के अद्भुत अनुभव के बाद, जग्गी की अपने अचेतन से यादें निकाल लाने की क़ाबिलियत और पैनी हो गई थी। उन्हें तुरंत यह एहसास हुआ कि यह महिला उनके पिछले जन्म में उनकी बहन थी। तब उसको अपने भाई से गहरा स्नेह था, लेकिन सद्गुरु श्री ब्रह्मा ने बहुत जल्दी घर छोड़ दिया था और बाक़ी का जीवन एक साधु की तरह गुज़ारा था। एक बहन के रूप में भी उन तक पहुँचना अनुपयुक्त और मुश्किल था। इसलिए उसके प्रेम को पूरी अभिव्यक्ति कभी नहीं मिली। इसलिए शायद इसमें हैरानी की कोई बात नहीं थी कि वह एक बार फिर उनकी ज़िंदगी में आई। 'उसके लिए सद्गुरु जैसे भाई का होना कोई आसान बात नहीं थी। उन्होंने बारह साल की उम्र में ही घर छोड़ दिया था। कभी-कभार ही वे उसके जीवन में आते, लेकिन हमेशा जल्दी चले जाते। दूसरी बात यह थी कि अधिकतर समय वे एक नग्न-साधु के रूप में रहते थे। कभी-कभार ही वे कपड़े पहनते थे। लेकिन अधिकतर समय वे कुछ नहीं पहनते थे। इस वजह से दिक्कतें थीं। उसमें उनके पास होने की तीव्र इच्छा थी, लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकती थी, क्योंकि वह एक स्त्री और उनकी बहन थी। इसलिए उसकी भावनाएँ अतृप्त रह गईं, और यही चीज़ उसे मेरे जीवन में वापस ले आई।' जग्गी को इसके अलावा कुछ और भी महसूस हुआ। वे जानते थे कि इस बार उन्हें उसे अपने साथ ही रखना है। वे उनके जीवन के मिशन के लिए बड़ी अहम थीं।

विजी ने उन्हें अपनी ओर देखते पाया। किसी अनजान वजह से वह उठकर उनके पास आ गई। उससे भी ज़्यादा आश्चर्य की बात यह हुई कि वह बेवजह ही रोने लगी। भावनाओं के उमड़ने के मामले में यह एक एडवांस कार्यक्रम था, इसलिए यह बात किसी को अटपटी नहीं लगी। जग्गी शांतिपूर्वक खाना खाते रहे। खा चुकने के बाद वे उठे और चले गए। लेकिन उस शाम, कार्यक्रम के औपचारिक समापन के बाद, वे सहभागियों के साथ जलपान के लिए शामिल हुए। वहीं उन दोनों की पहली बातचीत हुई।

एक दिन बाद, विजी ने बेंगलुरु से उन्हें चिट्ठी लिखी। इसमें उन्होंने उन्हें 'प्रिय भाई' कहकर संबोधित किया था। सद्गुरु कहते हैं, 'मज़े की बात यह थी कि वह इस बात से अनजान थी कि उसने ऐसा लिखा था। यह उसकी मेरे लिए पहली चिट्ठी थी और वह "प्रिय जग्गी" लिखना चाहती थी। पर उसने "प्रिय भाई" लिख डाला। मैं उससे सिर्फ़ एक दिन ही मिला था। वह एक किशोर युवती थी और उस मौक़े पर मैंने उससे कुछ नहीं कहा था।

लंबे अरसे तक वह चिट्ठी मैंने अपने पास रखी। बहुत समय बाद मैंने उससे पूछा, 'क्या तुम जानती थी कि तुमने "प्रिय भाई" लिखा था?' वह बोली, "मैं भला आपको भाई क्यों लिखने लगी?" जब मैंने उसे चिट्ठी दिखाई तो वह अवाक रह गई। उसे यह एहसास भी नहीं था कि उसने ऐसा लिखा था।'

चिट्ठी में विजी ने स्वीकार किया था कि उनके संपर्क में रहने की उसकी प्रबल इच्छा है। आकर्षण तुरंत पैदा हुआ था और दोनों तरफ़ से था। अगर विजी जग्गी के जोश, जीवन से प्रेम और रोमांच की वजह से आकर्षित हुई थी, तो जग्गी को विजी का बच्चों जैसा उल्लास और पल भर में दुखी और ख़ुश हो जाने की क़ाबिलियत पसंद आई थी। 'वह कभी बीच की स्थिति में नहीं होती थी। वह या तो बहुत ख़ुश होती थी, या फिर उदास। किसी पल अगर वह हँसती रहती, तो अगले ही पल रोने लगती थी।'

थोड़ा सोचते हुए वे कहते हैं, 'यह सच है कि वह मेरे जीवन में कुछ जल्दी आ गई। अगर ऐसा बाद में हुआ होता, तो शायद मुझे शादी करने की ज़रूरत महसूस न होती। आज मेरे जीवन में ऐसे बहुत से लोग हैं, जिनके साथ मैं क़रीब रहकर काम करता हूँ और उनसे मेरे गहरे आध्यात्मिक संबंध हैं। इसके लिए शादी की ज़रूरत नहीं है।' लेकिन उस समय लगा कि दो युवा लोगों को साथ वक़्त गुज़ारने के लिए केवल शादी ही उचित हो सकती है। ऐसा नहीं है कि जग्गी को इसके लिए खेद हो। यह एक युवा के जीवन में आए तूफ़ानी प्रेम का असर ज़्यादा था, न कि भावी मंदिर-निर्माण की योजना का हिस्सा।

> *महाशिवरात्रि का मौक़ा था और गाँव में मेला लगा हुआ था। शाम होने पर दोनों गाँव के ही एक छोटे से शांत मंदिर, रामेश्वर मंदिर में गए। वह जगह बिलकुल सही थी, धीमी रोशनी, उनका मनपसंद माहौल, और दोनों ने शादी करने का फ़ैसला कर लिया।*

जग्गी ने एक हफ़्ते बाद एक दोपहर को उस बैंक में, जहाँ विजी काम करती थी, जाकर विजी को चौंका दिया। 'आओ, चलें,' उन्होंने अपनी

स्वाभाविक जल्दबाजी में कहा। वह संकोच में पड़ गई। अभी साढ़े तीन बजे थे। खाता अभी बंद किया जाना था। एक नाकाम शादी से हाल ही में बाहर निकली, एक अकेली युवती के लिए बैंक की नौकरी बहुत मायने रखती थी। इसकी वजह से उसे आर्थिक आज़ादी हासिल थी, वह अपने फ़ैसले ख़ुद ले सकती थी, और घर से बाहर की दुनिया से उसका संपर्क क़ायम था। उस वक़्त तो उसे जग्गी का पूरा नाम भी नहीं मालूम था। फिर भी उसने किसी तरह मैनेजर से इजाज़त ली, और दोनों ने वह शाम साथ बिताई।

फिर तो कई शामें इसी तरह साथ बीतीं। विजी जग्गी के एक योग कार्यक्रम में बतौर स्वयंसेवी शामिल हुई। संबंध और गहरे हुए। एक दिन जग्गी ने विजी को बेंगलुरु फ़ोन किया और उसी शाम अपने पास आने को कहा। इस बार विजी को कोई हिचक नहीं हुई। वह घर गई, अपना सामान पैक किया और शाम की बस से मैसूर आ गई। उसके इस क़दम से परिवार वालों का भौंचक्का रह जाना, कोई आश्चर्य की बात न थी। उस रात जग्गी ने उसके ठहरने का इंतज़ाम नौकरी पेशा महिलाओं के होस्टल के एक कमरे में करा दिया। अगले दिन उसने रहने की कोई दूसरी जगह ढूँढ़ने पर ज़ोर दिया। अगली कुछ रातों में इस युवा जोड़े का पड़ाव, पहले चामुण्डी हिल, फिर 'बी आर हिल्स' पर रहा।

इसी दौरान जग्गी को गोमंतगिरि में एक कार्यक्रम संचालित करना था। इस कार्यक्रम के बीच में ही दोनों ने, मैसूर से डेढ़ सौ किलोमीटर दूर, इरुप्पु के ख़ूबसूरत झरने के पास छुट्टी मनाने का फ़ैसला किया। जग्गी यहाँ अक्सर आया करते थे और वे झरने के पास कैंप भी लगा चुके थे। महाशिवरात्रि का मौक़ा था और गाँव में मेला लगा हुआ था। शाम होने पर दोनों गाँव के ही एक छोटे से शांत मंदिर, रामेश्वर मंदिर में गए। वह जगह बिलकुल सही थी, धीमी रोशनी, उनका मनपसंद माहौल, और दोनों ने शादी करने का फ़ैसला कर लिया। हिंदू पंचांग के अनुसार इससे ज़्यादा शुभ मुहूर्त नहीं हो सकता था। इसी दिन शिव और पार्वती विवाह सूत्र में बँधे थे। भले ही उस समय उनको इसका एहसास न रहा हो, पर जग्गी और विजी शिव की पावन संगत में थे। वे हँसी में कहते हैं कि शिव ही उनके फ़ैसले के एकमात्र गवाह थे।

इस घटना के तुरंत बाद ही जग्गी ने अपने पिता के घर के पास की एक गली में एक मकान किराए पर ले लिया। तीन दिन बाद उन्होंने गृह

प्रवेश किया। वहाँ एक नारियल का पेड़ और रेत का ढेर था। इस नज़ारे को पूरा करने में बस कमी थी, तो समुद्र की। बस इतनी सी ही कमी थी। इसे पूरा करने के लिए युवा जोड़े के पास कल्पना और रोमांस की कमी नहीं थी। दो प्लास्टिक की बाल्टियों, कुछ बर्तनों और ज़रूरत भर के फ़र्नीचर के साथ जग्गी और विजी ने, साम्राज्य खड़ा करने वाले किसी विजेता के उत्साह के साथ नए घर में प्रवेश किया। अथाह प्रेम के चलते, भौतिक ज़रूरतों की कमी ज़्यादा मायने नहीं रखती थी।

एक बार मैंने उनसे पूछा कि उनके लिए शादी का मतलब क्या था? क्या इससे उन्हें कोई बंधन महसूस हुआ? क्या उनके पिछले असफल प्रेम की वजह से इस रिश्ते के प्रति नज़रिया बदल गया था? उन्होंने जवाब दिया, 'इस रिश्ते को मैंने परिपक्वता के एक अलग स्तर से देखा। मैंने अपनी पत्नी को एक खूँटी की तरह कभी नहीं देखा। मेरी शादी मेरे इर्दगिर्द रची हुई थी, लेकिन मैंने अपना जीवन शादी के इर्दगिर्द कभी नहीं रचा। इसका मतलब यह नहीं कि मैं विजी से प्रेम नहीं करता था। मैंने हर सम्भव तरीक़े से उससे रोमांस किया। अपने जीवन में उसे एक फूल की तरह स्वीकार किया, न कि एक खूँटी की तरह, जो बस एक सहारे के लिए हो।'

एक और मौक़े पर जब मैंने उनसे पूछा कि एक दिव्यदर्शी व योगी, जो चीज़ों को उसी तरह देखता है, जैसी कि वे वास्तव में हैं, उसके जीवन में रोमांस की क्या भूमिका हो सकती है? तो उन्होंने जवाब दिया, 'मैं एक सूर्योदय को देखते हुए उसका विश्लेषण कर सकता हूँ, साथ ही मैं इसका आनंद भी ले सकता हूँ। यदि मैं एक स्त्री की ओर देखूँ, और अगर चाहूँ, तो उसका विच्छेद करके उसका गुरदा, जिगर, तिल्ली और अंदर की दूसरी चीज़ें देख सकता हूँ। लेकिन मैं उसे उस रूप में भी देख सकता हूँ, जैसी वह अभी है। कई आध्यात्मिक गुरुओं ने शरीर को गंदा बताया है, यानी यह ख़ून, बलगम, और दूसरे नश्वर अंगों से भरा पड़ा है। मैं जानता हूँ कि शरीर यही सब है। मगर फिर भी इससे मुझे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। इससे इसकी सुंदरता तो ख़त्म नहीं हो जाती। आप कह रही हैं कि दुनिया के ख़ूबसूरत होने के लिए हमें आँखें मूँदनीं होंगी। चीज़ों को देखने का मेरा नज़रिया ऐसा नहीं है।'

जग्गी के माता-पिता शुरू में इस रिश्ते को लेकर ख़ुश नहीं थे। उनके पिता ने विजी के खानदान, जाति और उसकी पहली शादी को लेकर सवाल

खड़े किए। जग्गी ने जवाब दिया कि इन बातों से उनका कोई सरोकार नहीं है। उन्होंने न तो विजी के पिता से शादी की है और न ही उसके पहले पति से। जाति और सामाजिक प्रतिष्ठा भी उनके लिए कभी महत्त्वपूर्ण नहीं रही। कुछ ही हफ़्तों में उनके माता-पिता का मन पिघलने लगा। समय के साथ सुशीला विजी को बहुत पसंद करने लगीं। दोनों के बीच काफ़ी गहरा रिश्ता बन गया, जो सुशीला के आख़िरी दिनों तक क़ायम रहा। विजी के माता-पिता को भी तसल्ली थी कि उनकी बेटी ने दूसरी शादी कर ली है। वे योग-शिक्षक के रूप में जग्गी के पेशे का भी सम्मान करने लगे। यह सम्मान तब और बहुत ज़्यादा बढ़ गया, जब विजी के पिता को लक़वा मार गया और जग्गी के एक योग कार्यक्रम में हिस्सा लेने के बाद वे लगभग पूरी तरह से ठीक हो गए।

विजी ने अपने बैंक की मैसूर शाखा में तबादले के लिए अर्जी दी थी। अर्जी मंजूर होने पर वह फिर से काम पर जाने लगी। जग्गी का योग सिखाना जारी रहा। पोल्ट्रीफ़ार्म के किराए से मिलने वाली रक़म से उनकी मोटरसाइकिल का ख़र्च चलता रहा। इसकी पेट्रोल की टंकी भरी रहती थी, और उसी तरह उनके दिल भी संतोष से भरे हुए थे। किसी और चीज़ की ज़रूरत नहीं थी। सबसे ज़रूरी बात यह कि जग्गी ने अपने रिश्ते की शुरुआत में ही विजी से कह दिया था कि वह किसी भी पल सफ़र पर निकलने को तैयार रहे। वह इसके लिए तैयार थी। जग्गी पर उसका अटूट भरोसा था। उनके मित्र अक्सर ध्यान देते थे कि उसने शायद ही कभी ऐसा वाक्य बोला हो, जिसमें जग्गी का नाम कम से कम तीन बार न आया हो! इस तरह वे दोनों बंजारों का मस्त जीवन जी रहे थे, कई-कई दिनों तक मोटरसाइकिल पर यात्रा करते हुए, बग़ैर किसी तय मंज़िल के। वे कभी सड़कों के किनारे, तो कभी जंगलों में, कभी समुद्र तट पर, तो कभी अनजान मेजबानों के यहाँ सो जाते थे। एक वक़्त था, जब जग्गी की मोटरसाइकिल ने एक साल में छप्पन हज़ार किलोमीटर का सफ़र तय किया था।

अपने रिश्ते की शुरुआत में ही जग्गी ने विजी को बता दिया था कि वे बयालीस साल की उम्र से ज़्यादा जीवित नहीं रहेंगे। उनकी शादी पहले से तय 'एक्सपायरी डेट' से शुरू हुई थी। जग्गी को एक धार्मिक आस्था की तरह प्रेम करने वाली विजी के लिए यह कोई बाधा नहीं थी।

उन्हें अपना मार्गदर्शक मानने वाला एक युवा कॉलेज छात्र, उन दिनों अक्सर जग्गी के पास आया करता था। उसे विजी का अपने पति के प्रति समर्पण कभी-कभी हैरान करने वाला लगता। उसे याद है, जब उसने एक बार विजी से चपाती बनाने में उसका हाथ बँटाने की पेशकश की थी। जग्गी को चपाती पसंद थी और विजी ख़ासतौर पर उनकी पसंद की चपाती बनाती थी। इस कोशिश में उस लड़के से चपाती जल गई। वह लड़का हक्का-बक्का रह गया, जब इतनी-सी बात पर विजी फूट-फूट कर रो पड़ी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि इसमें रोने जैसी क्या बात है। लेकिन विजी ऐसी ही थी। अस्थिर स्वभाव वाली विजी अपने पति के प्रचण्ड प्रेम में बड़ी मज़बूती से बँधी थी। वह अपने प्रेम में सब कुछ अर्पित कर देने वाली और पति के लिए बेहद पागल थी। लेकिन एक और बात थी। निजी सुरक्षा और आत्म-संरक्षण को लेकर उनकी लापरवाही शायद जग्गी से कोई ख़ास अलग नहीं थी। दोनों ही इस मामले में बिलकुल बेफ़िक्र और लापरवाह थे। जग्गी के मामले में उनकी स्वच्छंदता, तर्क और दूरदर्शिता से संतुलित हो जाती थी, जो एक भावी गुरु की अपने दीर्घकालीन मक़सद की योजना बनाने और उसका आकलन करने की क़ाबिलियत का संकेत थी। उधर, विजी की भावनाओं की लहर बेक़ाबू ही रहती थी।

*अब उन्हें मालूम था कि उन्हें अपने जीवन के लक्ष्य को किस जगह पर साकार करना है, और कहाँ उनको अपने निष्ठावान साथी मिलेंगे। इसे यहीं होना था, यहाँ इन रुपहले पहाड़ों के शहर में। यहीं, इस धरती पर, जहाँ सद्गुरु श्री ब्रह्मा ने अपने जीवनकाल में ख़ूब यात्राएँ की थीं।*

शादी के एक साल बाद जग्गी ने फ़ैसला किया कि उन्हें और पैसा कमाने की ज़रूरत है। 'शहर के ऑफ़िस में बैठकर लोगों से मिलना, हर वक़्त पैसे के बारे में सोचना, हर वक़्त हिसाब लगाना कि उनसे थोड़ा और कैसे कमाया जा सकता है - मैं इस तरह से नहीं जी सकता था। तो मैंने अपना कारोबार छोड़ दिया और एक दूसरा फ़ार्म शुरू करने की सोची। मेरे

पास पहले से ही एक फ़ार्म था, लेकिन मुझे कुछ ज़्यादा की ज़रूरत थी। मैं हैंग ग्लाइडर उड़ाया करता था। तो मुझे एक ढलान वाली जगह की तलाश थी। वैसे भी, पहाड़ के लिए पागलपन मुझमें हमेशा से था।'

उन्होंने मैसूर से लगभग बत्तीस किलोमीटर दूर चौदह एकड़ ज़मीन ख़रीद ली। यह एक पहाड़ की ढलान पर थी। इसकी एक तरफ़ शिव मंदिर और सामने एक झील थी। यह ज़मीन पथरीली और खेती लायक़ नहीं थी। ऐसा माना जाता था कि खेती के लिए उसमें पैसा लगाना नादानी है। 'लोग इसे मेरा पागलपन समझ रहे थे और गाँव में तो यह मज़ाक की बात बन गई। गाँव में सब इस पर हँसते थे। हर रोज़ मैं कुछ नया करता और वे सोचते थे कि अरे, यह मूर्ख एक और बेवकूफ़ी का काम कर रहा है।' लेकिन जग्गी जुटे रहे और उन्होंने नारियल, पत्तागोभी और आम के पेड़-पौधे लगाए, साथ ही कुछ समय के लिए कपास की खेती भी की। उन्होंने आसपास की झाड़ियाँ साफ़ कीं, ड्रिप सिंचाई की सरल, लेकिन कारगर प्रणाली की खोज की, मैसूर चिड़ियाघर से लाई हुई खाद का इस्तेमाल किया और भारी तादाद में उगी पार्थेनियम घास को काटकर उसे पलवार की तरह काम में लिया। नतीजा – एक लहलहाती हुई फ़सल सामने थी।

जग्गी का प्रकृति से नाता काफ़ी पुराना रहा है और किसान के रूप में उनका जीवन, इस रिश्ते का एक स्वाभाविक विस्तार था। आज भी अपने काम की ओर उनका नज़रिया हमेशा की तरह व्यावहारिक और सहज रहा है। वे अक्सर 'नीचे की तरफ़ देखने वाले' और 'स्वर्ग की तरफ़ देखने वाले' धर्मों के बीच अंतर की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि नीचे की ओर देखने वाले धर्म, परलोक की बात करने वाले धर्मों के मुक़ाबले, धरती के प्रति ज़्यादा आदर रखते हैं। वे कहते हैं, 'जो धर्म यह मानते हैं कि ईश्वर इस धरती में, कहीं भीतर गहराई में है, वे इस धरती पर थोड़ी ज़्यादा नम्रता से चलते हैं। जिन्हें विश्वास है कि ईश्वर कहीं ऊपर है, वे अकड़कर चलते हैं, क्योंकि यह धरती उनके लिए उतनी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है। वे सोचते हैं कि एक दिन तो स्वर्ग जाना ही है। अगर आप इस जीवन में ख़ुद को बहुत ज़्यादा महत्त्व देते हैं तो आप बर्बर हैं। अगर आप अपने जीवन का हर क़दम कृतज्ञता से उठाते हैं, अगर आपको एहसास है कि आप कितने क्षुद्र हैं, तो आप धरती पर नम्रता से चलते हैं, एक तीर्थयात्री की तरह, और यह जीवन आपकी तीर्थयात्रा बन सकता है।'

एक दिन उन्होंने अपने फ़ार्महाउस को रंगने का फ़ैसला किया। हाथों से किए जाने वाले इस साधारण से कार्य ने उनकी गूढ़ अंतर्दृष्टि उजागर की। वे याद करते हैं, 'मैं अपने फ़ार्म की इमारत को पेंट कर रहा था और मैं पेंटिंग के आसान तरीक़े निकालना चाहता था। मेरे पास समय कम था, क्योंकि मैं अकेले ही सारे फ़ार्म को पेंट कर रहा था। तो मैंने सोचा कि ब्रश को डुबोकर दीवार पर एक छोर से दूसरे छोर तक चलूँ और फिर से ब्रश को डुबोकर उस छोर से इस छोर तक लाऊँ। पहली बार पेंट करने के लिए मैंने ब्रश डुबोया और चल पड़ा। शुरुआत में पुताई गाढ़ी थी, लेकिन उसके बाद यह फ़ीकी होते-होते बिलकुल ग़ायब हो गई। मैं बिलकुल हक्का-बक्का होकर वहाँ बैठ गया। क्योंकि पूरा का पूरा अस्तित्व या ब्रह्मांड मेरे सामने था। अस्तित्व भी बिलकुल ऐसा ही है। जो कुछ भी स्थूल है, वह सूक्ष्म, सूक्ष्मतर होता हुआ आख़िर में अगोचर हो जाता है। तब आप इसे ईश्वर कहते हैं। (जब यह) पूरी तरह से स्थूल होता है, तो आप इसे चट्टान या पदार्थ कहते हैं। इन दोनों के बीच सूक्ष्मता या स्थूलता के अनेक स्तर होते हैं। अस्तित्व बस यही है।'

उन्होंने कुछ मजदूरों के साथ मिलकर ख़ुद ज़मीन में एक कुआँ भी खोदा। यहाँ भी उन्होंने प्रचलित सोच के विपरीत, ढलान के नीचे की तरफ़ कुआँ खोदने के बजाय, सबसे ऊँची ज़गह पर कुआँ खोदना तय किया। चट्टानों की बनावट देखकर उन्हें यक़ीन हो गया था कि यही जगह ठीक रहेगी। ढलान पर नीचे की तरफ टंकी बनाने के बजाय यह ज़्यादा सुविधाजनक था। नीचे की टंकी से ऊपर की तरफ़ सिंचाई के लिए पानी पहुँचाना मुश्किल काम था। कुआँ खोदने की प्रक्रिया - धरती में गहराई तक खोदते जाना जहाँ पानी मिलने की अनिश्चित उम्मीद और ऊपर आकाश के एक टुकड़े के अलावा ख़ुदाई जारी रखने के लिए कोई और सहारा नहीं था- यह उनके लिए एक गहन आध्यात्मिक अनुभव थी। जब उन्हें अठारह फ़ुट की गहराई पर पानी मिल गया, तो अविश्वास से गाँव वालों की आँखें फटी रह गईं। आख़िर यह किसी चमत्कार से कम नहीं था।

कुछ समय के बाद वे सहकारी खेती की संभावना पर विचार करने लगे। यह ग्रामीण विकास के उनके व्यापक सपने के अनुरूप था। इसमें संपत्ति का निजी स्वामित्व छोड़कर, सामूहिक स्वामित्व वाली एक हज़ार एकड़ की ज़मीन पर एक आधुनिक फ़ार्म तैयार करने और संसाधन जुटाकर, नक़दी

फ़सलों की खेती करने की योजना थी, जिससे ख़ूब लाभ मिल सके। उन्होंने कई छोटे किसानों को इसके लिए तैयार कर लिया और परियोजना छोटे-छोटे चरणों में शुरू हो गई।

'मैंने सोचा कि हम कृषि-स्नातकों के साथ मिलकर एक हज़ार एकड़ का फ़ार्म बनाएँगे। बैंक से लोन लेकर ट्यूबवेल और ड्रिप सिंचाई का इंतज़ाम करेंगे। सात-आठ अलग-अलग फ़सलें उगाएँगे, जिनमें अगर एक फ़सल सफल नहीं भी होती, तो दूसरी इसकी भरपाई कर देगी। ज़मीन के उपजाऊ होने और गुणवत्ता के आधार पर, अलग-अलग हिस्से बनाएँगे। जहाँ तक आपस में आमदनी बाँटने का सवाल था, तो यह तय किया गया कि सबको इसका बराबर हिस्सा मिलेगा। मैंने इस रूपरेखा पर काम करने की कोशिश की। मैंने इन फ़सलों को नए और उन्नत तरीक़ों से उगाने के बारे में आलेख लिखना भी शुरू कर दिया। मैंने वहाँ उगने वाली हरेक फ़सल के बारे में कुल मिलाकर क़रीब आठ सौ पेज लिख डाले। मेरा मानना था कि अगर हमने खेतों का एकीकरण कर लिया, तो फिर वहाँ कुछ भी करना आर्थिक लाभ ही देगा। दो या तीन एकड़ के खेत में चाहे आप कुछ भी करने की कोशिश करें, वह कारगर नहीं होता। जब आप सिर्फ़ एक फ़सल उगाते हैं और अगर वह बाज़ार में असफल हो जाए, तो आप बरबाद हो जाते हैं। आप फिर से क़र्ज़ में डूब जाते हैं, आत्महत्या जैसी चीज़ों के बारे में सोचने लगते हैं। लेकिन जब आठ फ़सलें उगाई जा रही हों और उनमें से एक फ़सल कामयाब नहीं होती, तो भी आप दूसरी फ़सलों से कुछ कमा सकते हैं। यह कमाई सबमें बँटती है।'

लेकिन उन्हें इस बात का भी एहसास था कि सिर्फ़ आर्थिक सुधार ही काफ़ी नहीं होगा। उन्हें मालूम था कि असली रूपांतरण का स्रोत, हर इंसान के गहनतम अंतरमन में है, जो अक्सर शुष्क हो जाता है, और जहाँ सुदूर आकाश का एक टुकड़ा भी नहीं दिखता। सिर्फ़ भौतिक ख़ुशहाली से वहाँ तक पहुँचना सम्भव नहीं था।

चीज़ें तब अचानक गड़बड़ हो गईं, जब उनका शहतूत फ़ार्मिंग का प्रयोग नाकाम हो गया। जग्गी की योजना शहतूत की पत्तियाँ रेशम के कीड़े पालने वालों को बेचकर कमाई करने की थी। फ़सल अच्छी हुई थी। फ़सल काटने में सिर्फ़ एक महीना रह गया था। एक दिन जग्गी ने अपने एकमात्र

सहयोगी से कहा कि फ़ार्म के आसपास की सूखी जंगली घास को सावधानी से जलाकर साफ़ करने का वक़्त आ गया है। ऐसा वे मैसूर से लौटने पर करने वाले थे। कुछ दिनों बाद मैसूर से लौटते वक़्त वे पहाड़ी की चोटी पर मोटरसाइकिल खड़ी करके वहाँ थोड़ा ठहरे, जैसा कि वे अपने फ़ार्म और आसपास के इलाक़े को देखने के लिए अक्सर करते थे। इस बार उन्हें सिर्फ़ जलकर काली पड़ी ज़मीन ही दिखी। हैरान होकर जब वे बाइक पर आगे बढ़े, तो उन्होंने गाँव वालों को ख़ामोश, फ़ीके पड़े चेहरों से, अपनी ओर देखते पाया। किसी के बर्बाद होने पर ही लोग उसे इस तरह देखते हैं। वे कहते हैं, 'हर कोई मेरी तरफ़ ऐसे देख रहा था, जैसे यह आदमी तो बर्बाद हो गया।'

वे अपनी ज़मीन पर पहुँचे, तो देखा कि सारा फ़ार्म जलकर राख़ हो गया था। उनका सहयोगी उनके आने से दस मिनट पहले ही ग़ायब हो गया था। लेकिन अपनी डर से काँपती बीवी को कुछ सफ़ाई देने के लिए पीछे छोड़ गया था। उसने रो-रो कर और हाथ हिला-हिला कर जो कुछ बयान किया, उससे जग्गी कुछ जानकारी निकाल पाए। उस उत्साही कर्मचारी ने अपने मालिक की ग़ैरमौजूदगी में ही झाड़ियों में आग लगाने का फ़ैसला ले लिया था। लेकिन मिनटों में ही आग बेक़ाबू हो गई। उसने हालात पर क़ाबू पाने की पूरी कोशिश की, लेकिन सारा फ़ार्म उसकी आँखों के सामने आग की चपेट में आ गया। कहने को कुछ बचा ही नहीं।

'मोटरसाइकिल की आवाज़ सुनते ही मेरा सहायक पहाड़ों की तरफ़ भाग गया। उसने सोचा कि मैं उसे मार डालूँगा। मुझे जानकारी देने के लिए उसने अपनी पत्नी को वहाँ छोड़ दिया था, क्योंकि उसे यक़ीन था कि मैं उसकी पत्नी को नहीं पीटूँगा। इसलिए वह काँपती हुई वहाँ खड़ी थी और ख़ुद को बचाने के लिए अपने नन्हें बच्चे की आड़ लिए थी।' हँसते हुए वे आगे कहते हैं, 'शायद उसे यक़ीन था कि अगर वह अकेली होती, तो मैं उसका गला घोंट देता या ऐसा ही कुछ करता। मैंने चारों तरफ़ देखा, सब कुछ जलकर खाक हो चुका था। वह बैंक का क़र्ज़, जो मैंने ले रखा था, वह सारा पैसा, जो मिलने की उम्मीद थी, सब कुछ जा चुका था। मैं अपनी हँसी को फूट पड़ने से रोक नहीं पाया। लेकिन मैं यह भी जानता था कि वह सोचेगी, मैं पागल हो गया हूँ। मैंने उसकी तरफ़ इस तरह देखा, मानो मैं

उससे पूछना चाहता हूँ कि हुआ क्या था? मैंने हँसी आने के डर से अपना मुँह नहीं खोला। उसने कहा कि, 'नहीं, नहीं, हमने कुछ नहीं किया। वे तो सिर्फ़ झाड़ियों में आग लगाने की कोशिश कर रहे थे और फिर पता नहीं क्या हुआ। अचानक हर जगह आग फैल गई।'

उसकी कहानी सुनकर जग्गी की समझ में आया कि अब करने के लिए कुछ नहीं बचा है। वे कहते हैं, 'मैं वहाँ कुछ दिनों तक ठहरने की पूरी तैयारी के साथ गया था। लेकिन अब फ़ार्म में कुछ करने को बचा ही नहीं था। अब फ़ार्म ही नहीं था। अब मैं पूरी तरह आज़ाद था। मैं वापस मुड़ा और मोटरसाइकिल से मैसूर लौट आया।'

वे बैंक में लंच ब्रेक के दौरान विजी से मिले और कहीं बाहर चलकर खाना खाने का प्रस्ताव रखा। उसने पूछा, 'भला आप वापस कैसे आ गए? आप तो दो-तीन दिनों तक वापस आने वाले नहीं थे!'

'मैंने कहा, "सारा फ़ार्म जलकर ख़त्म हो चुका है और अब मैं आज़ाद हूँ।" यह सुनकर वह धक से रह गई।'

'मैंने कहा, "मैं तुमसे खाने के लिए बाहर चलने को कह रहा हूँ। तुम किस बारे में शिकायत कर रही हो?"'

'उसने कहा, "लेकिन फ़ार्म!"'

'मैंने कहा, "वह जल गया। अब हमें उसकी और चिंता नहीं करनी है। हर दिन फ़ार्म को लेकर तमाम झंझट थे। अब सारी परेशानी ख़त्म हो गई।"'

'वह परेशान हो उठी और कहा, "लेकिन जो क़र्ज़ ले रखा है, उसका क्या होगा?"'

'मैंने कहा, "अभी तो हम आज़ाद हैं। बाद में देखेंगे कि क़र्ज़ का क्या करना है।"'

'उसने कहा, "ऐसी हालत में आप हँस कैसे सकते हैं?"'

'मैंने कहा, "ठीक है, अगर तुम रोना चाहती हो तो बैठ कर रो लो। मैं किसी और को लंच के लिए ले जाऊँगा।"'

'उसने कहा, "ठीक है, अगर आपको कोई परेशानी नहीं है, तो मुझे क्या!"'

'मैंने कहा, "अब तुम कुछ सही रास्ते पर आ रही हो।"'

इस संकट में उनकी शांतिपूर्ण प्रतिक्रिया, अपने घबराए हुए जीवन साथी को बस दिलासा दिलाने के लिए नहीं थी। सद्गुरु सचमुच मानते हैं कि चाहे कैसी भी उकसाने वाली बात हो, प्रसन्न रहना ही सबसे सही चुनाव है। 'फ़ार्म के जलकर खाक हो जाने का मतलब था कि मैं अगले तीन-चार महीने घूमते हुए योग सिखा सकता था। फिर मैंने एक दूसरी फ़सल भी उगाई। शहतूत की फ़सल मुझे कई वर्षों तक उलझा कर रखती। मैंने तीन महीने में तैयार होने वाली कपास की फ़सल उगाई, अच्छे पैसे कमाए और क़र्ज़ चुका दिया। फिर बाद में मैंने फ़ार्म बेच दिया, लेकिन मैंने वह किसी आर्थिक दबाव की वजह से नहीं बेचा। अब सचमुच मेरे पास वक़्त नहीं था। आपको सिर्फ़ तभी प्रसन्न नहीं रहना चाहिए, जब सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा हो। अगर आप प्रसन्न हैं, तो आप स्वाभाविक रूप से अपनी पूरी क़ाबिलियत का इस्तेमाल करेंगे। उस समय आप अपने बेहतरीन रूप में काम करते हैं, इसलिए आपके लिए दूसरों के मुक़ाबले, चीज़ें कहीं बेहतर तरीक़े से होने लगती हैं।'

इस दौरान योग-कक्षाएँ जमकर चल रही थीं। जग्गी को कुछ ऐसा आभास था कि उनके जीवन के लक्ष्य के लिए एक महत्त्वपूर्ण समर्थन का स्रोत, तेलुगू भाषी लोग हो सकते हैं। उन्होंने हैदराबाद में योग-कक्षाएँ चलाई थीं, जो सफल रही थीं। लेकिन इनसे उनको अपनी निजी खोज की दिशा में कोई कामयाबी हासिल नहीं हुई थी।

और फिर वे पहाड़ भी थे - जिनकी तसवीर बचपन से ही उनकी आँखों के सामने तैरती रहती थी। उनकी नज़रों के आगे ये धैर्यवान, भव्य, और अमिट पहाड़ हमेशा से मौजूद रहे थे, इससे उन्हें यक़ीन हो गया कि यही उनके जीवन के लक्ष्य को साकार करने की जगह है। वे उन्हें अब भी बिलकुल साफ़ देख सकते थे। लेकिन वे थे कहाँ? क्या वे सचमुच मौजूद हैं? किसी वजह से जग्गी को विश्वास था कि वे वाक़ई मौजूद हैं। वे सात बार अपनी मोटरसाइकिल पर पश्चिमी घाट में एक छोर से दूसरे छोर तक, गोआ से लेकर केरल के मालाबार तट तक घूम चुके थे। अपनी इन यात्राओं के दौरान उन्होंने बड़े भव्य और मनोरम प्राकृतिक दृश्य देखे। लेकिन उन्हें वे पहाड़, उनके 'अपने' पहाड़ कहीं नहीं दिखे।

तभी एक दिन वे अपने दोस्तों से मिलने के लिए तमिलनाडु में कोयम्बतूर गए। यह 1987 की बात है। वे बस स्टैंड पर उतरे। बस जल्दी पहुँच गई थी और दोस्तों से मुलाक़ात के तय समय में अभी दो घंटे बाक़ी थे। उन्होंने बस डिपो में ही बैठकर इंतज़ार करने का फ़ैसला किया। अभी सिर्फ़ चार ही बजे थे। अंधेरा फैला हुआ था। ठंडी, ताजगी देने वाली हवा चल रही थी। जग्गी अपने सूटकेस पर बैठ गए। कुछ ही पलों में वे गहरे ध्यान की अवस्था में आ गए।

उन्हें क़रीब पाँच साल पहले, चामुण्डी हिल पर बोध प्राप्ति के तुरंत बाद अपने पिछले जन्मों की याद ताजा हो आई थी। लेकिन उनकी यादों के कुछ हिस्से अब भी धुंधले थे। उनका मिशन किस दिशा में साकार होगा, इस बारे में उनकी कई अटकलें थीं, लेकिन वे ज़्यादा साफ़ नहीं थीं। उस ध्यान ने उनकी बची-खुची भूली हुई यादों पर से पर्दा हटा दिया। दो घंटे बाद जब वह अपने दोस्तों का अभिवादन करने के लिए उठे, तब उनके मन में कोई शक नहीं बचा था।

अब उन्हें मालूम था कि उन्हें अपने जीवन के लक्ष्य को किस जगह पर साकार करना है, और कहाँ उनको अपने निष्ठावान साथी मिलेंगे। इसे यहीं होना था, यहाँ इन रुपहले पहाड़ों के शहर में। यहीं, इस धरती पर, जहाँ सद्‌गुरु श्री ब्रह्मा ने अपने जीवनकाल में ख़ूब यात्राएँ की थीं। यह कोयम्बतूर ही तो था।

5

# करुणा के वेश में षड्यंत्र

## फ़सल काटने की तैयारी

सद्गुरु ने एक बार मुझे बताया था, 'जब आप फ़सल उगाते हैं तो आप जानते हैं कि इसमें निराई की ज़रूरत होती है। लेकिन आप निराई तब तक नहीं करते, जब तक फ़सल इसे झेलने के लिए काफ़ी मज़बूत न हो जाए। इसे सही समय पर करना महत्त्वपूर्ण होता है।'

कोयम्बतूर को अपनी कर्मस्थली के रूप में खोज लेने के बावजूद जग्गी वहाँ तुरंत ही नहीं पहुँच गए। उन्होंने अगले वर्ष का अधिकतर समय अपने फ़ार्म में एकांतवास करके बिताया। अपने बाक़ी कामों में कटौती करके उन्होंने ज़्यादा से ज़्यादा समय ध्यान में लगाया। लेकिन वे ख़ाली बिलकुल नहीं बैठे थे। एक दिव्यदर्शी के तौर पर उनके लिए यह वर्ष काफ़ी व्यस्त था। जग्गी निराई करने में जुटे हुए थे।

यह आध्यात्मिक बागवानी आख़िर थी क्या? वे कहते हैं कि यह उनके अगले चरण के काम के लिए रास्ता साफ़ करना था। इसका मक़सद उन लोगों के जीवन को फिजूल के कार्मिक कचरे से छुटकारा दिलाना था, जिन लोगों को साथ लेकर वे काम करने वाले थे। वे उन सभी के लिए अनुकूल हालात बना रहे थे ताकि वे उस महान लक्ष्य में अपना सहयोग दे सकें। वे पहेली बुझाते हुए कहते हैं, 'मैं जानता था कि कोयम्बतूर में कई जगहों पर मेरी योजना का विरोध होगा। मुझे इस बात का अंदाज़ा था। मैं इससे निपटने की तैयारी कर रहा था - मिट्टी की सफ़ाई करते हुए, जितनी हो सकती थी उतनी छंटाई करते हुए।'

1989 में उन्होंने कोयम्बतूर में अपना पहला योग-कार्यक्रम आयोजित किया। इसमें दस लोगों ने भाग लिया। उनमें से एक का नाम राजा था, जो इंजीनियर थे और उत्सुकतावश साइनोसाइटिस का इलाज खोजने का इरादा लेकर आए थे। तिरुपुर में जीव विज्ञान के प्रोफ़ेसर स्वामीनाथन को उम्मीद थी कि योग से वे माइग्रेन से राहत पा जाएँगे। चावल मिल के मालिक पुन्नुस्वामी जोड़ों के दर्द से परेशान थे और इससे छुटकारा पाना चाहते थे। एक इंजीनियर युवती गीता पिछले कुछ समय से अवसाद से गुज़र रही थी और उसकी वजह से अनजान थी। ये उन थोड़े से लोगों में से थे, जो शुरू में हिचकते हुए जग्गी की ओर आकर्षित हुए, और बाद में ठीक हो जाने पर बहुत कृतज्ञता महसूस करने लगे।

*मार्च 1990 में जग्गी के जीवन का एक नया दौर शुरू हुआ, जब उनकी बेटी का जन्म हुआ। उस आदमी के लिए, जो जानता हो कि एक दशक से ज़्यादा उसके जीवित रहने की संभावना नहीं है, अपनी इच्छा से पिता बनना एक अजीब-सा फ़ैसला था।*

तिरुपुर के एक साधक को जग्गी के पहले कार्यक्रम में, एक सेवक की निगरानी में बाहर जूते रखना याद है। हाल में प्रवेश करने पर उसने पाया कि वह जूते रखवाने वाला नम्र सेवक कोई और नहीं, बल्कि उसके टीचर जग्गी ख़ुद थे, जो अब एक दिलचस्प वक्ता में रूपांतरित हो गए थे। ऐसे ही यह बात एक महिला साधक के दिल को छू गई कि उनका योग-टीचर न सिर्फ़ साधकों के साथ खाना खाता है, बल्कि अक्सर खाने की तैयारी में हाथ बँटाने के लिए चुपचाप बड़ी सफ़ाई से सब्ज़ी काटता हुआ भी नज़र आता है।

उन्होंने पाया कि वह कक्षा सिर्फ़ योगासन सिखाने के लिए नहीं थी। शरीर को मरोड़ने वाले हठ-योग को जग्गी ने एक पश्चिमी नाम 'कोलंबस योग' दिया था। उनके द्वारा सिखाया जाने वाला योग आसनों, प्राणायामों एवं विशेष रूप से तैयार ध्यान अभ्यासों का एक मिला-जुला रूप था। उनका तरीक़ा आसान और वैज्ञानिक था। उनके निर्देश स्पष्ट, संवाद बेबाक और दिलचस्प

हुआ करते थे। लेकिन ध्यान में दीक्षित करने की प्रक्रिया बहुत गहन होती थी।

उनकी मौजूदगी भी बदल गई थी। अब वे पहले के अल्पभाषी जग्गी नहीं थे। 1982 के बाद से जग्गी कई मायनों में बदल चुके थे। उनकी मौजूदगी गर्मजोशी और स्फूर्ति बिखेरती थी। उनकी बुद्धि पैनी और चपल, उनका मज़ाक करने का तरीक़ा अनोखा, और उनकी ऊर्जा सबको अपने में समेटने वाली और करुणामयी हुआ करती थी। उनके आसपास होना बड़ा मज़ेदार होता था। वे दूसरों की बात बड़े ध्यान से सुनते थे। थोड़े में कहा जाए, तो वे करिश्माई थे। कोयम्बतूर में वे तेज़ रफ़्तार से कार चलाते थे। जब वे पहाड़ों पर ट्रेकिंग करते, तो उनके साथ-साथ चल पाना असंभव होता था। लेकिन उनमें इसके अलावा कुछ और भी था। उनमें अलग-अलग मिजाज और रुचियों वाले लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने की गूढ़ क़ाबिलियत थी। इनमें भक्त से लेकर शंकालु तक, भावुक से बुद्धिजीवी तक, सीधे-सरल इंसान से संभ्रांत तक, और देहाती से शहरी तक शामिल थे।

उनकी मौजूदगी का वह तेज़ अभी भी साफ़ दिखता है, जो गुरुओं से दूर भागने वाले कटु आलोचकों को भी वश में कर लेता है। उनमें एक सहजता है, नपे-तुले शब्दों का सहज इस्तेमाल और उनमें जीवन जैसा उत्साह दिखता है, वह हर तरह के लोगों को आकर्षित करता है। उनके मनमौजी और मस्तमौला होने के बावजूद, लोग उन्हें पसंद करते हैं। जब भी मौक़ा मिलता है, वे पारंपरिक गुरुओं की छवि का मज़ाक उड़ाने से नहीं चूकते। 'टेलीविजन के आध्यात्मिक चैनलों पर आने वाले उन मूर्खों जैसा होना मुझे मंजूर नहीं है।' यह टिप्पणी हाल ही में उन्होंने तब की, जब वे मैसूर के युवाओं के साथ मोटर साइकिल रेस में शामिल होने को सोच रहे थे, जिसका विज्ञापन स्थानीय अख़बारों में आया था। हालाँकि वे इस रेस में शामिल नहीं हुए, पर उनके जानकार लोगों को मालूम है कि वे ऐसा कर सकते थे। साथ ही, उनके मिलनसार स्वभाव के साथ मौजूद उनके तेज को अनदेखा करना मुश्किल है। उनकी इस भव्यता में कुछ भी बनावटी नहीं है। यह उनकी ठहाकेदार हँसी जैसी ही सहज है। यही उनके प्रति आदर जगाता है। उनका अनौपचारिक ढंग किसी को भी तुरंत सहज बना देता है।

लोगों की भावनात्मक ज़रूरतों के साथ गहराई से जुड़ने में वे माहिर हैं। वैसी ही क़ाबिलियत उनके निष्पक्ष और अटल विश्लेषण में भी दिखती है।

इस निराले मेल की वजह से ही शायद वे ऐसे गुरु हैं, (जैसा उन्होंने अक्सर कहा है) जिनके साथ ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग, दोनों ही रास्ते संभव हैं। इन दोनों ही रुझानों वाले लोग उनकी ओर आकर्षित होते हैं।

ईशा-योग (उन दिनों इसे 'सहज स्थिति' योग कहा जाता था) की कक्षा हमेशा इस बुनियादी दृष्टिकोण पर आधारित थी कि इंसान शरीर, मन, भावना और ऊर्जा का मिश्रण है। जग्गी हर कार्यक्रम की शुरुआत में कहते थे कि कोई भी इंसान सिर्फ़ भावनाओं या सिर्फ़ दिमाग़ से नहीं बना है। हर कोई इनका एक मिश्रण है और ऐसी योग-विधि तैयार करना मुमकिन है, जो हर तरह के इंसान के लिए कारगर हो। इस कोर्स में साधारण आसनों, प्राणायाम क्रिया और ध्यान को शामिल किया जाता है। यह काफ़ी सरल लगता है। लेकिन बहुत से लोग, जो दूसरी जगह योग कक्षाओं में शामिल हो चुके हैं, वे इस योग कोर्स को सबसे अलग मानते हैं।

तब किस चीज़ ने इसे कारगर बनाया? अब कौन सी चीज़ इसे कारगर बनाती है? यह किसी को नहीं मालूम, उन ईशा योग प्रशिक्षकों को भी नहीं, जो बरसों से इसे दुनिया में जगह-जगह सिखा रहे हैं। लेकिन एक चीज़ तो पक्की है : ईशा योग कार्यक्रम में, जैसा आँखों को दिखता है, उससे कहीं ज़्यादा कुछ चलता रहता है। इसका इतना सरल होना भ्रामक लगता है। जो योग में रम जाने की ज़रूरत महसूस करते हैं, मगर इसकी वजह नहीं जानते, उन्हें यह बात धीरे-धीरे समझ आने लगती है कि हर कार्यक्रम गुरु की ऊर्जा और मौजूदगी से सराबोर होता है। मैं सोचती थी कि 'वाइब' (स्पंदन) आजकल के नासमझ किशोरों द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द है, लेकिन अब मैं मानती हूँ कि वाइब इसके लिए वाक़ई एक सटीक शब्द है। यह वाइब ही है जिसकी वजह से कोई बार-बार इन कार्यक्रमों में या फिर आश्रम में या सद्‌गुरु के पास लौटकर आता है। वाइब इतनी सजीव है, जितनी घंटियों की झंकार, जितनी दिल के अंदर मौजूद धड़कन, एक निरंतर मौजूद स्पंदन। आप इसे अपने गुरु के स्पंदन जैसा मानते हैं। फिर आप इसे ख़ुद के स्पंदन जैसा मानने लगते हैं।

1989 में, हालाँकि वे तब सद्‌गुरु नहीं कहलाते थे, तब वे बदरंग जींस और टीशर्ट पहने, दाढ़ी और लंबे बालों वाले एक आकर्षक युवक थे। लेकिन तब भी उनके आसपास चीज़ें घटित हो रही थीं, जो लोगों की समझ

से बाहर थीं। यह उनके योग प्रशिक्षण से ग़ायब होने वाली सिर्फ़ शारीरिक और मानसिक बीमारियों की बातें नहीं थीं। हालाँकि इस चीज़ ने उनको लोगों का भरोसा हासिल करने में मदद ज़रूर की। लेकिन जिस तरह से लोग उनकी तरफ़ खिंचे चले आते थे, वो असाधारण था। बहुत कम वक़्त में ही वे उनके जीवन में अहम हो गए थे। हर उम्र के और अलग-अलग पेशों के लोग समान रूप से समर्पित लगते थे। उन्हें बिलकुल मालूम नहीं था कि ऐसा कैसे और क्यों हुआ। लेकिन जग्गी में उनकी आस्था गहरी और सहज थी। कर्नाटक से कोयम्बतूर आए हुए साधक यह देखकर हैरान रह गए कि किस तरह से जग्गी ने कोयम्बतूर के साधकों पर अपना जादू चला रखा था। इससे जग्गी के जन्म के बाद वासुदेव के घर पहुँचे उस ज्योतिषी की भविष्यवाणी याद आई, 'यह इंसानों को चराएगा।'

एक स्वयंसेवी और आगे चलकर शिक्षक के तौर पर उनके साथ क़रीब रहकर काम करने वाले राजा कहते हैं कि उन्होंने जग्गी में जो सबसे ज़्यादा प्रेरणादायक गुण देखे, वे उनकी सादगी, उनका खुलापन, उनकी करुणा और उनका अनंत धैर्य थे। 'लोगों से पेश आने की कला मैंने उन्हीं से सीखी। टीचर्स ट्रेनिंग कार्यक्रम का मक़सद लोगों के अहं को कुचलना है। मैंने देखा कि वे यह काम भी बिना किसी की भावना को ठेस पहुँचाए, बड़ी सावधानी से करते थे। उनको हर किसी में उत्सुकता व स्वेच्छा पैदा करने की तरकीब आती थी। इसके बाद, किसी की भावना को चोट लगने का सवाल ही नहीं था।' इस तरकीब का संकेत उस बात में मिलता है, जो सद्गुरु ने कुछ ही समय पहले कही थी। 'यह याद रखना फ़ायदेमंद होता है कि किसी को भी किसी के द्वारा नियंत्रित होना पसंद नहीं है। पर हर किसी में शामिल किए जाने की चाहत होती है।'

जग्गी जिस ढंग से हर क़िस्म के उकसाने वाले हालात में प्रतिक्रिया करते थे, उसने भी राजा के दिल को छू लिया। 'उन्होंने कभी गुस्सा नहीं किया, कभी अपना आपा नहीं खोया। एक बार मैं उनके कुछ निमंत्रण पत्र मैसूर में रहने वाले उनके परिवार और मित्रों को डाक से भेजना भूल गया। वे बार-बार मुझसे पूछते रहे कि मैंने उनका यह काम किया या नहीं। मैं उन्हें यक़ीन दिलाता रहा कि मैंने यह कर दिया है। मैंने उनसे कहा कि डाक-विभाग की देरी के कारण निमंत्रण पत्र नहीं पहुँचे होंगे। फिर लगभग एक हफ़्ते बाद मैंने पाया कि निमंत्रण पत्र मेरे पास ही पड़े थे। मैंने उनको

डाक में नहीं छोड़ा था, जैसा कि मुझे लग रहा था। मुझे इसका बहुत अफ़सोस हुआ। जब मैंने उनसे माफ़ी माँगी, तो मेरी आँखों में आँसू थे। लेकिन वे बहुत नम्र थे। उन्होंने कहा कि उन्हें लग रहा था कि मैं भूल गया हूँ। पर उन्होंने कभी मुझे उलाहना नहीं दिया। उन्होंने कहा कि इसके लिए परेशान मत हो।'

मार्च 1990 में जग्गी के जीवन का एक नया दौर शुरू हुआ, जब उनकी बेटी का जन्म हुआ। उस आदमी के लिए, जो जानता हो कि एक दशक से ज़्यादा उसके जीवित रहने की संभावना नहीं है, अपनी इच्छा से पिता बनना एक अजीब-सा फ़ैसला लगता है। वे स्वीकार करते हैं, 'हाँ, शायद यह सामान्य नहीं है। लेकिन विजी एक बच्चे के लिए काफ़ी उत्सुक थी। उसकी सहेलियों ने उसे विश्वास दिला दिया था कि किसी औरत के लिए माँ बनना ही सबसे अहम अनुभव है। मैं उसकी इच्छा के आगे झुक गया। इसकी वजह यह भी थी कि अगर मैं बयालीस साल की उम्र में इस दुनिया से चला जाऊँ, तो उसके जीवन में कोई तो रहेगा, जो उसके जीने का सहारा होगा।'

*यहाँ कक्षा में यह योग-शिक्षक प्रवेश कर रहा था। मैं बस उसके पैरों को ही देख पाई थी। मैंने पाया कि मेरी आँखों से आँसू बहकर मेरे चेहरे को भिगो रहे हैं। मुझे याद है कि यह अजीब सा ख़याल मेरे मन में आया : आपने मुझसे कितना लंबा इंतज़ार कराया।*

अब ज़्यादा वक़्त नहीं बचा है, इस एहसास ने उनके जीवन को और भी व्यस्त बना दिया। उन्होंने अपना वक़्त बेंगलुरु (जहाँ विजी का तबादला हुआ था) और कोयम्बतूर के अलावा तमिलनाडु के तिरुपुर, ईरोड और करूर, जैसी कई जगहों में बाँट दिया था, जहाँ वे सुबह से रात तक योग-कार्यक्रम करने में जुटे रहते थे। अपनी यात्राओं में वे अपनी बेटी को साथ ले जाते, और उस बच्ची ने अपने बचपन का एक बड़ा हिस्सा कई साधकों के परिवारों की देखरेख में बिताया। हर दूसरे हफ़्ते के अंत में विजी

और वे कोयम्बतूर या बेंगलुरु में मिला करते थे।

कुछ पुराने ईशा साधकों द्वारा बताई बातों से यह जानने को मिलता है कि उन दिनों अपने नवोदित शिष्यों को जग्गी कैसे लगे थे। यह 'सद्गुरु' बनने से पहले की बात है। इंदिरा (अब माँ कर्पूरी) बताती हैं, 'मैं 1991 में उनके एक कार्यक्रम में अपनी इच्छा के ख़िलाफ़ गई। पति के ज़ोर देने पर मैं बेमन से बस परिचय-वार्ता में जाने को तैयार हुई। जग्गी के हाल में घुसते ही मुझे कुछ अजीब सा महसूस हुआ। सारा जीवन मैं महसूस करती रही थी कि कहीं से भी मेरा कोई संबंध, जुड़ाव या नाता नहीं है। मैं हर जगह खोज चुकी थी - मंदिरों में, गिरिजाघरों में और तमाम आध्यात्मिक परंपराओं में - मगर उनकी कट्टरता और पाखंड देखकर हमेशा पीछे हट गई थी। और यहाँ कक्षा में यह योग-शिक्षक प्रवेश कर रहा था। मैं बस उसके पैरों को ही देख पाई थी। मैंने पाया कि मेरी आँखों से आँसू बहकर मेरे चेहरे को भिगो रहे हैं। मुझे याद है कि यह अजीब सा ख़याल मेरे मन में आया : 'आपने मुझसे कितना लंबा इंतज़ार कराया।' एक सेकंड बाद फिर एक विचार आया कि अगर जीसस धरती पर होते, तो उनको पास से गुज़रते हुए देखने पर ऐसा ही लगता।'

इसी साल दो बच्चों की माँ, भारती (जो शादी के बाद विशाखापट्टनम से कोयम्बतूर आ गई थीं) जग्गी की क्लास में शामिल हुईं। स्पष्ट सोच और संतुलित बुद्धि वाली इस महिला का जग्गी के बारे में अनुभव क़तई भावुकता भरा नहीं था। 'हमारे कोयम्बतूर आने के कोई पाँच - छः साल बाद, मेरी ननद ने मेरे पति को एक नई योग कक्षा के बारे में बताया। उसको किसी ने बताया था कि यह उसका तनाव कम करने में मदद करेगा, (जिसकी वजह से उसके पास कोई नौकरानी नहीं टिक पाती थी) और मेरी ननद ने सोचा कि इससे मेरे पति की पेट की लंबी बीमारी भी ठीक हो सकती है।'

ख़ुद भारती का इरादा कार्यक्रम में शामिल होने का नहीं था। 'मैं सोचती थी कि मेरा जीवन आराम से चल रहा है - सेहत की भी कोई परेशानी नहीं थी। मेरे बच्चे थे, भरपूर पैसा था, घूमने-फिरने के मौक़े थे और मैं किसी ख़ास तनाव में भी नहीं थी। इसलिए मुझे लगा कि भला मैं क्यों योग कक्षा में शामिल होऊँ? लेकिन परिचय-वार्ता के दिन, जब मैंने ननद को कार्यक्रम की जगह पर छोड़ा, तो उसने मुझे भी लेक्चर में शामिल

होने को कहा। मैं कभी तांत्रिकों या गुरुओं के पास नहीं गई थी। मैंने कभी किसी स्वामीजी के पैर नहीं छुए थे। लेकिन मैंने सिर्फ़ यह सोचकर रुक जाने का फ़ैसला किया कि यह लेक्चर योग के शारीरिक पहलुओं पर होगा। अंदर जाने पर मैंने सफ़ेद धोती-कुर्ता पहने एक दाढ़ी वाले इंसान को देखा। वे मुझे बहुत प्रभावशाली नहीं लगे। वे काफ़ी साधारण से लगे, कुछ-कुछ शंकरन पिल्लै की तरह।' वे सद्गुरु द्वारा बाद में रचे गए काल्पनिक पात्र - उनके 'जोक्स' में मज़ाकिया किरदार - की ओर इशारा करके हँसती हैं।

जहाँ एक तरफ़ इस नए योग-टीचर की शख़्सियत ने उन पर बहुत ज़्यादा प्रभाव नहीं डाला, वहीं दूसरी तरफ़ उन्होंने क़बूल किया कि सद्गुरु ने उस लेक्चर में जो कुछ भी कहा, वह वाक़ई बहुत समझदारी की बात थी। 'उन्होंने बताया कि अगर हम चाहें, तो हमारा जीवन पहले के मुक़ाबले कैसे ज़्यादा आनन्दमय हो सकता है। यह बहुत ग़लत नहीं लगा, इसलिए सिर्फ़ उत्सुकता के चलते मैंने इसमें शामिल होने का फ़ैसला कर लिया। कार्यक्रम के ख़त्म होने तक मैं इस योग की मुरीद हो चुकी थी। शून्य-ध्यान में दीक्षित होना एक निर्णायक मोड़ था। तब मैं पहली बार यह समझ पाई कि जीवन का एक दूसरा आयाम भी है - एक गहन आयाम, ऐसा आयाम जो वाक़ई खोजने लायक़ है, जिसके लिए संपूर्ण जीवनकाल समर्पित कर देना सार्थक होगा। यह क्या था, मुझे मालूम नहीं था। लेकिन मैं जान गई थी, कि यह 'सहज-स्थिति' योग कक्षा बस एक शुरुआत थी, कि यह आदमी वाक़ई 'कुछ' जानता है और इसके पास हमें देने के लिए कोई बहुत विशाल चीज़ है - और मैं इसका स्वाद चखना चाहती थी।'

कार्यक्रम के दो हफ़्ते बाद भारती सद्गुरु और अपने परिवार के कुछ सदस्यों के साथ दोपहर के भोजन में शामिल हुई। 'मैं चुपचाप बैठी हुई थी। किसी ख़ास चीज़ पर मेरा ध्यान नहीं था। तभी धीरे-धीरे अपने आप एक कंपन मेरे प्राण और शरीर में घर करने लगा। शरीर का कंपन इतना साफ़ ज़ाहिर था कि ख़ुद को शर्मिंदगी से बचाने के लिए मैं कमरे से बाहर चली गई। लेकिन यह कंपन एक घंटे बाद भी रुकने का नाम नहीं ले रहा था। मैं तो कहूँगी कि मेरे लिए सद्गुरु की ऊर्जा और वास्तविकता की यह पहली असली झलक थी।'

अचानक वह साधारण योग-टीचर उनकी सोच से कहीं ज़्यादा विशाल लगने लगा। 'वे काफ़ी विनम्र लगते हैं, लेकिन अगर आप ख़ुद के साथ ऐसा होने दें, तो उनकी ऊर्जा आपके भीतर धावा बोलकर उपद्रव मचा देती है, उसका विध्वंस करने के लिए जिसे आप "मैं" कहते हैं। तब आपका वास्तविक स्वरूप उजागर होता है। मेरे अपने मामले में मेरे प्रतिरोध के बावजूद यह हमला हुआ। अचानक मेरे जीवन में असंतोष और संघर्ष आ गया, जो पहले नहीं था। जिसे मैं अब तक जीवन समझती थी, वह चीज़ अब मेरे लिए जीवन नहीं रही थी। जिसे मैं ख़ुशहाली समझती थी, वह अब मेरे लिए ख़ुशहाली नहीं थी। जिसे मैं ख़ुशी समझती थी, वह अब सिर्फ़ एक छलावा था, भ्रम था। अंततः यह साफ़ ज़ाहिर हो गया कि जीवन में मेरे पास जो था, वही सब कुछ नहीं था। न ही वह जीवन का चरम लक्ष्य था।'

भारती ने अपने योग शिक्षक से दूरी बनाए रखी, जबकि उनके परिवार में उनकी मौजूदगी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होती जा रही थी। जब वे कोयम्बतूर में होते, उनकी ननदें, उन्हें अक्सर आमंत्रित करती थीं और उनसे मेलजोल के मौक़े बढ़ते गए। वे कहती हैं, 'हालाँकि मेरी ऊर्जा पहले दिन से ही अलग भाषा बोलने लगी थी, फिर भी मेरा तर्क किसी भी तरह से उन्हें मेरी निजता की सीमा लाँघने नहीं देता था।'

भले ही वे उन्हें औपचारिक तौर पर 'सर' कहकर पुकारती थीं, लेकिन उन्हें यह एहसास था कि वे उनकी तरफ़ असहाय-सी खिंची जा रही हैं। साथ ही भारती के ध्यान का अनुभव उनकी मौजूदगी में तीव्र होता गया। 'जीवन रोमांच से भर गया था। उन्होंने मेरे अंदर काफ़ी उत्सुकता जगा दी। सबसे बड़ी बात यह है कि मैं उन पर भरोसा करने लगी। पता नहीं क्यों, लेकिन मैं जानती थी कि मैं अपना जीवन उनके भरोसे छोड़ सकती थी।'

कुछ ही दिनों में इंदिरा को अपने जीवन में खोखलेपन और अजीब से हल्केपन का आभास होने लगा। 'जब परिचय-वार्ता के बाद मैं घर लौटी, तो मेरा घर मुझे अपरिचित-सा लगा। मेरे पति और मेरा काम मुझे अनजान से लगने लगे। मैं सबसे बड़ी कटी हुई और अलग-थलग महसूस कर रही थी। जग्गी के साथ मेरे संपर्क का सिलसिला शुरू ही हुआ था। चौथे दिन की कक्षा ख़त्म होने के बाद मैं उनके पास गई। मेरे मुँह खोलने से पहले ही उन्होंने कहा, "मैं जानता हूँ, तुम्हारे साथ क्या हो रहा है। बस, शांत और

सहज रहो।" वे अंतर्ज्ञान से मुझे जानते थे, और विचित्र बात यह थी कि मैं उन पर तुरंत भरोसा करने लगी थी।'

*शून्य-ध्यान में दीक्षित होना एक निर्णायक मोड़ था। तब मैं पहली बार यह समझ पाई कि जीवन का एक दूसरा आयाम भी है - एक गहन आयाम, ऐसा आयाम जो वाक़ई खोजने लायक़ है, जिसके लिए संपूर्ण जीवनकाल समर्पित कर देना सार्थक होगा।*

जग्गी की नम्रता और गर्मजोशी के अलावा, उनकी शख़्सियत का एक और गुण उनकी तीव्रता था। इसे उनके शुरुआती साधकों ने तुरंत पहचान लिया था। इंदिरा कहती हैं, 'उन्हें बहुत जल्दी थी, यह बिलकुल साफ़ दिखता था। हालाँकि हम सभी उनके पीछे पागल थे, साथ ही हम अपने दिलों में यह भी जानते थे, कि यह इंसान हम लोगों जैसा नहीं है। मुझे अपने अंतर्बोध से आभास हो गया था कि मेरे जीवन में वे मेरे लिए कुछ ऐसा करने आए हैं, जिसे कोई और न तो कर सकता था, और न ही इसकी हिम्मत कर सकता था। मुझे एहसास हुआ कि वे मेरा हाथ नहीं थामेंगे। मुझे लगा कि वे निर्दयी हो सकते हैं। लेकिन अब वापस लौटने के लिए बहुत देर हो चुकी थी। अब मेरे पास कोई दूसरा चारा नहीं था। मेरी दुनिया बिखर रही थी। मैं एक तरह से अधर में लटका हुआ-सा महसूस कर रही थी और मुझे डर लग रहा था। मगर साथ ही मैं जानती थी कि यही सही रास्ता था। मुझे अपने दिल की धड़कन सुनाई देने लगी थी, साँसों का आना-जाना जिस तरह से महसूस हो रहा था, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था।'

इंदिरा को वह घटना याद है जब जग्गी ने उन्हें और भारती को अपनी एक फ़ोटो दी थी। अपने पति की नाराज़गी से बचने के लिए उन्होंने उसे अलमारी में साड़ियों के बीच छिपा दिया था। एक दिन मैसूर से जग्गी का फ़ोन आया, 'तुम्हारी अलमारी में मेरी फ़ोटो उल्टी क्यों रखी हुई है?' उन्होंने सीधे-सीधे पूछा। वे ऐसी हड़बड़ा गईं कि जवाब भी नहीं दे सकीं।

एक और मौक़े पर जब उनका अपने पति के साथ जमकर झगड़ा चल रहा था, तभी फ़ोन की घंटी बजी। आधी रात का समय था। फ़ोन उठाते ही उन्हें अपने योग शिक्षक की रौबीली आवाज़ सुनाई दी, 'तुम लड़ क्यों रही हो? चुप रहो और जाकर सो जाओ।' उन्होंने बिलकुल वही किया। उन्होंने अपने पति से कहा, 'रांग नंबर था,' और बत्ती बुझा दी।

सोमू (अब स्वामी गुरुभिक्षा), जो एक युवा व्यवसायी थे, बताते हैं कि वे पक्के साहूकार चेट्टियार परिवार से ताल्लुक रखते थे। पहले कार्यक्रम में शामिल होने के तुरंत बाद वे दुविधा में पड़ गए। एक तरफ़ तो वे विवश होकर जग्गी की ओर खिंचे चले जा रहे थे, और दूसरी तरफ़ उनके परिवार की निष्ठा तिरुअन्नामलई के प्रसिद्ध दिव्यदर्शी राम सूरत कुमार के प्रति थी। निश्चय ही दो लोगों को एक साथ गुरु मानना धर्म के ख़िलाफ़ था। इस गतिरोध को ख़त्म करने का एक ही तरीक़ा था कि जग्गी को एक प्रेरणा देने वाला, किंतु महत्त्व में कमतर योग-टीचर माना जाए और राम सूरत कुमार को मुख्य गुरु माना जाए। कई वर्षों तक जग्गी के प्रति आस्था बढ़ती रहने के बावजूद वे दुविधा में रहे। 'अंततः जब मैं 1993 में कराइकुड़ी के पास अपने पैतृक घर जाने की योजना बना रहा था, तब यह टकराव भी सुलझ गया। तब जग्गी ने मुझसे कहा कि उस शहर में दो लोग मुझसे उनके बारे में पूछेंगे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उन लोगों को उनकी तरफ़ से नमस्कार कह दूँ। जब मैं वहाँ पहुँचा तो बिलकुल वैसा ही हुआ! मैं भौंचक्का रह गया। तब तक शायद मैं अपने मन की गहराई में यह जान गया था कि जग्गी ही मेरे गुरु हैं, लेकिन इस घटना से इस बात की पुष्टि हो गई। मैंने महसूस किया कि जग्गी मुझे घुमा-फिराकर इशारा दे रहे थे कि मेरा असली गुरु कौन था।'

कक्षाएँ अब अधिक होने लगीं और तेज़ी से लोकप्रिय होने लगीं। 1990 में पहली बार जग्गी ने कोयम्बतूर में 'भाव स्पंदन प्रोग्राम' (बी एस पी) किया। छिपी व गहरी भावनाओं को जगाने और रूपांतरित करने और मनोवैज्ञानिक रुकावटें हटाने के लिए यह कोर्स तैयार किया गया था। कार्यक्रम में भाग लेने वालों पर इसका गहरा असर हुआ। राजा ने इसे 'भावनात्मक शिखर' बताया। इंदिरा ने 1991 में यह कोर्स किया। तब उसने पाया कि मृत्यु-ध्यान के दौरान उसने वास्तव में अपना शरीर छोड़ दिया था। 'पहली बार मैंने अपने शरीर को वहाँ मरा हुआ पड़ा देखा, मेरे सिर पर मक्खियाँ उड़ रहीं थीं। इसने मेरे मन से मौत का डर हमेशा के लिए निकाल दिया।'

भारती को यह कार्यक्रम उसकी रुचि से कहीं ज़्यादा भावनाओं को उभारने वाला और विस्फोटक लगा। उसे बिलकुल समझ नहीं आया कि तीव्र भावनाओं को कान फटने वाले तेज़ शोर में व्यक्त करने की क्या ज़रूरत है? पर वह एक दर्शक की तरह बैठकर यह सब देख पाई। 'मेरे लिए यह कुछ ज़्यादा ही भावपूर्ण था। हर कोई रो रहा था, हँस रहा था, पर मैं उसकी वजह नहीं समझ पा रही थी। तीसरे दिन के आख़िर में दूसरों का साथ देने के लिए मुझे भी जबरन एक आँसू निकालना पड़ा। फिर भी कार्यक्रम ने मुझे निराश नहीं किया।'

एक नए रोमांच और खोज की यात्रा की शुरुआत का एहसास तो पहले से ही था। इस युवा योग-टीचर के आसपास कुछ विचित्र अनुभव भी होते रहते थे। भारती के पास इनमें से किसी भी घटना का कोई जवाब नहीं था। लेकिन इस दौरान अपना संतुलन बरकरार रखने के पक्के इरादे के साथ, उसने इन घटनाओं के तर्कसंगत न लगने वाले किसी जवाब को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। कभी-कभी जग्गी उसे बताते कि दिन के किसी ख़ास वक़्त पर वे उसके साथ होंगे। ठीक उसी वक़्त पर भारती को, हालाँकि वह उस वक़्त किसी बिलकुल अलग तरह के काम में लगी हुई होती, अचानक अपने गुरु की मौजूदगी का स्पष्ट एहसास होने लगता, जिसमें विभूति की सुगंध भी घुली-मिली होती। हालाँकि उसने इसे अधिक महत्त्व देने से इनकार कर दिया।

एक बार उन्होंने भारती से एक गिलास पानी माँगा। जब वह लेकर आई तब उन्होंने उससे इसे ख़ुद पी लेने को कहा। भारती बताती हैं, 'मैंने पानी पी लिया, लेकिन मुझे पीने का अनुभव बिलकुल नहीं हुआ। मैं पी रही थी, लेकिन मेरी प्यास नहीं बुझ रही थी। यह बड़ा विचित्र अनुभव था। तभी उन्होंने कहा, 'यह मेरे भीतर जा रहा है। मैं यह पानी पी रहा हूँ।' इंदिरा को भी एक ऐसा ही अनुभव याद है।

एक और मौक़े पर जब भारती अपने जीवन में हो रही विचित्र घटनाओं के बारे में संदेह से घिरी हुई थी, जग्गी ने शालिग्राम की माला अपने गले से निकालकर उसकी हथेली पर रख दी। अचानक माला के मनके उसकी हथेली पर साँप जैसी चाल से खिसकने लगे। उसे याद है कि वह डर के मारे ज़ोर से चीख़ पड़ी थी। बाद में उसने जग्गी से इसका मतलब

पूछा। उन्होंने संक्षिप्त जवाब दिया, 'गर्दन पर साँप लपेटकर कौन पहनता है?' जवाब ज़ाहिर था : शिव। लेकिन प्रथम योगी और प्रथम गुरु शिव का मैसूर के इस युवा योग-टीचर से आख़िर क्या लेना-देना था?

इस समय तक भारती को कुछ-कुछ आभास हो गया था, जिसकी आने वाले वर्षों में पुष्टि होनी थी। यह आभास था, उसके गुरु की किसी रहस्यमय व साहसी योजना का, जिसमें उसे और कई दूसरे लोगों को भूमिका अदा करनी थी। उसे कोई भान नहीं था कि यह योजना क्या थी। (वर्षों बाद जाकर उसे समझ आया कि वह योजना अभी भी पूरी तरह प्रकट नहीं हुई है) लेकिन उसे एहसास हुआ कि वे किसी दक्ष षड्यंत्रकारी से कम नहीं हैं। वे कहती हैं, 'वे वाक़ई एक अद्‌भुत जुगाड़ू इंसान हैं, इस बात पर मुझे तब हँसी आती थी और अब भी आती है। तब भी मुझे एहसास था कि किसी ख़ास मौक़े पर मुझे किसी ऐसे इंसान के द्वारा कुशलतापूर्वक इस्तेमाल किया जाना है, जो वाक़ई जानता है कि जीवन का धंधा कैसे चलाते हैं।'

मई 1991 में जग्गी ने पहली बार 'सम्यमा' नाम का मौन कार्यक्रम संचालित किया। वे याद करते हैं, 'इससे पहले मैंने यह कार्यक्रम एक-एक व्यक्ति के लिए किया था। यह पहला मौक़ा था जब मैं इसे एक ग्रुप के लिए संचालित कर रहा था। इसमें लगभग 32 लोग शामिल थे। यह ऐसा था, मानो कसी हुई रस्सी पर संतुलन बनाकर चलने वाले 32 नटों को नियंत्रित रखना।' क्या उस ग्रुप ने इसे कुछ ख़तरनाक बना दिया था? वे कहते हैं, 'भाग लेने वालों के लिए कोई ख़तरा नहीं था। बस, इतना ज़रूरी है कि हर कोई अपनी प्राथमिकताओं का ध्यान रखे। अगर कोई गिरे, तो मैं उसके लिए सुरक्षा जाल हूँ।' आज इस कार्यक्रम में हज़ार से ज़्यादा लोग भाग लेने के लिए आते हैं। ऐसे में गुरु की ज़िम्मेदारी की हम बस कल्पना ही कर सकते हैं। फिर भी सुरक्षा जाल कमज़ोर पड़ता महसूस नहीं होता।

जग्गी ने अब महसूस किया कि मुख्य रूप से स्वास्थ्य के लिए फ़ायदेमंद 'शक्ति चालन क्रिया,' जो वह अब तक सिखा रहे थे, में आध्यात्मिक पहलू को भी शामिल करना उचित होगा। ऐसा करने के बाद उन्होंने उसी ग्रुप के लिए दिसंबर में एक बार फिर 'सम्यमा' का संचालन किया। उन दिनों के कार्यक्रम का काम-चलाऊ स्वरूप उन्हें याद है। कार्यक्रम में बजाया जाने वाला संगीत उनके व्यक्तिगत संग्रह से लिया गया था और उसे बजाने का तरीक़ा

अनोखा था। वे इसे स्पीकर के पास रखे वाकमैन पर बजाते थे। वे मुस्कराते हुए कहते हैं, 'अब हमारे पास नवीनतम साउंड-सिस्टम है। इन कुछ वर्षों में हम काफ़ी दूर निकल आए हैं।'

'सम्यमा' एक उच्च स्तर का कार्यक्रम है, जिसमें सात दिनों का मौन और गहन ध्यान ज़रूरी होता है। इसके विस्फोटक परिणाम होते थे। ऊर्जा स्तर के बढ़ने के साथ साधकों को बहुत ही विचित्र अनुभव होते थे और अजीब चीज़ें होती हुई लगती थीं। इनमें से कुछ पर ऐसी घटनाओं की यादें हावी हो जातीं, जो उनके जीवन में पहले कभी नहीं घटी थीं। बाक़ी लोगों में कोई लकड़बग्घे की तरह हँसता, कोई बिल्लियों की तरह म्याऊँ-म्याऊँ करता, कोई साँपों की तरह फुफकारता हुआ हाल में चारों तरफ़ रेंगता रहता। कुछ अपनी सीटों से उछल जाते, कुछ सिर के बल खड़े हो जाते। एक सज्जन ने तो ख़ुद को जग्गी की गोद में पाया! एक पुराने साधक श्रीनिवास का कहना है, 'हरेक ध्यान सत्र की शुरुआत में मैं जिस जगह पर होता, उसके अंत में ख़ुद को वहाँ से कई फ़ुट दूर पाता था।'

*मैंने पानी पी लिया, लेकिन मुझे पीने का अनुभव बिलकुल नहीं हुआ। मैं पी रही थी, लेकिन मेरी प्यास नहीं बुझ रही थी। यह बड़ा विचित्र अनुभव था। तभी उन्होंने कहा - यह मेरे भीतर जा रहा है। यह पानी मैं पी रहा हूँ।*

जब साधक कार्यक्रम से बाहर आते, तो उन्हें लगता मानो उन्हें कपड़ों की तरह धोकर निचोड़ दिया गया है। रोज़ाना के अपने नाटक ख़त्म कर लेने के बाद, उन्हें एक स्थाई शांति महसूस होती। उन्हें हैरानी होती कि उन्होंने पहले तमाम मामूली बातों में कितना ज़्यादा वक़्त और मानसिक ऊर्जा लगा रखी थी। कई लोगों ने कहा कि ऐसा लगा मानो, कार्यक्रम के पहले वाले इंसान ने, किसी साँप की तरह अपनी केंचुल से छुटकारा पा लिया है। साँपों के शौक़ीन गुरु में, एक नाटकीय तरीक़े से कार्मिक-कचरे की केंचुल उतारने की आध्यात्मिक प्रक्रिया की शुरुआत कराने की क्षमता, इतनी हैरान करने वाली नहीं थी। धीरे-धीरे लोग इस युवा योग-टीचर को गंभीरता से लेने लगे।

साधकों को गहन ध्यान की प्रक्रिया में ले जाने वाला यह सम्यमा कार्यक्रम लोगों में गहरा और रूपांतरणकारी असर दिखाता है। सद्गुरु समझाते हैं कि ऊर्जा का स्तर बढ़ने के साथ अक्सर अचेतन मन के अनुभव भी बाहर आने लगते हैं। शुरू के कार्यक्रमों में पिछले जन्मों की यादें अक्सर जीवंत और सशक्त रूप में उभरती थीं। पर बाद के कार्यक्रमों में उन्होंने इस हिस्से को इस वजह से निकाल दिया, क्योंकि ऐसी यादें लोगों को असली मक़सद से भटका सकती हैं। वे कहते हैं कि इंसान का मुख्य लक्ष्य ऊर्जा स्तर पर अपने कर्मों से छुटकारा पाना है। इसके लिए कर्मों को चैतन्य-स्मृति के रूप में ख़त्म करना ज़रूरी नहीं है।

मई 1992 में हुए सम्यमा कार्यक्रम के दौरान भारती ने ध्यान के समय अचानक ख़ुद को अपने शरीर से बाहर आते हुए पाया, और किसी दूसरी जगह और समय में पहुँच जाने का स्पष्ट अनुभव किया। उसने देखा कि गाँव का इलाक़ा है। कोई ज़मीन पर पड़ा है और वह उसके पास खड़ी है। आसपास काफ़ी शोरगुल था और वह बहुत दुखी थी। वह समझ पा रही थी कि उस जगह पर मौजूद स्त्री वह ख़ुद ही है और उसे एहसास हुआ कि सामने पड़े आदमी की मौत साँप के काटने से हुई है। अचानक उसके दिमाग़ में कौंध गया कि वह मरा हुआ इंसान कोई और नहीं, बल्कि ख़ुद उसके गुरु जग्गी हैं और यह किसी दूसरे जन्म की बात है। वह यह भी जान गई कि इस जीवन में वह उनकी शिष्या होने के लिए ही जन्मी थी।

भारती को इन दोनों बातों का एक साथ एहसास था कि वहाँ गाँव में दुख में रोती हुई औरत और यहाँ ध्यान कार्यक्रम में अचेत पड़ी हुई औरत वह ख़ुद थी। एक ही समय में उसे भूतकाल और वर्तमान का अनुभव हो रहा था। उसे कार्यक्रम के प्रतिभागियों से घिरे होने, और उसे होश में लाने के लिए जग्गी द्वारा उसके माथे पर थपकी देते हुए उसके चक्रों को नियंत्रित करने का भी एहसास था। वहाँ इकट्ठा लोगों में बढ़ती चिंता का वह मज़ा ले रही थी। लगभग चालीस मिनट के बाद उसने आँखें खोलकर अपने गुरु की तरफ़ देखा। 'मैं जानती थी कि यह अनुभव मतिभ्रम नहीं था। इस हालत से बाहर आने पर मैं जान गई कि इस इंसान से मेरा नाता कहीं और से, पहले की किसी जगह और वक़्त से था।' अब उसे उनके साथ जुड़ाव की गहरी भावना की वजह समझ में आ रही थी। लेकिन उसका निहारना बिलकुल भावहीन था। उसमें एक विचित्र सी निर्लिप्त स्पष्टता थी। बाद में

उसे एहसास हुआ कि पुरानी याद ताज़ा होने के बाद उसका साँपों का डर ख़त्म हो चुका था।

आगे चलकर एक सम्यमा कार्यक्रम में उसे तेज़ी से चलते हुए दो नग्न साधुओं की एक छोटी-सी लेकिन स्पष्ट झलक मिली। इस दृश्य को देखकर उसे अपने अंतर्बोध से यह पता चला कि इन दोनों में से कम उम्र वाला साधु वह ख़ुद है, और दूसरा साधु और कोई नहीं, जग्गी ही हैं। गुरु तेज़ क़दमों से चले जा रहे थे और भावनाओं के आवेश में थे। भारती को तुरंत एहसास हो गया कि साधुओं के लिए वो बड़े कठोर दिन हुआ करते थे। पलभर में ही उसे अपना पिछला जन्म, सद्गुरु श्री ब्रह्मा के निकटतम शिष्य और सहचर, विभूति के रूप में याद आ गया।

जब वह इन अनुभवों से बाहर आई तो जग्गी को पता था कि उसके साथ क्या हुआ था। उन्होंने उससे पूछा कि इन अनुभवों का उसने क्या मतलब निकाला? उसने सहजता से कहा, 'मैं आपको पहले से जानती रही हूँ, पर इसका इस जन्म में कोई मतलब नहीं है।' आज भी वह यही कहती है, 'इन अनुभवों की वजह से उनसे मेरा लगाव और नहीं बढ़ा। दरअसल, मैंने इस बात को बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया। मैं जानती थी कि जो भी उनका शिष्य होगा, उसे वे इस तरह के अनुभव कराएँगे। जब कभी लोग उनसे पूछते हैं कि क्या वे उनको पिछले किसी जन्म में जानते थे, तो मुझे लोगों की उत्सुकता पर हैरानी होती है। मेरा सवाल है, इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है? वे अभी यहाँ हैं। बस यही अहम है। पिछले जन्म में उन्हें जानने या न जानने के वाक़ई कोई मायने नहीं हैं।'

लेकिन इस अनुभव ने एक सवाल ज़रूर उठाया। 'अब मैं जानती थी कि मैं कम से कम दो जन्मों से उनसे जुड़ी रही। तो मेरा सवाल था, "जीवन दो लोगों को इस तरह कई जन्मों तक क्यों एक साथ मिलाता है? कि मक़सद के लिए? जीवन का यह सारा नाटक क्या है? यह सवाल अब भी बरकरार है।" यह सवाल उसने एक बार सद्गुरु से पूछा। उन्होंने तटस्थ अंदाज़ में जवाब दिया, 'इस नाटक को बस आख़िर तक देखती रहो।'

उसे इस बात का एहसास हुआ कि इस कार्यक्रम से उसके भीतर आज़ादी और स्पष्टता धीरे-धीरे बढ़ने लगी है। 'सम्यमा के बाद मैंने महसूस किया कि मैं एक बिलकुल अलग तरीक़े से जीने लगी थी। मैं अब भी वही

सब काम करती थी, पर अब मुझे इनमें कहीं ज़्यादा आनंद आता था। अब भी मेरी सख़्त पसंद-नापसंद थीं, पर अब वे मेरे जीवन पर हावी नहीं थीं। अब भी समाधि या आत्मज्ञान पाने की मेरी कोई प्रबल इच्छा नहीं है। लेकिन इस इंसान के लिए मेरे मन में आदर इसलिए है, क्योंकि मैं जानती हूँ कि वे वाक़ई किसी का जीवन बदल सकते हैं। ऐसा मेरे साथ हुआ है और अब भी हो रहा है। रोमांच अब भी बरकरार है।'

सम्यमा ध्यान के बाद जग्गी ने भारती को एक ऐसी बात बताई, जिससे वह हैरान रह गई। उसे याद है, 'उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे घुटने के नीचे एक जन्मजात निशान है। उन्होंने इसका आकार-प्रकार तक बताया। मैंने उन्हें बताया कि ठीक ऐसा ही है। उन्होंने कहा कि ऐसा ही निशान उनके कंधे पर भी था।' यह साँप के काटने का निशान था : उस जन्म की विरासत, जिसमें दोनों को ये दाग़ मिले थे। भारती कहती है, 'अचानक उस कहानी की कड़ियाँ जुड़ गईं।' वह कहती है कि ध्यानलिंग की प्राण प्रतिष्ठा होने के बाद से यह निशान फीका पड़ने लगा है।

1992 में पहली बार सम्यमा करने वाली विजी का यह विश्वास अब पक्का हो गया कि वह ध्यान नहीं कर सकती। उसने कार्यक्रम ख़त्म होने पर बाक़ी साधकों को बताया, 'मैं जग्गी को अलग रखकर ध्यान नहीं कर सकती। अगर मैं आँखें बंद करती हूँ तो मुझे जग्गी दिखते हैं। अगर आँख खोलती हूँ तो जग्गी नज़र आते हैं।' यह बताते हुए उसकी आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। यह सुनकर उसके पति के चेहरे पर भी आँसू लुढ़कने लगे।

पहले सम्यमा कार्यक्रम के तुरंत बाद इक्कीस दिनों का 'टीचर ट्रेनिंग कोर्स' शुरू हुआ। इसमें आठ लोगों ने भाग लिया। इसी समय 'ईशा फ़ाउंडेशन ट्रस्ट' स्थापित किया गया। कोयम्बतूर के प्रतिबद्ध साधकों का लगातार बढ़ता हुआ ग्रुप यह महसूस कर रहा था कि उन्हें एक ऐसी जगह की ज़रूरत है, जहाँ वे अपने गुरु के साथ रहकर अपने लक्ष्य के लिए साधना कर सकें। उनके जीवन तो पहले ही ज़बर्दस्त तरीक़े से रूपांतरित हो चुके थे। अब उनके लिए कारोबार या पारिवारिक जीवन के भी ज़्यादा मायने नहीं रह गए थे। गुरु के बिना उनको जीवन खोखला लगता था। उनकी मौजूदगी इतनी अनिश्चित थी कि उन्हें बाँधकर अपने बीच रखने के लिए एक आश्रम का होना ज़रूरी लगा ताकि वे उन्हें छोड़कर न जा पाएँ।

> *सम्यमा के बाद मैंने महसूस किया कि मैं एक बिलकुल अलग तरीक़े से जीने लगी थी। मैं अब भी वही सब काम करती थी, पर अब मुझे इनमें कहीं ज़्यादा आनंद आता था। अब भी मेरी सख़्त पसंद-नापसंद थीं, पर अब वे मेरे जीवन पर हावी नहीं थीं।*

इसके अलावा, इन लोगों के जीवन से जुड़ा कोई अन्य इंसान यह नहीं समझ पा रहा था कि आख़िर हो क्या रहा था। कोयम्बतूर में कई ऐसे लोग थे, जो इस नए युवा योग-गुरु और उनके शिष्यों की बढ़ती हुई तादाद को शक और द्वेष की नज़र से देखने लगे। जैसी कि आशंका थी, उनके ख़िलाफ़ अफ़वाहें फैलने लगी थीं यह युवा कौन है, जिसने घर-परिवारों को तोड़ दिया है? उसने इन लोगों पर क्या जादू चला रखा है? जो योग वह सिखा रहा है, वह बाहर से जैसा दिखता है, क्या उसके अलावा भी उसमें कुछ छल-कपट और चालाकी है?

फिर भी नए ईशा साधकों को इस सबसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। इन साधकों के जानने वालों को तो यह बिना आगा-पीछा सोचे उठाया गया आत्मघाती क़दम जैसा लगा। लेकिन वे साधक इस अनजान युवा योगी पर अपना सब कुछ लुटाने को तैयार थे। इस इंसान के पास न कोई साधन था, न कोई संसाधन, मगर इसे हर किसी ने अपना मार्गदर्शक मान लिया था। इसमें ख़तरा था, पर ऐसा लगता था कि उन लोगों के पास इस मामले में कोई और विकल्प नहीं था।

राजा, जो आगे जाकर टीचर ट्रेनिंग कार्यक्रम के संचालक भी बने, उनके लिए 1991 का वर्ष शायद उनके जीवन का सबसे ज़्यादा घटनाओं से भरा हुआ साल था। इसी वर्ष उनकी शादी हुई, उनकी बेटी का जन्म हुआ, उन्होंने पहले सम्यमा और टीचर ट्रेनिंग कार्यक्रम में हिस्सा लिया और फिर अपना पूरा समय ईशा को देने के लिए नौकरी छोड़ दी। 'एक दिन तिरुपुर में जग्गी ने मुझसे मेरी योजनाओं के बारे में पूछा। मैंने उनसे कहा, "मुझे नहीं मालूम।" उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं कारोबार करना चाहता हूँ? मैंने वही बात दोहरा दी, "मुझे नहीं मालूम।" उन्होंने कहा, "योग के बारे

में तुम्हारा क्या ख़याल है? क्या तुम इसे लोगों में फैलाना चाहोगे?" मैंने पूछा, "वह कैसे?" उन्होंने कहा, "अब तुम प्रशिक्षित हो चुके हो, इसलिए तुम जगह-जगह जाकर योग सिखा सकते हो।" मैंने उनसे पूछा कि क्या मैं अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दूँ? उन्होंने कहा कि यह शायद समझदारी का काम होगा। एक महीने बाद मैं उनसे मिलने मैसूर गया और उन्हें बताया कि मैंने नौकरी छोड़ दी है। जिस तेज़ी से मैंने यह क़दम उठाया था, उससे वे हैरान रह गए।' राजा को अब भी याद है कि जब उन्होंने यह बात बताई, तो किस तरह नरम दिल विजी की आँखों में आँसू आ गए थे। अपनी सहज उदारता से उसने कहा, 'अब मुझे दो परिवारों का ख़याल रखना पड़ेगा।' राजा को याद है कि विजी ने हमेशा उनकी पत्नी, बच्ची और उन्हें अपने परिवार का अभिन्न हिस्सा समझा।

आज जब वे अपने फ़ैसले को याद करते हैं, तो मानते हैं कि यह एक तरह का जुनून था। 'इसमें कोई सोच-विचार था ही नहीं। हमने कभी भविष्य की चिंता नहीं की। हम जग्गी को यह कहते सुना करते थे कि वे बयालीस साल की उम्र से ज़्यादा जीवित नहीं रहेंगे। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। हमें उनकी बातों पर भरोसा था और हम उनसे प्यार करते थे। इसके बाद डर के लिए कोई जगह ही नहीं थी।'

जग्गी की करिश्माई शख़्सियत के प्रशंसक होने के अलावा, राजा को भी अपने गुरु के संपर्क में गहन अनुभव मिले थे, जिनसे वह ताज्जुब में पड़ गए थे। एक मौक़े पर जग्गी ने उन्हें तिरुपुर जाकर एक योग-कक्षा करने के लिए कहा। इस कक्षा में नब्बे लोग भाग लेने वाले थे। राजा ने मना कर दिया, क्योंकि अब तक उन्होंने जग्गी के सहायक के तौर पर ही काम किया था और स्वतंत्र रूप से उन्हें कक्षा संचालित करने का अनुभव नहीं था। जग्गी ने उन्हें याद दिलाया कि वह बतौर शिक्षक प्रशिक्षित हो चुके हैं, लेकिन राजा अपने फ़ैसले पर अड़े रहे। आख़िरकार जग्गी ने उन्हें सुझाव दिया कि वह सिर्फ़ परिचय-वार्ता संचालित करें और वादा किया कि इसके बाद वह ख़ुद आकर कार्यक्रम का संचालन करेंगे। इस उम्मीद के साथ कि जग्गी पीछे से अपनी कार से आएँगे, राजा ने तिरुपुर जाने वाली बस पकड़ ली। 'उस शाम मैंने परिचय-वार्ता संपन्न की। अगले दिन सुबह जग्गी का कोई अता-पता नहीं था। मैंने कोयम्बतूर कार्यालय में फ़ोन किया। मुझे बताया गया कि वे मैसूर चले गए हैं। मैंने वहाँ भी उनसे संपर्क करने की कोशिश की लेकिन

उनका कहीं पता न चला। वे तो ग़ायब ही हो गए थे।' परेशान और खीजे हुए राजा ने सारा कार्यक्रम ख़ुद संचालित किया। कुछ दिनों बाद दीक्षा-प्रक्रिया शुरू होने से तुरंत पहले जग्गी मुस्कराते हुए प्रकट हुए।

पूछताछ करने पर राजा को पता चला कि जग्गी इस दौरान कोयम्बतूर में ही थे। लेकिन उन्होंने जानबूझ कर परेशान राजा के फ़ोन का जवाब नहीं दिया। जब कुछ स्वयंसेवियों ने उनसे पूछा कि उन्होंने राजा को इस परेशानी से क्यों नहीं निकाला, तो उन्होंने जवाब दिया कि राजा से ख़ुद कक्षा संचालित करवाने का यही एक तरीक़ा था। उन्होंने कहा, 'राजा सोचता है कि कक्षा वह संचालित कर रहा है। वह मूर्ख यह नहीं जानता कि मैं हर दिन उसके साथ हूँ।' कई दिनों बाद जब जग्गी ने उन्हें कुछ ऐसे मौक़े याद दिलाए, जहाँ उन्होंने कार्यक्रम संचालन में ग़लतियाँ की थीं, तो वह हैरान रह गए।

उन्हें एक और मौक़ा याद है, जब वह सम्यमा कार्यक्रम के दौरान जग्गी के साथ दोपहर का भोजन कर रहे थे। पिछली रात को कार्यक्रम में भाग लेने वाली एक युवती पर राजा का ध्यान गया था, जो एक अलग मनोस्थिति में लग रही थी। जग्गी ने भी इस बात को देख लिया था और उस युवती पर क़रीब से नज़र रखने को कहा था। भोजन के बीच में ही जग्गी अचानक उठे और हॉल की तरफ़ भागे। वह युवती मंच के पास बेहोश पड़ी हुई थी। जग्गी का दायाँ हाथ अचानक रहस्यमय तरीक़े से लुंज-सा हो गया। उन्होंने थोड़ा-सा तेल माँगा और काफ़ी देर तक उस युवती के चक्रों को नियंत्रित करते रहे। आख़िरकार वह होश में आ गई। बाद में जग्गी ने राजा को बताया कि उस युवती ने न केवल अपना शरीर छोड़ दिया था, बल्कि भोजन के दौरान वह एक 'देह-मुक्त जीव' के रूप में उनके सामने आकर ज़ोर-ज़ोर से हँस रही थी। इसी वजह से वह तुरंत भागकर हॉल में गए थे। वे जान गए थे कि यह उसके मरने-जीने का सवाल था। राजा कहते हैं, 'ऐसी बातें उनके आसपास अक्सर होती रहती थीं।'

ऐसे ही एक बार जग्गी एक ग्रुप के साथ कर्नाटक के कुमार पर्वत पर ट्रेकिंग के लिए गए। ट्रेकिंग शुरू होने के ठीक पहले वे एक किताब पढ़ रहे थे। किताब से सिर उठाकर उन्होंने उस ग्रुप को बताया कि भगवान कार्तिकेय या मुरुगा ने, (द्रविड़ प्रदेश के छह सिर वाले योद्धा देवता, जो भगवान शिव के पहले पुत्र और ख़ुद एक पहुँचे हुए योगी थे) इसी पहाड़ी पर अपना

शरीर छोड़ा था। चढ़ाई का लगभग एक चौथाई हिस्सा पार करते ही जग्गी का शरीर काँपने लगा। वे पथरीली ज़मीन पर गिर गए और उनका शरीर ऐंठने लगा। साफ़ दिख रहा था कि वे अपने शरीर पर पकड़ बनाए रखने की कोशिश कर रहे थे। साधकों ने पहले भी उनको समाधि की ऐसी अवस्था में देखा था। वे उनके पैरों को रगड़ने लगे, जो ऐसी हालत में ठंडा और सुन्न पड़ जाते थे। जग्गी ने पत्थर का एक टुकड़ा लाने को कहा और इसे कई बार अपने माथे पर 'आज्ञा-चक्र' पर रगड़ने को कहा। जब वे ठीक हो गए, तब वे एक बदले हुए इंसान लग रहे थे। उसके बाद उन्होंने मौन रहकर वह यात्रा जारी रखी।

उस रात जब इस ग्रुप ने पहाड़ के आधे रास्ते पर अपना शिविर डाला, तब जग्गी ने उनसे कुछ ख़ास ध्यान करवाए। राजा कहते हैं, 'बड़ी विचित्र चीज़ें हो रही थीं। कुछ सुबक रहे थे, कुछ हिल रहे थे। ध्यान के बीच में ही श्रीनिवास खड़े हो गए जिससे टेंट नीचे गिर गया।' अगले दिन जग्गी ने सभी को उनके बिना ही ऊपर आगे चढ़ने के लिए कहा। ये लोग ऊपर चोटी पर एक ख़ास शक्तिशाली ध्यान करने के बाद लौटे और साथ में एक विचित्र आकार का पत्थर ले आए। किसी ने उन्हें इसे 'षण्मुख-लिंग' बताया था। जग्गी कुछ देर तक उस पत्थर को हाथ में लिए रहे। फिर इसे ग्रुप के दूसरे लोगों को दिया। राजा ने जब इसे छुआ तो उन्हें यह गरम लगा, जबकि इसके संपर्क में आते ही बाक़ी लोगों में से कोई लोटने लगा, तो कोई हिलने लगा। बाद में उस रात जग्गी ने बताया कि किसी महान योगी ने - संभवतः ख़ुद कार्तिकेय ने ही - इस पर्वत पर अपना शरीर छोड़ा था। इसी वजह से उस जगह पर इतनी असाधारण और शक्तिशाली ऊर्जा थी। इस घटना से राजा यह बात तो पक्के तौर पर समझ गए कि उनके गुरु के आसपास जीवन अनपेक्षित के अलावा कुछ और नहीं हो सकता है।

शुरु-शुरु में अपने शिष्यों की गहरी इच्छा के बावजूद, जग्गी किसी भी तरह की संस्था बनाने के विचार के ख़िलाफ़ लगते थे। 'मैं किसी एक जगह पर बंधकर नहीं रहना चाहता। देश में पहले ही ढेर सारे आश्रम हैं। हम एक और क्यों शुरू करना चाहते हैं?' लेकिन वे धीरे-धीरे राज़ी होने लगे। अपने फ़ैसले को याद करके वह कहते हैं, 'ध्यानलिंग के लिए मुझे समर्थन और जगह की ज़रूरत थी। इसके लिए एक ट्रस्ट बनाना ज़रूरी था। मुझे यह भी एहसास हुआ कि मुझे साधकों के बढ़ते हुए समुदाय को सहारा देना

होगा। इसलिए आश्रम बनाने का विचार ठीक लगा।'

क्या उनकी आज़ाद प्रकृति बढ़ती ज़िम्मेदारियों तले दबा हुआ महसूस करती है? 'बिलकुल नहीं। क्योंकि मैंने इसे काम नहीं बल्कि बस एक खेल समझा है। हाँ, इससे मध्यस्थता और हस्तक्षेप के स्तर बढ़े हैं। इस कारण मैं जब-तब खीज भी जाता हूँ।' थोड़ा रुककर वे कहते हैं, 'कभी-कभी ऐसा लगता है कि आश्रम और योग केंद्र को सँभालने से ज़्यादा अच्छा पहाड़ों पर घूमते रहना है। लेकिन इससे वाक़ई कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता। अपने भीतर मैं अब भी अकेला हूँ। मैं अब भी अनवरत मौन में हूँ।' और क्या उस आंतरिक मौन में कभी चूक हुई है? वे मुस्कराते हैं, 'वे चूकें भी पूरी जागरूकता में ही होती हैं।'

*उनके साथ होना बेचैन करने वाला था, मगर उनके बिना सब कुछ बहुत डरावना था। अब वे एक इंसान नहीं रह गए थे, वे बस एक शाश्वत मौजूदगी थे। उस ध्यान-हाल में कुछ ऐसे दृश्य देखने को मिले, जिनकी कल्पना कोई इंसान नहीं कर सकता।*

इस तरह 1993 में ईशा योग केंद्र का बीज बोया गया। इस केंद्र के लिए जो स्थान चुना गया, उसने सबको चौंका दिया। इस बारे में साधकों की अपनी-अपनी सोच थी। उन्होंने इस मक़सद के लिए कोयम्बतूर के आसपास तमाम संभावित जगहों की लिस्ट बना रखी थी। भारती को याद है कि किस तरह स्थानीय साधक जग्गी को केरल और कर्नाटक की कई प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर जगहों पर ले गए थे। एक दिन त्रिची में तीन साधकों ने बड़े जोश से जग्गी को नवामलई नाम की एक जगह के बारे में बताया, जो उन्हें आश्रम के लिए बहुत अच्छी लगी थी। लेकिन उन्हें याद है कि उनके उत्साह के बावजूद जग्गी संतुष्ट नहीं लगे।

पुरानी बातें याद करके सद्‌गुरु बहुत सजीवता से बताते हैं कि यह जगह उन्होंने कैसे खोजी। 'बचपन से ही मैं जो कुछ देखता था, उसकी पृष्ठभूमि में मुझे पहाड़ दिखाई देते थे। सोलह साल की उम्र तक मैं सोचता

था कि हर किसी को मेरी तरह पहाड़ दिखते होंगे। जब मैंने अपने दोस्तों से इस बारे में बात की, तो उन्होंने कहा, "तुम पागल हो क्या? पहाड़ कहाँ हैं?" लेकिन वे मेरी नज़र में हमेशा होते थे। इसलिए सोलह साल के बाद मैं जान गया कि मुझे इस जगह को खोजना होगा। लेकिन फिर मैंने यह ख़याल छोड़ दिया, क्योंकि मेरी नज़र में तो वे हमेशा थे ही। अगर कोई भी चीज़ हमेशा बरकरार रहती है, तो आप उसके आदी हो जाते हैं। जब ध्यानलिंग पर काम करने का समय आया, तब मैंने इन पहाड़ों को खोजना शुरू किया। मैं पागलों की तरह जगह-जगह भटका। अपनी मोटरसाइकिल लेकर गोवा से कन्याकुमारी तक, यहाँ-वहाँ घूमकर इन पहाड़ों को ढूँढ़ता रहा। चूँकि मैंने 'पहाड़' कहा था तो लोग हर जगह उस 'सही पहाड़' को खोज रहे थे। लेकिन वे हमें मिल नहीं रहे थे। लोग लगभग निराश हो चुके थे। तभी एक दिन, जब हम किसी के द्वारा सुझाई हुई जगह की ओर जा रहे थे, तो हम सड़क के एक मोड़ पर पहुँचे। वहाँ से मुझे "सातवीं पहाड़ी" दिखाई दी। मैंने कहा "रुको।" और मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली।'

कोयम्बतूर शहर की सीमा से बाहर, वेलियंगिरि पहाड़ की तलहटी में पूंडी नाम के इलाके में यह एक तेरह एकड़ की ज़मीन थी। इसके पास ही प्रसिद्ध तिरुमुरुगन मंदिर था, जिसका उल्लेख प्राचीन तमिल साहित्य में भी है और सिरुवानी जलप्रपात भी यहाँ से ज़्यादा दूर नहीं है। जग्गी का संक्षिप्त निर्देश था, 'इसे ख़रीद लो।'

साधकों के मन में इस जगह को लेकर काफ़ी हिचक थी। यहाँ पहुँचना मुश्किल था और यह जंगल का इलाक़ा लगता था। यहाँ अक्सर हाथी और भालू दिखाई पड़ते थे और सूरज डूबने के बाद लोगों का इधर आना-जाना बंद हो जाता था। लेकिन जग्गी ने इन आशंकाओं को हँसकर उड़ा दिया। उन्होंने पूछा, 'तुम सभी साधक हो। क्या इसके बावजूद तुम्हारे मन में डर है?' फिर उन्होंने सबको भरोसा दिलाया कि यह जगह उनके मक़सद के लिए बिलकुल सही है और अंततः सब कुछ ठीक हो जाएगा। उन्होंने गूढ़ तरीक़े से कहा, 'तुम बस ईशा के साथ होने का मन बना लो, और फिर देखो क्या होता है?'

इस जगह को खोजने के ग्यारह दिन के भीतर ही इसे ख़रीद लिया गया। यह जंगल के बीचोंबीच पहाड़ों से घिरी हुई जगह थी। जंगल का इलाक़ा होने

के बावजूद यह एक बेहद ख़ूबसूरत जगह थी। जिन्होंने भी इसे उस वक़्त देखा था, वे पिछले एक दशक में इसके इतनी तेज़ी से विकसित हो जाने पर आश्चर्य करते हैं। शुरू में यहाँ सिर्फ़ एक कुआँ, एक छप्पर और पेड़ पर लकड़ी का मचान-सा था। (शायद शिकार के लिए!) आज इस जगह पर ध्यान के लिए दो हाल, एक सर्वधर्म मंदिर, एक देवी मंदिर, एक पवित्र कुण्ड, एक स्कूल, एक स्वास्थ्य-लाभ केंद्र, एक सम्मेलन हॉल, और कार्यालय हैं। यहाँ कॉटेज भी हैं, जिनमें लगभग तीन सौ संन्यासियों, स्वयंसेवियों और बहुत से अतिथियों के रहने की जगह है। कई एकड़ ज़मीन और ख़रीद ली गई है और आश्रम के विस्तार की योजना बनाई जा रही है। ताज्जुब की बात यह है कि यहाँ रहने वालों की तादाद में तेज़ी से बढ़ोत्तरी के बावजूद इस जगह की सुंदरता में कोई कमी नहीं आई है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह अब भी देश के मनोरम आश्रमों में से एक है। इसका सादगीभरा, सुरुचिपूर्ण और पर्यावरण के अनुकूल डिजाइन, इसके मक़सद के ख़िलाफ़ नहीं, इसके अनुरूप है।

इस तरह 1994 तक एक कामचलाऊ आश्रम तैयार हो गया था। साधकों का एकजुट और असाधारण रूप से प्रतिबद्ध ग्रुप और नवोदित 'ईशा योग आंदोलन' धीरे-धीरे तमिलनाडु राज्य में अपनी मौजूदगी महसूस कराने लगा था। मंच तैयार हो चुका था। गुरु जानते थे कि अब काम शुरू करने का वक़्त आ चुका है। उन्होंने नब्बे दिनों के एक आवासीय 'होलनेस कार्यक्रम' की घोषणा कर दी।

कोयम्बतूर, तिरुपुर और इरोड व्यावसायिक गतिविधियों वाले केंद्र हैं और ज़्यादातर साधकों का जीवन अपने-अपने पेशों में व्यस्त था। बाक़ियों को परिवार और घर-गृहस्थी की देखभाल करनी थी। इस कार्यक्रम के लिए साधकों को अपनी तरफ़ से चालीस दिन की पहले से तैयारी करने की ज़रूरत थी। आश्रम में सुविधाएँ और दूसरे इंतज़ाम नाममात्र को चालू हुए थे। कांक्रीट के एकमात्र ढाँचे को, जिसे आज 'ट्रायंगुलर ब्लॉक' कहते हैं, पूरा होने में काफ़ी देर थी। कार्यक्रम में भाग लेने वालों को घास-फूस के छप्पर और मिट्टी के फ़र्श वाले काम चलाऊ ध्यान-कक्ष में ही खाना, सोना और ध्यान करना पड़ता था। टॉयलेट बिलकुल साधारण थे, और खाने में बस बुनियादी चीज़ें मिलने वाली थीं : सिर्फ़ सलाद, रसम, चावल, दलिया

और अचार। बाहरी दुनिया से संपर्क का कोई सवाल नहीं था। कार्यक्रम के एक दिन पहले कोयम्बतूर में इतनी बारिश हुई कि आश्रम पहुँचने वाली सड़क जाम हो गई। जलस्तर लगातार बढ़ रहा था। इतने लंबे और कठिन कार्यक्रम के लिए लोगों से नाम लिखवाने की उम्मीद करना, पागलपन भरा और अव्यावहारिक लग रहा था।

पचास लोगों ने पंजीकरण कराया। सभी लोग आए, जैसी कि जग्गी ने भविष्यवाणी की थी, अड़तालीस लोग कार्यक्रम के आख़िर तक रहे।

भारती कहती हैं, 'यह कार्यक्रम सचमुच एक अप्रत्यक्ष वरदान था। हम सभी पहले से ही एक तरह के सामूहिक उन्माद में थे। हमारे परिवार वाले और दोस्त हमें समझ नहीं पा रहे थे। कुछ लोगों को यक़ीन हो गया था कि हम किसी काले जादू के शिकार हो गए हैं। वे यह भी सोचते थे कि हमारी दलिया *(कंजी)* में कुछ नशीली दवाएँ मिलाई गई थीं! यह हमारे लिए एक राहत की बात थी कि हम अपनी रोज़मर्रा की दुनिया को कुछ वक़्त के लिए पीछे छोड़ सकते थे, और ख़ुद को उस चीज़ में डुबो सकते थे, जो हमारे लिए वाक़ई मायने रखती थी। हमने कभी नहीं सोचा कि इसका क्या नतीजा निकलेगा। बस, अपने गुरु के आसपास होना ही काफ़ी था।'

वह सीधे अपने परिवार के मुखिया, अपने ससुरजी के पास पहुँची और उन्हें बताया कि वह कार्यक्रम में भाग लेना चाहती हैं। उन्होंने सोचा है कि बच्चों को इस दौरान अपनी माँ के पास छोड़ देगी। उनके तीन महीने घर से दूर रहने की बात सुनकर ससुरजी की भवें तन गईं थीं। लेकिन उन्होंने उन्हें विश्वास दिला दिया कि योग कार्यक्रम में हिस्सा लेना पढ़ाई या कामकाज के सिलसिले में जाने जैसा ही था।

अपनी पत्नी के साथ कार्यक्रम में शामिल हुए राजा ने भी अपनी तीन साल की बेटी को अपने माता-पिता के पास छोड़ दिया था। 'हम नहीं जानते थे कि हमने इस कार्यक्रम में किसलिए नाम लिखाया है? लेकिन हम इतना जानते थे कि एक कार्यक्रम में ही जग्गी ने हमें गहराई में बदल दिया है। वे अक्सर कहा करते थे कि तीन महीने के कार्यक्रम में वे हमें पूरी तरह रूपांतरित कर देंगे। यह एक चुनौती थी।'

किरण (अब स्वामी देवसत्वा) को याद है कि आसपास के लोगों की चेतावनी के बावजूद, जग्गी किस तरह कार्यक्रम से एक दिन पहले तेज़ी से

बढ़ते हुए बाढ़ के पानी में से अपनी सफ़ेद मारुति-800 को चलाकर आश्रम तक जाने पर अड़े रहे थे। कार्यक्रम को एक दिन के लिए टालने में कोई बुराई नहीं थी। लेकिन जग्गी इस हद तक अपने फ़ैसले पर अड़े रहे कि लोग परेशान होकर उन्हें कोसने लगे। 'ट्रक ड्राइवर भी अपना भाग्य आज़माने को तैयार नहीं थे। उनके निकलने के तुरंत बाद ही उनमें से एक फँस गया। लेकिन वे फर्राटे से निकल गए।'

इसके बाद आगे जाकर एक जगह उनकी कार भी फँस गई। पहली बार स्वयंसेवकों ने उसे धकेल कर निकाला। राजा याद करते हैं कि दूसरी बार जब उनकी कार फँसी, तो उन्होंने उसे जंगल में ही छोड़ दिया और पैदल आश्रम चले गए। एक साधक बताते हैं, 'कार में पानी भर गया था। पानी स्टीयरिंग व्हील तक आ गया था। हमने जग्गी की बेटी को कार से निकाला। कई लोगों को एकसाथ मिलकर कार को उठाकर कीचड़ से बाहर निकलना पड़ा।' आख़िरकार पाँच साधकों ने धकेलकर कार को आश्रम तक पहुँचाया और जग्गी ने आश्रम तक की बाक़ी दूरी पैदल चलकर तय की।

*यह पहला मौक़ा था जब मुझे एहसास हुआ कि मैं एक ऐसे कार्यक्रम का हिस्सा हूँ, जिसका मौक़ा हज़ारों जन्मों में एक बार मिलता है। अचानक मुझे यह भी एहसास हुआ कि मैं एक बहुत ही शक्तिशाली गुरु की मौजूदगी में हूँ।*

ऐसी अजीबोग़रीब घटनाओं के बीच, कार्यक्रम के पहले दिन 13 जुलाई को सभी पचास साधक मौजूद थे। बरसात ने भी कार्यक्रम में सिर्फ़ अपनी हाज़िरी ही दर्ज नहीं कराई, बल्कि कार्यक्रम के अंत तक बरकरार रही। बारिश का शोर भी उस रहस्यमय नाटक का हिस्सा बन गया, जिसका परदा साधकों के जीवन में उठने वाला था।

साधकों का दिन हर सुबह पाँच बजे शुरू होता था और उनको प्राणायाम, क्रियाओं और आसनों की एक कठिन व गहन प्रक्रिया से गुज़रना होता था। दोपहर बाद दो घंटे के विश्राम के बाद शाम को चार बजे फिर से वही प्रक्रिया शुरू हो जाती। उनका ध्यान आधी रात तक चलता। इसका

मतलब था, चौदह-पंद्रह घंटे रोज़ का अभ्यास और साधना। जग्गी ने स्पष्ट कर दिया कि ये अभ्यास ऐसे हैं, जो गुरु की मौजूदगी में और नियंत्रित वातावरण में ही किए जा सकते हैं। उन्हें बताया गया कि कार्यक्रम का मक़सद सभी सातों चक्रों को सक्रिय करना और उन्हें इतना सक्षम बनाना था कि वे जागरूकता के उच्च स्तर पर जीवन को अनुभव कर सकें। कुछ अभ्यासों के दौरान उनको शरीर के अलग-अलग अंगों में पाँचों तत्वों के खेल का आभास भी हुआ। कुछ दूसरी क्रियाओं से उनको शरीर के दाएँ और बाएँ भाग में ऊर्जा की गुणवत्ता के सूक्ष्म अंतर का एहसास हुआ। उन्हें सुषुम्ना-नाड़ी की मौजूदगी का भी प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

भारती कहती हैं, 'उनका कहना था कि वे हमारे भीतर आग प्रज्ज्वलित करना चाहते हैं। उन्होंने यही किया। ध्यान के लिए बनी उस फूस की कुटिया में जो भी हुआ, वह अद्भुत था। मुझे नहीं लगता कि फिर कभी ऐसा किया जा सकता है। वहाँ हम सभी अपने उस चहेते इंसान के सान्निध्य में रहने के अलावा और कुछ नहीं चाहते थे - एक ऐसा इंसान जिसमें हमेशा एक आग दिखती थी। उन दिनों वे कुछ अलग ही लगते थे। उनका एक मिशन था। हम यह महसूस कर सकते थे, भले ही हमें मालूम नहीं था कि वह था क्या। वे एक आग का गोला थे जो एक विचित्र ऊर्जा और उत्साह से दहक रहे थे। उनके साथ होना ही हम सबको पागल बना देने के लिए काफ़ी था।'

राजा को याद आता है कि वह बहुत मुश्किल ज़िंदगी थी। लेकिन पक्के इरादे के जोश ने सबको बाँधे रखा था। सभी का ध्यान जग्गी पर था और इससे वहाँ की असुविधाएँ भी सबको उस महान अभियान का हिस्सा-सी लगने लगीं।

उस कार्यक्रम में स्वयंसेवी के रूप में आए किरण का कहना है, 'यह बिलकुल पागलपन-सा लगता है। पर मेरे जैसा बाहरी आदमी भी ध्यान-कक्ष के अंदर और बाहर का फ़र्क़ बता सकता था। हर बार जब मैं ध्यान-कुटिया में प्रवेश करता तो वहाँ की ऊर्जा मुझ पर प्रहार करती, मेरी आँखें बंद हो जातीं और मैं पूरी तरह नशे में मदहोश हो जाता। ज्यों ही मैं वहाँ से बाहर जाता, मैं ठीक हो जाता। ध्यान-कुटिया के अंदर और बाहर के फ़र्क़ पर विश्वास नहीं होता था।'

एक प्रतिभागी श्रीनिवास पर कार्यक्रम की रिकॉर्डिंग की ज़िम्मेदारी भी थी। वह भी इससे सहमत होते हुए बताते हैं, 'ज़्यादातर समय मैं महसूस करता था कि मैंने पी रखी है। मैं पक्के तौर पर यह नहीं जानता कि जग्गी जो कह रहे होते थे, उसे मैंने सुना भी या नहीं। मैं तो केवल वहाँ की ऊर्जा को अपने भीतर आत्मसात कर रहा था और वह जगह ऊर्जा से सराबोर थी। ऐसे भी क्षण आए जब हमने महसूस किया कि हम वास्तव में उनकी मौजूदगी के बल पर जी रहे थे।' भारती इस बात की पुष्टि करती हैं, 'वह ऊर्जा बहुत ही गहन, लगभग ठोस थी। वह इतनी प्रचंड थी कि कभी-कभी मुझे इससे बाहर आने की ज़रूरत पड़ती थी। यह किसी को एक क्षण के लिए भी शांति या चैन से बैठने नहीं देती थी।'

जग्गी ने एक शाम यह बताया कि उन्होंने इस कार्यक्रम की पहले से कोई भी रूपरेखा तैयार नहीं की थी, और सारी की सारी कार्यवाही उनके भीतर से अपने-आप ही चल रही है। उन्होंने बताया, 'यहाँ कई गुरु मौजूद हैं, जो यह देखकर बहुत प्रसन्न हैं कि इतने सारे लोग आध्यात्मिक विकास के लिए आगे आ रहे हैं। वे सब आप लोगों पर अपना प्रेम और ज्ञान लुटा रहे हैं।'

वाक़ई सब कुछ बड़े लयबद्ध तरीक़े से चल रहा था। यह कोर्स सोच-समझकर और योजनाबद्ध तरीक़े से बनाया हुआ लगता था, बावजूद इसके कि जग्गी इसे सहज रूप से अपने आप होने वाला बताते थे। हालाँकि साधकों के इरादे बुलंदियों पर थे, फिर भी यह आसान नहीं था। लगातार एक-सा भोजन करते-करते सभी ऊब चुके थे। एक दिन एक साधिका सुमन, रोज़ की तरह रसम के कप और चुकंदर के नीरस टुकड़ों को देखकर अपने आँसुओं को न रोक सकी। जग्गी ने उसकी परेशानी की वजह जानने के बाद अगले दिन साधकों के लिए वेजीटेबल बिरयानी का इंतज़ाम कराया। बिरयानी पहले कभी इससे ज़्यादा स्वादिष्ट नहीं लगी थी। सुमन (अब माँ गंभीरी) बताती हैं कि उस दिन पार्टी जैसा महसूस हुआ, 'दूसरे साधकों ने मुझसे अक्सर रोने के लिए कहा।'

बारिश हालात को और बदतर बना रही थी। फ़र्श फ़िसलन वाला था और जगह-जगह काई लगी थी। कीड़े-मकोड़े और साँप दिखते रहते थे। बाहर फैलाए धुले कपड़े सूखने का नाम नहीं लेते थे। साँय-साँय करती हुई

तेज़ हवाएँ जब अनवरत हाल में से होकर गुज़रतीं, तो डर लगता था कि घासफूस का छप्पर कहीं उड़ न जाए। किरण को याद है कि जग्गी सारी रात मंच पर बैठे रहते थे और अपनी सीट पर पीछे टिककर कुछ झपकियाँ ले लेते थे। लेकिन हर आधे घंटे में उठकर बाहर आते और उन तारों को हथौड़े से ठोककर ठीक करते, जिनके सहारे छप्पर बंधा हुआ था। 'किसी भी रात में वे डेढ़ घंटे से ज़्यादा नहीं सोए होंगे।'

सद्गुरु उस दृश्य को मज़े लेकर याद करते हैं, 'हमने उतना ज़बर्दस्त तूफ़ान अपने जीवन में कभी नहीं देखा था। तीसरे या चौथे दिन छप्पर की पूरी कुटिया (हम उसे कैवल्य कुटीर कहते थे), धीरे-धीरे एक तरफ़ झुकने लगी। रात का वक़्त था। हवाएँ और तेज़ हो गईं थीं, जो एक सौ बीस किलोमीटर प्रतिघंटे की रफ़्तार से चल रही थीं। मैं पास ही बनवाए गए एक छोटे से कमरे में था। लेकिन जब मुझे सनसनाती हुई हवा का शोर सुनाई पड़ा, तो दो बजे रात को बाहर देखने निकला कि सब लोग ठीक हैं या नहीं। मैंने देखा कि कुटिया को कसने वाले तार धीरे-धीरे खुलने लगे थे। कुछ ही मिनटों में पूरा छप्पर उड़ गया होता। मैंने लगभग पंद्रह लोगों को जगाया और हमने छप्पर को ठीक किया। बाक़ी सब आराम से सोते रहे। उन्हें पता भी नहीं चला कि क्या हो रहा है। इसका मतलब था कि दिन में हमने उनसे वाक़ई कड़ी मेहनत कराई थी।'

सिर्फ़ छत गिर जाने का डर ही नहीं था, वहाँ कुछ और भी हो रहा था। 'लोग उसी जगह पर ध्यान कर रहे थे और वहीं सो भी रहे थे। सात दिनों के बाद हमें पता चला कि उनके बिस्तरों का अधिकांश हिस्सा नीचे से दीमक चाट गई थी। जब हम बैठे होते थे तो दीमक अपने काम में लगी होती थीं। अब सवाल था कि क्या किया जाए?' सद्गुरु हँसते हुए कहते हैं, 'हमने जंगल की तरफ़ जाने का फ़ैसला किया।'

हॉल को दुरुस्त करने वाली एक टीम आकर अपने काम में लग गई और जग्गी अपने ग्रुप के साथ चार दिनों के लिए वेलियंगिरी हिल के लिए चल पड़े। साधकों के लिए यह मस्ती का लेकिन चुनौती भरा अनुभव था। शाम होने पर एक सुंदर झरने के बग़ल में उन्होंने अपना शिविर लगाया। वहाँ की चट्टानें गीली और फ़िसलन भरी थीं, जिस वजह से उन्हें सारी रात सावधान रहना था। वहाँ सभी अड़तालीस लोगों के बैठने की जगह भी नहीं

'मैं वापस आऊँगा।' किसी अन्य काल में अपने एकमात्र उद्देश्य के साथ सद्गुरु श्री ब्रह्मा।

अपने भाई बहनों के साथ बीच में बैठे जग्गी।

90 दिन के ऐतिहासिक 'होलनेस प्रोग्राम' में सद्‌गुरु ने
अपने भीतर के गुरु को प्रकट किया।
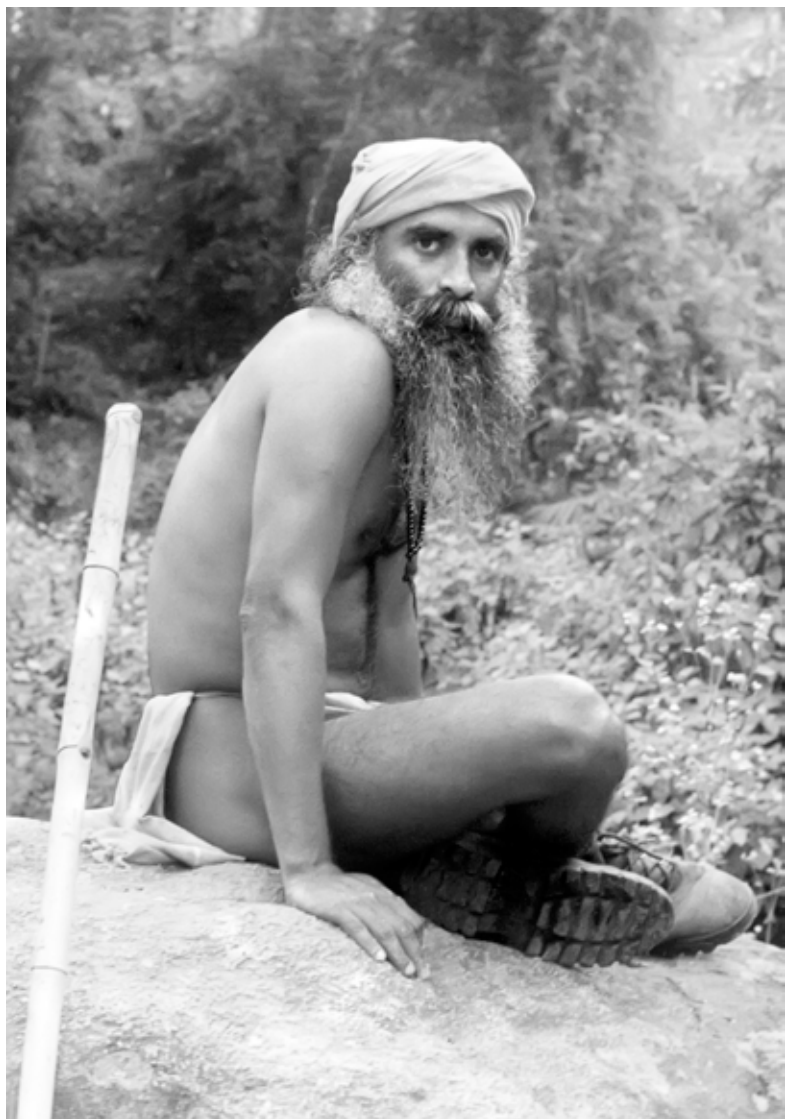
‘हमने अचानक उन्हें उनके असली रूप में देखा... कोई व्यक्ति नहीं, बस एक शाश्वत मौजूदगी।’
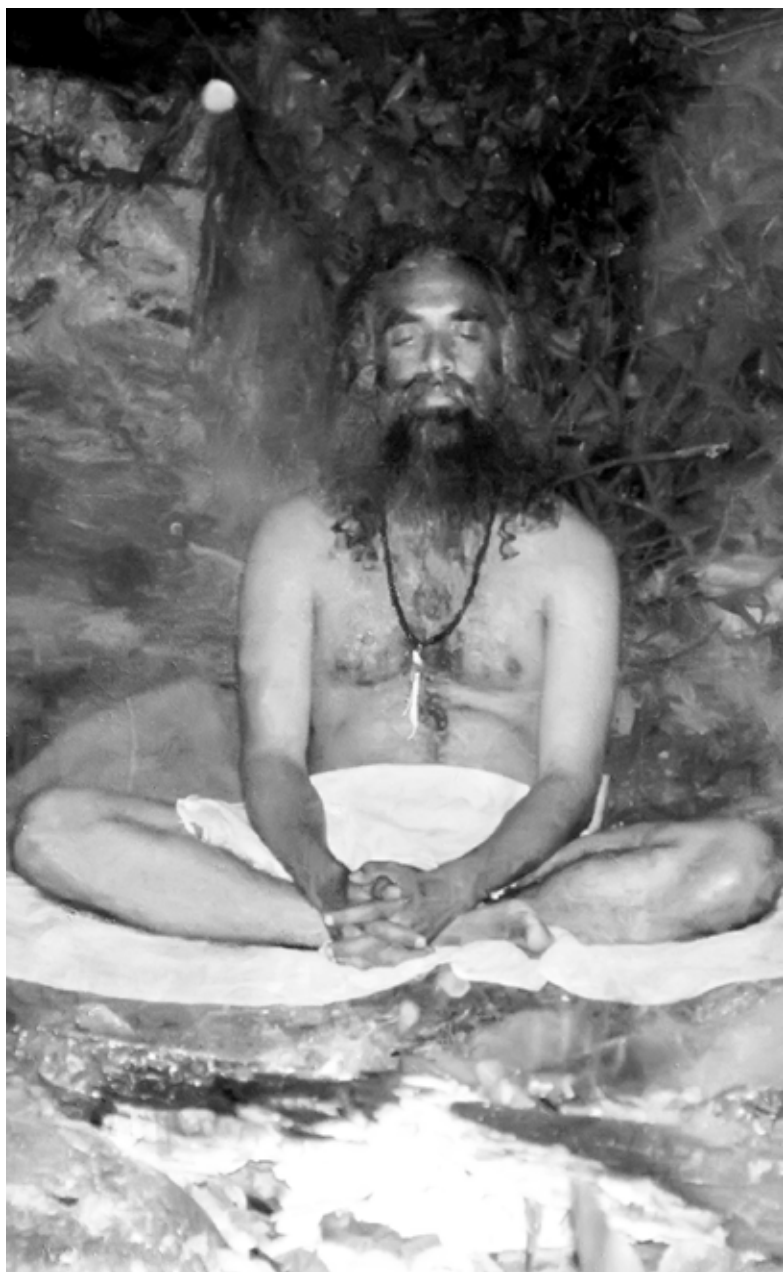
उस पहाड़ी गुफा में, जहाँ सद्गुरु श्री ब्रह्मा आया करते थे।

विजी और भारती – वे दो लोग, जिन्होंने ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा में एक बनकर काम किया।

प्राण-प्रतिष्ठा : पत्थर के एक टुकड़े को चैतन्य में रूपांतरित करने की कला।

‘उसका नाम विजया कुमारी था, जिसका अर्थ होता है “विजय की पुत्री।”
जो सबसे बड़ी जीत किसी को मिल सकती है वह उसे मिली।’

जन्म जन्मांतर का स्वप्न साकार हुआ :
24 जून 1999 को घ्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा पूरी हुई।

करुणामय आलिंगन : मौत की सजा पाए एक कैदी के साथ सद्गुरु।

एक दिव्य स्पर्श : 'मैं अपने आसपास के वातावरण को तीव्र ऊर्जा से चार्ज कर सकता हूँ, यही एक ऐसा काम है जिसे मैं बहुत अच्छी तरह से कर सकता हूं।'

ग्रामीण कायाकल्प : ईशा योग केंद्र के नजदीक एक गांव - दानीकंडी के आदिवासियों के साथ सद्गुरु।

पहाड़ों की चोटियों पर हमने गुजारे हैं कई युग, अब वक्त आ गया जीवन की घाटियों में विचरने का...' गोल्फ खेलते सद्गुरु।

कांति सरोवर के समीप चिंतन करते हुए अनुभवी पदयात्री। यहां दुनिया का पहला योग कार्यक्रम हुआ था (जिसे संभवतः आदियोगी शिव ने संचालित किया था)।

‘एक दिन यह बालक इंसानों को चराएगा’ यह भविष्यवाणी एक ज्योतिषी ने उनके जन्म के समय की थी। महासत्संग में सद्गुरु।

पहियों पर भ्रमण : 'फ़ास्ट-फ़ॉरवर्ड गुरु।'

बग्सी और लीला के साथ सद्‌गुरु।

एक जोखिम भरी यात्रा

लिंग भैरवी देवी की प्रतिष्ठा की योजना बनाते सद्‌गुरु।

सांपों के साथ बहुत पुराना रिश्ता रहा है।
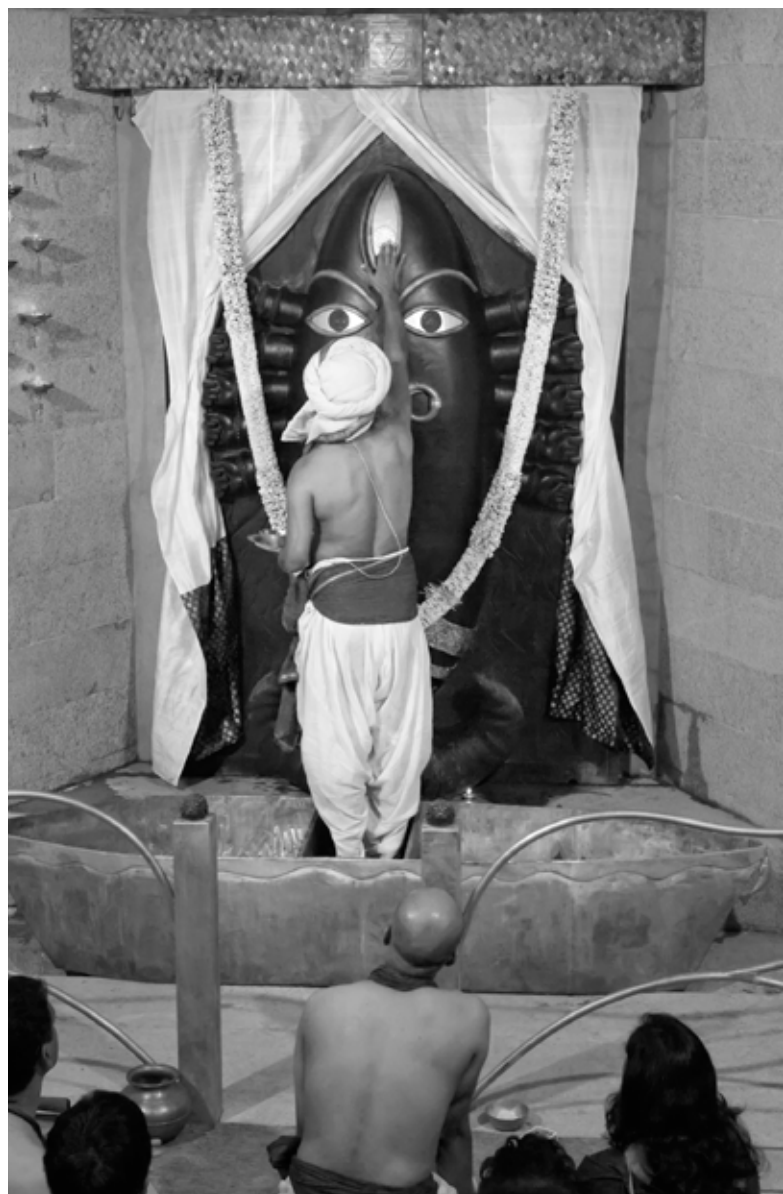
देवी का जन्म : 30 जनवरी 2010 को लिंग भैरवी देवी की प्रतिष्ठा पूरी हुई।

थी। इसलिए कुछ लोगों ने खड़े रहकर रात गुजारी। एक ने तो एक गुफा ढूँढ़ ली और वहाँ थोड़े आराम से रात गुज़ारी। लेकिन दूसरे दिन मालूम हुआ कि वह शायद साँपों का बिल था। बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी और बहुत से लोग बुरी तरह से भीग गए थे। इतनी परेशानी के बावजूद किसी को डर नहीं लगा। बहुत अजीब बात थी कि जग्गी की मौजूदगी में डर का सवाल ही नहीं था।

*जग्गी ने बताया कि वह जगह कई 'देहमुक्त जीवों' से भरी पड़ी थी, जो उनके अभ्यास की सामूहिक तीव्रता से खिंचकर वहाँ आ गए थे। उन्होंने बताया, वे हर जगह मेरे पीछे आते हैं। रात को वे सभी मेरे बिस्तर के आसपास रहते हैं।*

सद्‌गुरु कहते हैं, 'विश्वास करना तो मुश्किल है, लेकिन किसी भी तरह की अड़चन नहीं आई। हर कोई रोज़ सुबह साढ़े पाँच बजे साधना में लग जाता था। एक मिनट के लिए भी कक्षा में कोई रुकावट नहीं होती थी। साधना का वही सिलसिला पहाड़ पर भी जारी रहा। मेरी बेटी के कपड़े हर वक़्त गीले हो जाते थे, इसलिए उसे कपड़े पहनाने का कोई मतलब नहीं था। हमने उसे ऐसे ही छोड़ दिया। कोई भी बीमार नहीं पड़ा। छप्पर तैयार हो जाने पर हम लौट आए और साधना करने लगे। जिन लोगों ने नब्बे दिनों के इस कार्यक्रम में भाग लिया, वे भारत में ईशा फ़ाउंडेशन के असली स्तंभ बन गए। उन्हें जीवन को बिलकुल अलग तरीक़े से देखने का मौक़ा मिला और उन नब्बे दिनों ने उन्हें हमेशा के लिए बदल कर रख दिया।'

लगभग उसी समय विजी भी बेंगलुरु से आ गईं। यह उनके लिए एक कठिन समय था। अचानक उनके पति सामूहिक श्रद्धा की चीज़ बन गए थे। अपने वैवाहिक रिश्ते में हुई इस घुसपैठ का सामना करना एक चुनौती थी। कुछ लोग उन्हें अपने पति पर बहुत ज़्यादा हक़ जताने वाली मानते थे। भारती उन लोगों में से थी, जो यह नहीं समझ पा रहे थे कि विजी इस कार्यक्रम में शामिल होने की इच्छुक क्यों नहीं थीं। 'यह पहेली मुझे समझ नहीं आई कि वे दूर क्यों रहना चाहेंगी? सद्‌गुरु की शख़्सियत और जो

काम वे कर रहे थे, उसकी विशालता और महानता क्या उन्हें नज़र नहीं आ रही थी?'

विजी की सारी भावनात्मक उथल-पुथल के दौरान भी उनके प्रति जग्गी का रवैया हमेशा नम्र रहता था। उनकी चार साल की बेटी ने अभी स्कूल जाना शुरू नहीं किया था। स्वयंसेवी उसकी देखरेख करते थे और वह अपना वक़्त आश्रम के आसपास दौड़ते-भागते, साधना में ब्रेक के दौरान साधकों के साथ खेलते हुए, या ध्यानकक्ष में जग्गी के बारह घंटों के सत्र में उनके बग़ल में बैठकर बिताती थी। एक साधक को याद है कि कैसे वह अक्सर मंच पर ही सो जाया करती थी और आधी रात के बाद जग्गी उसे उठाकर कमरे में ले जाते थे।

जहाँ एक तरफ़ जग्गी एक अच्छे पिता थे, वहीं दूसरी तरफ़ वे अपनी बेटी के लिए बेवजह परेशान नहीं होते थे। एक बार उनकी बेटी को तेज़ खाँसी हो गई। एक साधक को याद आता है कि वह उसकी तबीयत को लेकर चिंतित था। लेकिन जग्गी बिलकुल परेशान नज़र नहीं आए। दूसरे दिन सुबह उसने देखा कि खाँसी बिलकुल ठीक हो गई थी। चूँकि पिछली रात को खाँसी बहुत तेज़ थी, इसलिए उसका अचानक ग़ायब हो जाना उसकी समझ के बाहर था। उस वक़्त तो साधक को बड़ा आश्चर्य हुआ, लेकिन अगले कुछ दिनों में होने वाली इससे भी ज़्यादा रहस्यमय घटनाओं के मुक़ाबले उसे यह मामूली बात लगी।

ज़्यादातर लोगों के लिए सबसे ज़्यादा परेशान करने वाली चीज़ थी - ख़ुद जग्गी में आया बदलाव। ज्यों-ज्यों कार्यक्रम आगे बढ़ा, साधकों ने महसूस किया कि जिस जग्गी को वे एक स्नेही मित्र और मार्गदर्शक की तरह जानते थे, अब इस जग्गी में उससे कोई समानता नहीं बची थी। उनके सामने अब एक नया इंसान था, और उन्हें ख़ुद यह समझ नहीं आ रहा था कि वे जग्गी में इस बदलाव को पसंद करते थे या नहीं। अब न तो उनके चेहरे पर मुस्कराहट आती थी, और न ही वे दोस्तों की तरह उनसे हालचाल पूछते थे। उनका रवैया गंभीर हो गया था, वे अपने मक़सद को लेकर पूरी तरह केंद्रित हो गए थे और उनका यह रूप डराने वाला था। उनकी बातें दो-टूक होती थीं और सिर्फ़ उनकी मौजूदगी ही लोगों को परेशान कर देती थी। कुछ दिन पहले तक जो लोग उन्हें घेरे रहते थे, अब उनसे कटे-कटे

रहने लगे। एकाएक वे अजनबी हो गए थे। ईशा में प्रचलित एक मुहावरे के अनुसार, इस वक़्त जग्गी 'अपने भीतर के गुरु को बाहर निकाल लाए' थे। किरण कहते हैं, 'अचानक हमने उन्हें बिलकुल वैसा देखा, जैसे वे वाक़ई थे। हमें एहसास हुआ कि यह उनका मूल रूप था, जिससे सारी सामाजिक शालीनता अलग कर दी गई हो - सहज, तीव्र, तरल। उनके साथ होना बेचैन करने वाला था, मगर उनके बिना सब कुछ बहुत डरावना था। अब वे एक इंसान नहीं रह गए थे, वे बस एक शाश्वत मौजूदगी थे। उस ध्यान-हाल में कुछ ऐसे दृश्य देखने को मिले, जिनकी कल्पना कोई इंसान नहीं कर सकता।'

वह 1994 का साल था, जब नेल्सन मंडेला राष्ट्रपति चुने गए थे, रवांडा हत्याकांड इसी साल हुआ था, इसी साल अमेरिका ने अपनी सेना 'खाड़ी देशों' में भेजी थी, और इसी साल कुख्यात ओ जे सिंपसन कांड हुआ था। इन अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं को याद दिलाने की ज़रूरत इसलिए है, क्योंकि ऐसा लग रहा था कि उस ध्यान-कुटीर में साधकों की गतिविधियाँ एक काल-विहीन दौर में हो रही हैं। ख़ुद साधकों के लिए समय और तारीख़ अपना अर्थ खो चुके थे। जीवन पर एक अनोखा, रहस्यमय रंग चढ़ गया था। उन्हें हमेशा से इस बात का एहसास रहा था कि उनके योग-गुरु से उनका संबंध, दूसरों की कल्पना से कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण और बंधनकारी था। लेकिन अब उन्हें इस बात का पहला संकेत मिलना शुरू हो गया था कि ऐसा क्यों था! गुरु की गूढ़ योजना, उनकी कल्पना से कहीं बड़ी और चौंकाने वाली थी। उनके जीवन बंधनों से मुक्त हो चुके थे, और अब वे अपने ख़ुद के निजी नाटक के नायक नहीं रह गए थे। उन्हें अचानक एहसास हुआ कि वे एक बहुत बड़े नाटक का हिस्सा थे, जिसमें उन्हें अपने लिए तय की गईं भूमिकाएँ अदा करनी थीं। उसकी पटकथा किसी भी तरह से उनकी अपनी नहीं थी, और उन्हें इसका लेखक होने का मुग़ालता पालने की ज़रूरत नहीं थी। इसका लेखक कोई और ही था।

यह एहसास धीरे-धीरे हुआ। दस दिन बाद जग्गी ने साधकों को कुछ दिनों के लिए मौन रखने को कहा और निर्देश दिया कि वे अपने अभ्यास जारी रखें। मौन की अवधि अनिश्चित होने की वजह से साधकों के धैर्य डगमगाने लगे। सुमन को याद है कि वह घबराहट और दिशाहीनता महसूस

कर रही थीं। 'मैंने हमेशा से उनके मनोरम पहलू को ही जाना था। अब उनके इस दूसरे रूप को स्वीकार करने में बड़ी मुश्किल हो रही थी। उनका रवैया बहुत रूखा हो गया था, और सबके सामने आपको आपकी औकात बताने में उन्हें देर न लगती। यह एक बिलकुल अलग शख़्सियत थी। मौन की घोषणा करने के बाद वे अपने कमरे में चले गए। हमसे मिलने के लिए वे बहुत कम आते थे। रोज़ सुबह हमारे जागने से पहले ही उस दिन के लिए निर्देश तख़्ती पर लिख दिए जाते थे। यह शरीर को तोड़कर रख देने वाली दिनचर्या थी। हमें चार घंटे से ज़्यादा की नींद कभी नसीब नहीं हुई। साथ ही यह मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक तौर पर तोड़ने वाला भी था। मैं समझ नहीं पा रही थी कि यह सब क्या चल रहा है। मैं उलझन, गुस्सा और प्रतिरोध महसूस कर रही थी।'

कार्यक्रम के दौरान अक्सर साँप निकल आते। कुछ प्रशिक्षित स्वयंसेवी उन्हें पकड़कर जंगल में छोड़ आते। लेकिन इस समय तक उस ग्रुप को दिशाहीनता महसूस होने लगी थी। जब एक साँप रेंगते हुए ध्यान-हॉल में आता तो सब डर जाते और और उनका ध्यान बँट जाता। राजा ने एक साँप को जग्गी के कमरे के पास से गुज़रते हुए देखा, तो दरवाज़ा खटखटाकर उन्हें सावधान कर दिया। तब तक उन्हें मालूम नहीं था कि उनके गुरु साँप पकड़ने में माहिर हैं।

जग्गी बाहर आए और साँप को पकड़कर जंगल में छोड़ आए। लौटने पर वे गरजने वाले बादल जैसे नज़र आ रहे थे। उन्होंने मौन तोड़ने वालों को हाथ उठाने के लिए कहा। सहमे हुए लगभग आधे साधकों ने अपने हाथ उठा दिए। इन सभी को पूर्व दिशा की ओर मुड़ने का आदेश दिया गया और उन्हें इससे ऊँचे स्तर के अभ्यासों से निकाल दिया गया। गुरु पहले से ज़्यादा कठोर और निर्मम होते जा रहे थे। बेचैनी बढ़ती जा रही थी। जिन लोगों को अभ्यास से निकाला गया था, यह उनके लिए एक गहरी भीतरी खलबली का दौर था। लेकिन जग्गी को उनसे कोई सहानुभूति नहीं थी। 'अगर मैं आप लोगों के बीच से चुनता हूँ, तो आपकी भावना को चोट पहुँचेगी। लेकिन प्रकृति का चुनने का अपना ही तरीक़ा है। जो कुछ चीज़ों के लायक़ नहीं होते, वे ख़ुद-ब-ख़ुद अलग हो जाते हैं।'

*भारती कहती हैं, अब मैं देख पाती हूँ कि वे एक बड़े षड्यंत्रकारी हैं। वे खुद में एक विरोधाभास हैं। एक तरफ़ तो वे अद्भुत आग का गोला हैं, लेकिन दूसरी तरफ़ उनमें ग़ज़ब का धैर्य भी है।*

जो लोग अगले चरण में गए, उन्हें एक शक्तिशाली अभ्यास सिखाया गया, जो तीन घंटे से ज़्यादा चला और उसका समापन एक छोटी-सी क्रिया से हुआ। एक साधक को याद है कि किस तरह इस क्रिया के दौरान उसका दिमाग़ पूरी तरह से शून्य हो गया था - और यह अवस्था पंद्रह मिनट से ज़्यादा देर तक बरकरार रही। 'क्या यह अवस्था वाक़ई इतनी देर तक बनी रह सकती है?' वह इस बात पर हैरान था और यह पहला विचार था जो उसके मन में आया था। इसके बाद से वह अपने दिमाग़ में आने वाले हरेक विचार के प्रति जागरूक हो गया। 'यह पहला मौक़ा था जब मुझे एहसास हुआ कि मैं एक ऐसे कार्यक्रम का हिस्सा हूँ, जिसका मौक़ा हज़ारों जन्मों में एक बार मिलता है। अचानक मुझे यह भी एहसास हुआ कि मैं एक बहुत ही शक्तिशाली गुरु की मौजूदगी में हूँ।' क्योंकि, जैसा कि साधकों को एहसास होना शुरू हो गया था, जग्गी सिर्फ़ एक प्रेरणा देने वाले मार्गदर्शक ही नहीं थे, जिन्हें बस छोटी-मोटी मानसिक शक्तियाँ हासिल हों। यह इंसान एक पहुँचा हुआ योगी था, जिसका अन्तरतम के उतार-चढ़ावों पर अधिकार असीम और चौंकाने वाला था। किरण के अनुसार, 'मन की किसी गहराई में हम यह बात हमेशा से जानते थे। लेकिन अब यह खुलकर सामने आ गई थी और हमें इससे डर लगने लगा था।'

कई और बातें खुलकर सामने आ रही थीं। वे भी डर को कम करने वाली नहीं थीं। जैसे-जैसे ग्रुप में वातावरण ज़्यादा तीव्र और सूक्ष्म होता गया, सपने ज़्यादा स्पष्ट और भयंकर होते गए। एक साधक ने पाया कि उसके सपने हर रात उसी जगह से शुरू होते थे, जहाँ वे पिछली रात को ख़त्म हुए थे। जग्गी ने साधकों को सपनों पर क़रीब से नज़र रखने की सलाह दी। उन्होंने समझाया कि उनके अचेतन मन के नकारात्मक पहलू - उनके कर्म - इस तीव्र साधना से हटते जा रहे थे, और ये हाल में धुंध की तरह अब भी छाए हुए थे। यही बुरे सपनों के ज़िम्मेदार थे। उन्होंने भरोसा दिलाया

कि नियमित अभ्यास से ये पूरी तरह विसर्जित हो जाएँगे।

लेकिन इन बुरे सपनों से भी ज़्यादा बेचैन करने वाली कोई और चीज़ भी वहाँ हो रही थी। एक-दो साधकों को अब अपने ग्रुप में एक और साथी दिखने लगा था। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, वह मोटा कंबल ओढ़े हुए हर रात हाल में घूमता था। लेकिन वह उतने ही रहस्यमय तरीक़े से ग़ायब भी हो जाता, जैसे वह प्रकट होता था। उन्हीं दिनों एक स्वयंसेवी ने पाया कि जग्गी का बिस्तर, जो ट्रैंगुलर ब्लॉक में बने कमरे के एक कोने में होता था, अब कमरे के बीच में खिसक आया था। उसने बिस्तर फिर से कोने में कर दिया, लेकिन अगले दिन फिर यह बीच में आ गया।

जग्गी ने बताया कि वह जगह कई 'देहमुक्त जीवों' से भरी पड़ी थी, जो उनके अभ्यास की सामूहिक तीव्रता से खिंचकर वहाँ आ गए थे। उन्होंने बताया, 'वे हर जगह मेरे पीछे आते हैं। रात को वे सभी मेरे बिस्तर के आसपास रहते हैं। कभी-कभी कमरा ठसाठस भर जाता है, और मैं खटिया उनके लिए छोड़कर फ़र्श पर सो जाता हूँ। कभी-कभी उन्हें ज़्यादा जगह देने के लिए मैं खटिया बीच में ले आता हूँ। वे बहुत ही संवेदनशील हैं। अगर कोई गलियारे में तेज़ आहट करता हुआ चलता है, तो वे ग़ायब हो जाते हैं।'

लेकिन आध्यात्मिक साधना से पवित्र हो चुकी जगह पर भूत-प्रेत क्यों घूमते रहते थे? गुरु ने बताया कि ये नक्षत्रीय प्राणी हैं जिनके कुछ कर्म कटने बाक़ी रह गए थे। तो वे सहज ही एक आत्मज्ञानी की मौजूदगी से आकर्षित होते हैं, क्योंकि उसमें उन्हें मुक्ति की संभावना दिखती है। 'वे अपने कर्म विसर्जित करना चाहते हैं, ताकि उन्हें दोबारा जन्म न लेना पड़े। इसलिए वे मेरी मौजूदगी की तरफ़ आकर्षित हुए हैं, जिसका कुछ ख़ास महत्त्व है।'

इसे समझाने से ज़्यादा तसल्ली नहीं मिली। अचानक ऐसा लगा कि ये देहमुक्त प्राणी हर जगह मंडरा रहे हैं। एक दिन सबसे पहले जागने वाली सुमन सुबह पाँच बजे बाथरूम जा रही थी, जब अचानक उसने एक आकृति को देखा जिसे उसने मजदूर समझा। उसी पल वह आकृति घूमी और उसकी तरफ़ आने लगी। तभी उसे लगा कि यह न तो स्वयंसेवी है और न ही कोई मजदूर, बल्कि वही कंबलधारी है, जिसके बारे में काफ़ी बातें हो चुकी थीं। वह वहाँ से भागी और एक दूसरे साधक से टकरा गई। ख़ुद के चीख़

पड़ने से शर्मिंदा हो उसने सहज दिखने की कोशिश की। लेकिन ज्यों ही वह पीछे मुड़ी, उसने फिर वही आकृति अपनी ओर बढ़ते हुए देखी। उस साथी साधक का हाथ पकड़ते हुए उसने घबराकर फुसफुसाते हुए कहा, 'कंबलवाला आदमी।' लेकिन उस साधक को कुछ भी नज़र नहीं आया।

बाद में कार्यक्रम के दौरान एक दाढ़ी वाली औरत वहाँ चक्कर लगाने लगी। सुमन की बहन ने, जो एक साधक थी, उसे सबसे पहले देखा और जग्गी से इस बारे में उल्लेख किया। उन्होंने इस बात की हामी भरते हुए कहा, 'वह उस ज़माने की औरत है, जब औरतों को आध्यात्मिक साधना के लिए बढ़ावा नहीं दिया जाता था। लेकिन उसकी आत्मज्ञान पाने की लालसा बहुत गहरी थी। असल में वह अपनी तीव्र इच्छा के बल पर ही आत्मज्ञान हासिल कर सकती थी, लेकिन कहीं न कहीं उसके भीतर यह विचार था कि इस राह पर चलने के लिए उसे पुरुष होना पड़ेगा। यही वजह है कि उसकी दाढ़ी उग आई। अगर वह देख सकती कि इस कार्यक्रम में इतनी महिलाएँ हैं, तो शायद वह कुछ अलग महसूस करती। लेकिन वह देख नहीं सकती है।'

ध्यान सत्र के दौरान लोगों को लगातार कुछ स्पष्ट दृश्य नज़र आते। जैसे सुमन को एक जंगल में ऊँचे क़द का, एक साँवला तरकशधारी युवक नज़र आया। उसकी मौजूदगी में कुछ ऐसा था जिससे सुमन को लगा कि प्रकृति से उस युवक का गहरा नाता रहा होगा, और वह जंगल के वातावरण में रहने वाला होगा।

एक दूसरे साधक ने ख़ुद को एक शिवमंदिर के पुजारी के रूप में देखा। वह पुजारी एक आध्यात्मिक गुरु की सेवा में लगा हुआ था। ऐसे ही एक और साधक ने ख़ुद को पाँच लोगों के एक छोटे ग्रुप का हिस्सा बना देखा। वे एक इंसान के चारों ओर खड़े थे, जिसे वह अपने गुरु के रूप में पहचान गया। लेकिन यह जग्गी अलग तरह के दिखते थे। वे ज़्यादा लंबे थे और उनके हाथ में सोंटा था। उनमें असाधारण तेज था और उनका रूप-रंग भयभीत करने वाला था। उसने देखा कि एक उग्र भीड़ ने उनके ग्रुप पर हमला कर दिया। कुछ शिष्य घायल हो गए और ग्रुप तितर-बितर हो गया। वह साधक भागकर कहीं छिप गया। दूसरे दृश्य में उसने देखा कि वह बड़ी बेचैनी से अपने गुरु को खोज रहा है। आख़िर में उसने उन्हें जंगल में खोज निकाला। वहाँ भी वह अपने शिष्यों के एक छोटे ग्रुप से घिरे हुए थे।

उसने अपने गुरु को कई बार उलाहना दिया, 'आप हमें छोड़ कैसे सकते हैं? आपने हमें त्याग दिया है।'

उसी शाम जग्गी ने उस आदमी के बारे में बताया जो तीन सौ साठ साल पहले छत्तीसगढ़ में रहता था। वह शिव का परम भक्त था। वह गाँव-गाँव घूमने वाले सँपेरों के क़बीले का था और कभी-कभी लोगों से अपना सहज अंतर्बोध बाँटता था। उसे एक ब्राह्मण लड़की से प्रेम हो गया और तभी से उसके जीवन में काले बादल मँडराने लगे। लड़की के रिश्तेदारों ने उसका पीछा करके उसे घेरकर पकड़ लिया और उसका ही एक साँप उस पर छोड़ दिया। 'आज भी साँप के काटने का निशान उसके शरीर पर है,' कहते हुए जग्गी ने सभी साधकों को अपने कंधे पर साँप के काटने का साफ़ निशान दिखाया। क्षण भर के लिए वहाँ चुप्पी छा गई। उसके बाद भारती समेत कई साधकों ने बारी-बारी से बिल्वा सँपेरे के बारे में ख़ुद को दिखाई पड़े दृश्यों को बताया।

जग्गी फिर एक और जन्म के बारे में बताने लगे। उन्होंने एक साधु और क्रोधी स्वभाव के प्रचंड योगी, सद्गुरु श्री ब्रह्मा की बात की। उन्होंने बताया कि किस तरह योगी ने अपने जीवन के असंभव से दिखने वाले मिशन के लिए समर्थन जुटाने की भरसक कोशिश की थी। हालाँकि उनके पास इसे साकार करने के लिए ज़रूरी तकनीकी ज्ञान था, लेकिन सामाजिक विरोध की वजह से उनका लक्ष्य पूरा न हो सका। सामाजिक तौर-तरीक़ों में माहिर न होने की वजह से वह इसके ख़िलाफ़ बढ़ते हुए विरोध को शांत न कर सके। फिर उन्होंने बताया कि किस तरह सद्गुरु श्री ब्रह्मा का एक पुरुष शिष्य उनके साथ कोयम्बतूर से कुडप्पा के मंदिर तक गया। उन्होंने कहा कि इस वक़्त भी वह शिष्य उन सब के बीच मौजूद था। यह भारती थी।

चुपचाप सब कुछ सुन रही भारती इस रहस्य के उजागर होने से ज़रा भी नहीं चौंकी। अपने दूसरे सम्यमा के दौरान वह पहले ही यह दृश्य देख चुकी थी जब उसने एक पुरुष-साधु के रूप में अपने गुरु के साथ लंबी और कठिन यात्रा की थी।

जग्गी ने बताया कि अपना शरीर छोड़ने से पहले सद्गुरु श्री ब्रह्मा ने अपनी ऊर्जा का एक ख़ास आयाम अपने शिष्य की 'इड़ा' (बाएँ नासिका छिद्र में स्थित चंद्र नाड़ी) पर स्थापित कर दिया था। इस वजह से भारती

का जन्म दो 'पिंगला' के साथ हुआ। इससे यह पक्का हो गया कि उसका जीवन भावनात्मक बंधनों में उलझने से बचा रहेगा। इससे उसको आध्यात्मिक जीवन अपनाने में कम से कम रुकावटें आएँगी। इसके बाद उन्होंने भारती के अतीत की कई घटनाएँ सुनाईं और कुछ ख़ास ध्यान प्रक्रियाओं के दौरान उसके शरीर में हुए अनुभवों को बिलकुल ठीक-ठीक बताया।

अंत में जग्गी ने 'ध्यानलिंग' के बारे में बताया। इससे पहले भी वे कुछ शिष्यों से इस शब्द का जिक्र कर चुके थे। उनमें से कुछ ने इस बारे में कुछ विद्वानों से पूछताछ की थी, लेकिन वे सभी इससे अनजान थे। इन पंडितों ने आत्मलिंग के बारे में सुन रखा था, लेकिन ध्यानलिंग के बारे में कोई नहीं जानता था। इंदिरा को याद है, किस तरह वह और कुछ साथी साधक त्रिची के एक मंदिर में वहाँ के वृद्ध पुजारी से मिलने गए थे, जिसे भविष्यवाणियों के लिए जाना जाता था। जब उन्होंने उससे ध्यानलिंग शब्द का जिक्र किया तो उस वृद्ध ने कुछ देर सोचने के बाद बताया कि उसने यह शब्द किसी वेद में पढ़ा था। इंदिरा बताती है, 'पुजारी ने कहा कि उसकी स्थापना कोई गृहस्थ-योगी ही कर सकता है।'

होलनेस कार्यक्रम के दौरान जग्गी ने इस महान योजना की विशालता को उजागर किया। उन्होंने बताया कि सिर्फ़ ध्यानलिंग के लिए ही उन्होंने फिर से जन्म लिया है। अब समय कम था और उनका एक ही सपना था - अपने गुरु के मिशन को पूरा करना। यह पहला मौक़ा था जब उन्होंने अपने गुरु का जिक्र किया था। साधक यह मान बैठे थे कि उनके टीचर इतने ज़्यादा स्वच्छंद थे कि वे किसी गुरु के अनुशासन में नहीं रहे होंगे। लेकिन गुरु का मतलब था, एक श्रंखला, एक परंपरा। भारतीय आध्यात्मिक संदर्भ में जिसका मतलब विश्वसनीयता भी है। जैसा कि स्वामी निसर्ग (जिन्होंने कुछ महीने बाद आश्रम में आने पर इस बारे में सुना) लिखते हैं, 'यह एक बीमा पॉलिसी की तरह था। मेरे मन में यह ख़याल आया था कि अपने तमाम निरंकुश तौर-तरीक़ों के बावजूद यह इंसान सचमुच ज़िम्मेदार है।'

जग्गी ने अब अपने शिवयोगी वाले जन्म के बारे में बताया जिनके आत्मज्ञान का रास्ता पलनी स्वामी की कृपा से खुला था। गुरु-शिष्य के इसी मिलन के दौरान आत्मज्ञान के साथ शिवयोगी के लिए एक मिशन भी तय हो गया था। इस मिशन में बार-बार रुकावटें आती रही थीं। यह अभियान

चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, जग्गी इस बार इसे पूरा करने के लिए कमर कसे हुए थे। उन्होंने कहा कि वे न केवल ध्यानलिंग के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध थे, बल्कि एक ऐसा माहौल भी बनाना चाहते थे, जिससे लोग रूपांतरण करने की इसकी असाधारण संभावना से फ़ायदा उठा सकें।

उनकी इस घोषणा की मिली जुली प्रतिक्रियाएँ सामने आईं। सद्‌गुरु को इस बात का एहसास था कि इससे कई लोग हैरान और नाख़ुश थे। वे याद करते हुए कहते हैं, 'ख़ासकर मेरी पत्नी विजी ने इसका कड़ा विरोध किया, "किसी हालत में नहीं! आप यह कैसे कर सकते हैं?" उसे यह समझाने में मुझे लगभग छह से आठ महीने लग गए कि यह किस बारे में है और इसे बनाना क्यों ज़रूरी था। मैं उसे दिलासा न दे सका। वह रो पड़ी थी। उसने कहा, "यह आप किसी हालत में नहीं करेंगे। आपने हमें सिखाया है कि पत्थर और मिट्टी के बने भवनों में भटकने और खोजने के बजाय हमें अपने अंदर झाँकना चाहिए। वह आप ही हैं, जिसने मेरे सारे देवी-देवता छीन लिए। अब जबकि मैं ख़ुश हूँ, आप मेरे जीवन में फिर एक भगवान लाना चाहते हैं। मैं इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं होने वाली।" आगे चलकर हमने इसके लिए ज़्यादा उचित शब्दों का इस्तेमाल किया - "बहु-संप्रदाय मंदिर," "ध्यान-मंदिर"... लेकिन उस वक्त ज्यों ही मैंने "मंदिर" शब्द कहा, तो इसका खुलकर विरोध हुआ। कुछ दूसरे लोग भी थे जिन्होंने कहा, "नहीं, हमें स्कूल बनाना चाहिए, हमें अस्पताल बनाना चाहिए।" मैंने कहा, "नहीं, यह योग वगैरह तो केवल सद्‌भावना बनाने के लिए है। मैं बस, ध्यानलिंग मंदिर ही बनाना चाहता हूँ। मैं बस इसी के लिए यहाँ पर हूँ।"

साधकों के लिए यह एक और डाँवाडोल करने वाला और गहरे भीतरी उथल-पुथल का पल था। इस चीज़ ने एक बार फिर इस बात की ओर इशारा किया कि जिस आदमी के लिए उन्हें लगता था कि वे उसे जानते हैं, वह बिलकुल वैसा नहीं था, जैसा कि वह लगता था। दरअसल, सद्‌गुरु ने उन्हें एक साल पहले ही आगाह कर दिया था कि वे आने वाले समय में बदलाव के लिए तैयार रहें। वे कहते हैं कि जिस दिन हम ईशा फ़ाउंडेशन का पंजीकरण कराना चाहते थे, तब मेरे साथ छह लोग थे। वे सभी बड़े शानदार लोग थे। लेकिन मैंने उनसे कहा, "देखिए, अब आप सब लोग इसमें विधिवत शामिल हो रहे हैं, इसलिए अब आपको यह बताना मेरा फ़र्ज़ बनता है कि यह मेरा असली रूप नहीं है। जब मैं अपना मुखौटा उतारूँगा, क्या

तब भी आप मेरे साथ रहेंगे?” कुछ ने विरोध जताया। एक साधक ने कहा कि वह अस्थमा से मुक्त हो चुका था, दूसरे ने मधुमेह से छुटकारा पा लिया था। तब सद्गुरु में उनकी निष्ठा कभी भी कैसे डगमगा सकती थी? हालाँकि धीरे-धीरे साधकों को यह पता चलने वाली थी कि कई मुखौटों वाले इंसान के साथ रहने की क्या चुनौतियाँ थीं! आने वाले वर्षों में उन्हें बार-बार यह एहसास होना था कि सादे वेश में छिपे एक रहस्यमय गुरु का सामना करना कोई आसान बात नहीं थी। उनकी अधीर और तरल मौजूदगी हैरान करने के साथ-साथ डराती भी थी। उनके अगले क़दम, उनकी अगली भूमिका, उनकी अगली योजना का अनुमान लगाना असंभव था। आज भी उनके अचानक बदल जाने वाले तेवर बहुतों के लिए सवाल खड़ा कर देते हैं : असली सद्गुरु कौन हैं?

भारती को याद है कि उनके अंदर निराशा की एक लहर उमड़ी थी। ‘यह वही इंसान थे, जिन्होंने मंदिर जाने के ख़िलाफ़ दलीलें दी थीं, और अब वही एक मंदिर बनाने की बात कर रहे थे!’ लेकिन यह बात साफ़ थी कि वे इसे लेकर गंभीर थे। यह भी स्पष्ट था कि वे जल्दी में थे। वह कहती है, ‘उन्होंने हमें याद दिलाया कि वे बयालिस साल से ज़्यादा नहीं जिएँगे। समय तेज़ी से बीतता जा रहा था। हमें इसे साकार करना ही था।’

उन्हें ख़ुद कई बार ऐसे अनुभव हुए जिनमें जग्गी अपने ध्यान की विस्फोटक अवस्था में मौत के कगार तक पहुँच गए थे। ‘जब वे ध्यान की गहरी अवस्था में चले जाते थे, तो कभी-कभी उनके पैर ठंडे पड़ जाते थे और ऐसा लगता था मानो वे शरीर छोड़ने वाले हैं। ऐसे मौक़े पर उन्हें होश में लाने के लिए हमें उनके पैरों पर तेज़ी से विभूति रगड़नी पड़ती थी।’ उस समय शरीर के साथ उनका संपर्क इतना नाजुक होता था कि साधक देख सकते थे कि उनके गुरु अपने शरीर में ज़्यादा लंबे समय तक नहीं रह पाएँगे।

भारती कहती हैं, ‘अब मैं देख पाती हूँ कि वे एक बड़े षड्यंत्रकारी हैं। वे ख़ुद में एक विरोधाभास हैं। एक तरफ़ तो वे अद्भुत आग का गोला हैं, लेकिन दूसरी तरफ़ उनमें ग़ज़ब का धैर्य भी है। वे अपना मक़सद बड़े आराम से पूरा करते हैं। जब उन्होंने समझाया कि ध्यानलिंग एक ऊर्जा-रूप को तैयार करने की प्रक्रिया है, जिसमें किसी तरह के पूजा-पाठ या मंत्रों

की ज़रूरत नहीं है, तब धीरे-धीरे हमें यह एहसास होने लगा कि इस पूरे "होलनेस-कार्यक्रम" का मक़सद सिर्फ़ एक आश्रम की स्थापना नहीं था। इसका मक़सद इससे महत्त्वपूर्ण, कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था।'

साधकों को यह भी समझ में आना शुरू हो रहा था कि वे बस संयोग से वहाँ इकट्ठा नहीं हुए थे। बल्कि बेतरतीब लगने वाले इस जमघट के पीछे काफ़ी गहरी चाल थी। उनके सामने जो आदमी था, उस पर शुरू से ही भरोसा हो जाने की एक वजह थी : उनके जीवन का मक़सद उसके ख़ुद के मक़सद से बड़ी जटिलता से गुँथा हुआ था। तीन महीने बाद एक सत्संग में ख़ुद जग्गी ने इसका खुलासा किया, 'वही जगह, वही लोग, वही काम।'

अगस्त में महीने भर से चल रही साधना ख़त्म हुई। अगले दो महीने में उन लोगों के लिए एक तीव्र प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाना था, जो आश्रम के निवासी और टीचर बनना चाहते थे। इसके लिए चौबीस लोग रुके और बाक़ी अपने घर लौट गए।

एक दिन जग्गी वेलियंगिरि हिल पर ट्रेकिंग के लिए गए। जाते समय वे अपनी रोज़ वाली ट्रेक पैंट पहने हुए थे। जब वे लौटे, तो सिर्फ़ सफ़ेद लंगोटी और पगड़ी भर लपेटे हुए थे। जिन लोगों ने उनको लंबे डग भरते हुए अंदर आकर अपनी सीट पर बैठते हुए ध्यान से देखा, वे महसूस कर सकते थे कि वे पूरी तरह से अलग इंसान थे। पिछले महीने के अनुभव ही रोंगटे खड़े कर देने वाले थे। उसके बावजूद इस दृश्य के लिए वे लोग बिलकुल तैयार न थे। इसी समय एक साधक ने उन्हें सहज ही सद्गुरु कहकर संबोधित किया। जग्गी ने इस संबोधन को मंजूरी दे दी। उन्होंने शांति से कहा, 'अब मैं तुम्हारा जग्गी नहीं रहा, मैं सद्गुरु हूँ।' यह पुष्टि गैरज़रूरी थी। उनके व्यवहार में विरक्ति, एक दूरी साफ़ दिख रही थी। उनमें से कुछ लोग एक मित्र को खो देने से अशांत और परेशान हो गए थे, लेकिन उन्हें बाद में एहसास हुआ कि उन्हें उम्मीद से कहीं ज़्यादा मिल गया था। उनके सामने जो आदमी था, वह किसी दिव्यदर्शी या योगी से बढ़कर था। वह एक गुरु था।

राजा को याद है कि किस तरह उसने और विजी ने उनके पास जाकर जिज्ञासा से उनकी पगड़ी को छुआ। 'विजी ने पगड़ी हटाने की कोशिश की।

लेकिन वे बस मुड़े और हमें घूरा। बस, इतना ही काफ़ी था। हम तुरंत पीछे हट गए।'

कार्यक्रम के बाद के हिस्से में सद्‌गुरु सभी साधकों को सातवीं वेलियंगिरि पहाड़ी पर ले गए। उन्होंने बताया कि यही वह जगह है जहाँ सद्‌गुरु श्री ब्रह्मा ने अपना शरीर छोड़ा था और इसी जगह पर उन्होंने वचन दिया था, 'मैं वापस आऊँगा।'

सद्‌गुरु ने कहा, 'उन्होंने अपना वचन निभाया। लेकिन यह उनका अंतिम जन्म होगा। एक बार ध्यानलिंग की स्थापना हो जाए, तो वे कभी वापस नहीं आएँगे। वे फिर इसी सातवीं पहाड़ी पर चढ़कर आख़िरी बार अपना शरीर छोड़ेंगे।'

एक ग्रुप उस घटना की असली जगह को खोजने निकल पड़ा। सद्‌गुरु इस ग्रुप की अगुआई कर रहे थे। वह ग्रुप सातवीं पहाड़ी से ठीक पहले एक झरने के पास जब सुस्ताने के लिए रुका, तो सद्‌गुरु अकेले आगे चले गए। जब वे लौटे तो साफ़ तौर पर किसी ज़बर्दस्त भावना से भरे हुए थे। उन्होंने बस यह कहकर ग्रुप को आगे भेज दिया, 'तुम्हें बिना किसी मुश्किल के वह जगह मिल जाएगी।'

वही हुआ। वह एक खड़ी चट्टान का ख़तरनाक तरीक़े से उभरा हुआ हिस्सा था और वहाँ हवाएँ बहुत तेज़ थीं। लेकिन उस जगह तक पहुँचना मुश्किल नहीं था। यह जगह वैसी ही प्रचंड और विस्फोटक ऊर्जा से स्पंदित थी, जिसे वे लोग अपने गुरु की ऊर्जा के रूप में साफ़ पहचानने लगे थे। श्रीनिवास कहते हैं, 'हम उसी क्षण ध्यान की अवस्था में चले गए।' कुछ लड़खड़ाने लगे, दूसरे रोने लगे। कुछ अपनी आँखें भी नहीं खोल पा रहे थे। श्रीनिवास को याद है कि वह ध्यान की गहन अवस्था में चले गए थे, 'मेरे आसपास जो कुछ हो रहा था, उसका मुझे पता था। मैंने लोगों को "शम्भो" का जाप करते सुना, लेकिन मैं अपना मुँह नहीं खोल पा रहा था। मैं वहाँ लगभग पंद्रह मिनट रहा और मुझे साँस लेने का भी अनुभव नहीं हो रहा था। जब मैं साँस अंदर भरता, तो तुरंत ही एक झटके से बाहर आ जाती। मैंने ख़ुद को अपने शरीर में बहुत ढीला पाया, जैसे कि यह मुझसे अलग हो रहा हो। सद्‌गुरु ने मुझे बताया कि अगर मुझे अकेला छोड़ दिया गया होता, तो मैं अपना शरीर छोड़ चुका होता।'

श्रीनिवास को वह समय भी याद है जब वह एक छोटे से ग्रुप में (जिसमें सद्गुरु और भारती भी थे), उन पहाड़ी गुफाओं में गए थे जहाँ सद्गुरु श्री ब्रह्मा ध्यान किया करते थे। ग्रुप ने वहाँ चार दिन बिताने का फ़ैसला लिया। उन्हें याद है, 'उस स्थान की ऊर्जा इतनी शक्तिशाली थी, कि हवा भी ठोस महसूस होती थी। आप इसे चाकू से काट सकते थे।' उन्होंने वहाँ भोजन किया, तैराकी की और देर रात तक ध्यान किया। सब को ज़बर्दस्त नशा महसूस हो रहा था। वह कहते हैं, 'मैं पूरे समय नशे में था। सद्गुरु पूछते, "पार्टी की जाए क्या?" वे हवा में फूँक मारते और क्षणभर में हम सब एक दूसरे ही आयाम में पहुँच जाते। बाद में वे मुझे हिलाकर कहते कि, "अरे जवान, जाग जाओ।"

तीन सितंबर को सद्गुरु के जन्मदिन पर सबने 'सरप्राइज पार्टी' देने की योजना बनाई। आश्रम को फूलों से सजाया गया। सद्गुरु की ख़ुशी के लिए साधकों ने एक नाटक पेश किया। उसमें साधकों ने अतीत और भविष्य के विभिन्न पात्रों की भूमिकाएँ कीं, जो ईशा को आशीर्वाद दे रहे थे और उसके फलने-फूलने में उदारता से योगदान कर रहे थे। इस नाटक ने उनके दिल को छू लिया। सद्गुरु ने उनमें से हरेक को गले लगाया और उन्हें दीक्षित भी किया। इसके बाद पार्टी शुरू हुई। लेकिन अचानक श्रीनिवास ने महसूस किया कि वह खड़ा नहीं रह सकता था। जब दूसरे लोग नाचने के लिए उसे खींचते, तो वह गिर जाता था। वह कहता है, 'ऐसी हालत मैंने पहले कभी भी महसूस नहीं की थी। यह लगभग डेढ़ घंटे तक बनी रही। बाद में सद्गुरु ने भारती से मेरे "आज्ञा चक्र" को संयत करके मुझे सामान्य स्थिति में वापस लाने के लिए कहा।' इंदिरा इस घटना की गवाह हैं। उन्हें याद है, 'तब सद्गुरु बहुत ख़ुश हुए थे। उनकी आँखों में आँसू थे।'

इस घटना के बारे में सद्गुरु बताते हैं, 'उस कार्यक्रम में चीज़ें घटित होनी शुरू हो गईं थीं। फूल खिलने लगे थे।' लेकिन यह बात साफ़ थी कि इतना ही काफ़ी नहीं था। सद्गुरु ने अक्सर कहा है, 'अगर कुछ लोगों को ही सिद्ध बनाने का मक़सद हो, तो यह मेरे लिए बड़ा आसान है। लेकिन हम चाहते हैं कि यह संभावना बहुत सारे लोगों के लिए उपलब्ध हो।'

उनके शिष्यों ने महसूस करना शुरू कर दिया था कि एक माली के तौर पर सद्गुरु की महत्त्वाकांक्षा साधारण बिलकुल नहीं थी।

6

# वह शम्भो में लीन हो गई

## दुर्गम यात्रा, अंधेरी रात

उन्हें बहुत क़रीब से जानने वालों के लिए यह आसान नहीं था। जग्गी के सद्‌गुरु बन जाने पर ऐसा लगा मानो कोई इंसान रातों-रात एक अमूर्त गूढ़ प्राणी में बदल गया हो। 'होलनेस कार्यक्रम' ने एक मिलनसार मित्र और मार्गदर्शक को व्यक्तित्वहीन और डरावनी शख़्सियत में बदल दिया था। एक पुरानी ब्रह्मचारिणी का कहना है, 'मुझे इससे लंबे अरसे तक परेशानी होती रही। मेरे मामले में *गुरु-शिष्य* संबंध आसान नहीं रहा है। मन में शंकाएँ, विद्रोह की भावना और तमाम सवाल उठते रहे हैं। मैं समझ गई थी कि सामाजिक कारणों से वे ख़ुद को एक ख़ास तरह से पेश करना चाहते थे, ताकि ध्यानलिंग और आश्रम के लिए स्वीकृति का माहौल बन सके। लेकिन हममें से कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें इस छवि परिवर्तन से मुश्किलें हो रहीं थीं - वे "एक अलग क़िस्म" बन चुके थे। उनके पहनावे में बदलाव से लेकर आश्रम में लगातार बढ़ते नियम-क़ायदों तक सब कुछ बदल चुका था।'

वहाँ के एक और निवासी को याद है जब वह पहली बार आश्रम आया था। चीज़ें बड़ी तेज़ी से औपचारिक होती लगीं। हर जगह कंक्रीट के ढाँचे नज़र आने लगे थे। उसके पुराने दोस्त को अचानक 'सद्‌गुरु' के नाम से बुलाया जा रहा था। उनके आसपास मौजूद लोग अचानक सफ़ेद कपड़े पहनने लगे थे। वह शंकाओं से घिर गया। मूर्ति-पूजा का खंडन करने वाले जग्गी को, जो संगठित आध्यात्मिकता की आलोचना करने में सबसे आगे थे, क्या हो गया था? क्या वे अपने उसूल बेच चुके थे?

उस वक़्त, जब इस तरह की शंकाएँ उठ रही थीं, जग्गी ने यह घोषणा करते हुए लोगों को और भी हैरानी में डाल दिया कि वे साधकों को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देंगे। एक साधारण शिष्य बने रहने का विकल्प भी मौजूद था, लेकिन जो *ब्रह्मचर्य* - जीवन अपनाना चाहते थे, उन्हें इसकी दीक्षा दी जानी थी। कुछ लोग इस बात से भौंचक्के रह गए थे, जबकि दूसरे लोगों को यह इतना बेतुका बिलकुल नहीं लगा। किरण कहते हैं, 'यह उनके साथ रहने का एक तरीक़ा लगा, और मैं इससे ज़्यादा कुछ चाहता भी नहीं था। उन्होंने कहा था कि यह बस एक साथ रहने का, एक साधक के रूप में अपनी ऊर्जा को केंद्रित करने का एक तरीक़ा था। यह बात हमें समझ आ रही थी। बस, उनके पास रहने के लिए मैं कुछ भी कर सकता था।'

*ब्रह्मचर्य का अर्थ है कि आप अपनी सहज प्रकृति से ही आनंदमय हैं, आपका आनंद ख़ुद-ब-ख़ुद फूट रहा है, उसके लिए किसी कोशिश की ज़रूरत नहीं है। अगर आनंद का स्रोत आपके भीतर ही है, तो इसे बाहर खोजना सरासर बेवकूफ़ी ही तो होगी।*

जिन्हें इसमें दिलचस्पी थी, उन्हें अपना नाम देने के लिए कहा गया। नौ लोग तैयार हुए। इंदिरा इनमें से एक थी। 'उस समय यह एक बिलकुल नई चीज़ होने के बावजूद इससे डर नहीं लगा। उन्होंने कहा था कि जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, सब लोग मिलकर इसके नियमों को तय करेंगे। उन्होंने इतनी उदारता दिखाई कि उस समय उन्होंने मुझे अपनी कंप्यूटर कंपनी में काम करते रहने की इजाज़त दे दी। एक ब्रह्मचारिणी के रूप में अगले दो साल तक मैं वहाँ नौकरी करती रही। जब करियर की चुनौतियाँ बेमानी लगने लगीं, तो मैं नौकरी छोड़कर पूरी तरह आश्रम से जुड़ गई। दोनों फ़ैसलों में उन्होंने मेरा साथ दिया।'

लेकिन यह सब किसलिए था? एक आधुनिक लगने वाला दिव्यदर्शी क्यों किसी पारंपरिक आध्यात्मिक व्यवस्था की स्थापना करेगा? यह सवाल उस समय भी बहुतों के दिमाग़ में उठा था और आज भी लोग इसे लेकर

अचम्भा करते हैं। शुरुआत में, मैं भी इस बात से हैरान हुई थी। एक ऐसा इंसान जिसमें जीवन के लिए इतना जोश हो, आध्यात्मिकता के प्रति जिसका रुख़ जीवन से भरपूर और उत्सव मनाने जैसा हो, वह दूसरों को संयम, सादगी और त्याग की ज़िंदगी अपनाने के लिए क्यों कहेगा? यह उनके स्वभाव से एकदम विपरीत लगा।

कुछ साल पहले जब मैंने सद्‌गुरु से यह सवाल किया तो वे हँसने लगे। उन्होंने जवाब दिया, 'ऐसा इसलिए है क्योंकि आधुनिकता के बारे में तुम्हारी सोच सीमित है।' उन्होंने बताया, 'ब्रह्मचर्य आज़ादी की सच्ची चाह रखने वालों का आज़माया हुआ रास्ता है। ब्रह्म का अर्थ है "ईश्वर" और चर्य का अर्थ है "रास्ता।" हर इंसान जाने-अनजाने में आनंद खोज रहा है। चूँकि आप आनंद हासिल नहीं कर सके, तो आप सुख के पीछे जाने लगे। सुख आनंद की बस छाया भर है। वह ख़ूबसूरत तो है, पर बहुत सीमित है। अब अगर आप सुख खोजने वाले इंसान हैं, और आपको जिस चीज़ से सुख मिलता है, वह छिन जाए, तो आप टूट जाते हैं। इसका मतलब है कि आपका अस्तित्व बहुत सारे बंधनों में है, है ना? किसी को भी बेड़ियाँ पसंद नहीं हैं। हर किसी में सभी तरह की सीमाओं से आज़ादी पाने की गहरी चाह होती है। आप अपनी सुख की सीमाओं पर सोने की परत चढ़ा सकते हैं, लेकिन उन्हें तोड़ नहीं सकते। बहुत से लोगों ने अपनी बेड़ियों पर सोने की परत चढ़ाकर उन्हें गहनों की तरह पहन रखा है। वे इन बंधनों का जश्न मना रहे हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य - चैतन्य का मार्ग - का अर्थ है कि आप अपनी सहज प्रकृति से ही आनंदमय होते हैं। इसका अर्थ है कि आपका आनंद ख़ुद-ब-ख़ुद फूट रहा है, उसके लिए अब किसी कोशिश की ज़रूरत नहीं है। अगर आनंद का स्रोत आपके भीतर ही है, तो इसे बाहर खोजना सरासर बेवकूफ़ी ही तो होगी।'

वे अक्सर बुद्ध के एक कथन का उद्धरण देते हैं, 'गौतम ने कहा था कि बुरी संगत में रहने से अच्छा है, अकेले चलना। अगर आप अकेले हैं तो आप चाहे धीरे चलें या तेज़, पर कम से कम एक तय दिशा में तो चलेंगे। यह पीछे खींचे जाने से तो बेहतर है।' वे बताते हैं कि पारंपरिक वैदिक समाज में भी लगभग सत्तर प्रतिशत लोगों ने गृहस्थ जीवन अपनाया। बाक़ी तीस प्रतिशत लोगों के लिए संन्यास का विकल्प मौजूद था, जो गृहस्थ जीवन की ज़रूरत नहीं महसूस करते थे। 'दुनिया में ऐसे कुछ लोग हमेशा

रहेंगे जो बस आत्म-संरक्षण और प्रजनन तक की सीमित ज़िंदगी से कुछ ज़्यादा चाहते हैं। ब्रह्मचर्य इन्हीं के लिए है। मनुष्य अकेला जन्म लेता है। ये ऐसे लोग हैं जो अपना जीवन उसी तरह चलाने का विकल्प चुनते हैं। ये लोग किसी भी चीज़ का त्याग नहीं कर रहे हैं। वे तो समाज के दूसरे लोग हैं जो कामवासना और आसक्ति जैसी चीज़ों की वजह से संग-साथ पाने के लिए अपनी आज़ादी खो दे रहे हैं।'

वे अपनी बात स्पष्ट करने के लिए इसकी तुलना मिट्टी के बर्तन से करते हैं। 'आप ख़ुद को कर्म का एक बर्तन मान लें। जीवन चलाने की प्रक्रिया में कुछ कर्मों और प्रभावों ने आपको एक ख़ास क़िस्म का इंसान बना दिया है। अपने बचपन में यह इंसान गीली मिट्टी जैसा लचीला था। जब तक आप बड़े होकर बालिग हुए, यह एकदम सख़्त हो गया। तो जीने की प्रक्रिया की आँच में यह बर्तन धीरे-धीरे तपकर पक रहा है। जब आप बूढ़े हों जाएँगे, उस समय अगर आप इस बर्तन का आकार बदलना चाहें तो यह टूट जाएगा। लेकिन जब तक यह तपकर पका नहीं था, उस समय आप बड़ी आसानी से इसे जिस रूप में चाहें ढाल सकते थे। ब्रह्मचर्य के मामले में यही तो हम कर रहे हैं। हम पके हुए सख़्त लोगों को फिर से कच्चे बर्तन जैसा बना रहे हैं, जहाँ उनकी ऊर्जाएँ बिलकुल लचीली, किसी भी आकार में गढ़ने लायक़ बन जाएँ, ताकि उन्हें हम कोई भी रूप और आकार दे सकें। हम उन्हें किसी भी साँचे में ढाल सकते हैं। ब्रह्मचर्य इसी दिशा में काम करता है। यह एक बहुत बड़ी साधना है।'

एक बार उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मेरे विचार में ब्रह्मचारी देखने में नीरस लगते हैं। तब मैंने ईमानदारी से जवाब दिया था कि यह बात मेरे दिमाग़ में आई थी। आश्रम में कुछेक बार जाने के बाद मुझे ब्रह्मचारियों की मौजूदगी धुंधली-सी और अपना अस्तित्व मिटा देने की हद तक विनम्र लगी। काफ़ी बाद में मुझे एहसास हुआ कि लोगों का ध्यान अपनी तरफ़ खींचने की इच्छा (जिसे आज का समाज सामान्य मानता है) से मुक्त होने के लिए कितनी परिपक्वता की ज़रूरत होती है। उन्होंने मुझे भरोसा दिलाया, 'वे नीरस नहीं हैं, वे बहुत बुद्धिमान लोग हैं। पूरी जागरूकता के साथ ख़ुद को इतना लचीला बना लेना कि आप किसी भी रूप में ढल सकें - ऐसी आज़ादी रखना क्या अच्छी बात नहीं है? मैं दस ब्रह्मचारियों की ऊर्जाओं को मिलाकर

एक विशाल इंसान की ऊर्जा तैयार कर सकता हूँ जिसमें ज़बर्दस्त तेज हो।' कुछ ठहरकर उन्होंने कहा, 'हम सभी ने आम खाए हैं, लेकिन हम में से कितने लोगों ने आम के पेड़ लगाए हैं? चूँकि हर पीढ़ी में दस लोग आम के पेड़ लगाते रहे हैं, इसलिए बाक़ी लोग आम खा पा रहे हैं। इसी तरह आध्यात्मिक मार्ग को उसकी पूर्णता में जारी रखने के लिए ब्रह्मचर्य की ज़रूरत है। यह बात बहुत अहम है कि कुछ ऐसे लोग हों, जिनके लिए 'सत्य' उनके जीवन से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो। जब आप एक ऐसा आध्यात्मिक मार्ग स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं, जो आपके बाद पीढ़ियों तक चलता रहे, तो यह ब्रह्मचर्य की मज़बूत परंपरा के बिना मुमकिन नहीं है।'

उनका कहना है कि अविवाहित होना तो इसका सिर्फ़ एक छोटा-सा हिस्सा है। 'जीवन में सभी चीज़ों को शामिल करना ब्रह्मचर्य है, न कि अलग करना, जैसा कि लोग इसे समझते हैं। ब्रह्मचारी 'तुम' और 'मैं' के संबंध से ऊपर उठकर देखता है, क्योंकि वह अपने भीतर सबको शामिल करने का भाव स्थापित करना चाहता है। ब्रह्मचारी ऐसे लोग हैं जिन्होंने यह तय कर लिया है कि वे किसी चीज़ या किसी इंसान से ख़ुशी हासिल करना नहीं चाहते। वे अपने भीतर ही आनंद का स्रोत चाहते हैं। इस मायने में सारी दुनिया को भीतरी तौर पर ब्रह्मचर्य को अपनाने की ज़रूरत है। इसका किसी अभ्यास, किसी शपथ, किसी बाहरी जीवन शैली से लेना-देना नहीं है। आप शादीशुदा होकर भी ब्रह्मचारी हो सकते हैं। मतलब यह कि आप अपनी सहज प्रकृति से ही आनंदमय हो सकते हैं - और ऐसा होना भी चाहिए।'

एक बार उन्होंने सूफ़ी संत जलालुद्दीन रूमी की कहानी सुनाई।

जब रूमी ने अपनी प्रेमिका के घर जाकर दरवाज़ा खटखटाया तो उसने पूछा, "कौन है?"

रूमी ने जवाब दिया, "मैं हूँ, रूमी।"

दरवाज़ा नहीं खुला। रूमी उससे इतना प्रेम करता था कि कई दिनों तक रोता रहा। बार-बार वह दरवाज़े के पास जाता। हर बार वही आवाज़ आती, "कौन है?"

रूमी कहता, "मैं रूमी, मैं तुम्हारे लिए जान दे सकता हूँ।"

दरवाज़ा फिर भी बंद रहा। इस सारी उथल-पुथल और पीड़ा के बाद एक दिन वह अपने भीतर एक अलग ही अवस्था में पहुँच गया। वह एक बार फिर अपनी प्रेमिका के दरवाज़े पर पहुँचा।

अंदर से हमेशा की तरह वही आवाज़ आई, "कौन है?"

रूमी ने जवाब दिया, "यह तुम्हीं तो हो।" और दरवाज़ा खुल गया।

सद्गुरु एक अनुभवी क़िस्सा सुनाने वाले की तरह रुके और कहा, 'यही पूरी प्रक्रिया है। अगर आध्यात्मिक अभ्यास आपके जीवन का अंग है, तो यह कारगर नहीं होता। अगर यह आप बन गया है तो भी काफ़ी नहीं है। इसे तो आपसे, आपके जीवन से भी बढ़कर होना होगा। यही तो ब्रह्मचर्य है।'

*हम सभी ने आम खाए हैं, लेकिन हम में से कितने लोगों ने आम के पेड़ लगाए हैं? चूँकि हर पीढ़ी में दस लोग आम के पेड़ लगाते रहे हैं, इसलिए बाक़ी लोग आम खा पा रहे हैं। इसी तरह आध्यात्मिक मार्ग को उसकी पूर्णता में जारी रखने के लिए ब्रह्मचर्य की ज़रूरत है।*

एक संन्यासी को 1996 के दूसरे बैच में ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी गई थी। वे अपनी इस दीक्षा के पीछे एक मज़ेदार घटना का उल्लेख करते हैं। वह उस वक़्त भी अपने पुराने मित्र और मार्गदर्शक के अचानक सद्गुरु बन जाने से पैदा हुई भीतरी उथल-पुथल से जूझ रहे थे। इसके बावजूद जग्गी में उनका गहरा और हद से ज़्यादा भरोसा बरकरार था। एक दिन सद्गुरु ने उन्हें बुलाया और यूँ ही पूछा कि क्या वे दक्षिण भारतीय फ़िल्मों के सुपर-स्टार रजनीकांत की फ़िल्में देखते हैं? जब जवाब में उन्होंने 'नहीं' कहा तो सद्गुरु ने टिप्पणी की कि ब्रह्मचर्य रजनीकांत की फ़िल्में देखना छोड़ने से ज़्यादा मुश्किल नहीं है। इस बात से दिशा तय हो गई। उन्होंने ब्रह्मचर्य की दीक्षा के लिए अपना नाम लिखवा लिया।

और सामुदायिक जीवन की परेशानियाँ, वहाँ के नियम-क़ायदे, गुरु के निर्देशों के मुताबिक़ अपना जीवन चलाने की चुनौतियाँ, संस्थागत व्यवस्था,

अनुशासन – इन सबके बारे में क्या कहना है? वे स्वीकार करते हैं, 'बेशक निराशा के भी पल रहे हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य को मैं एक प्रक्रिया के रूप में देखता हूँ, ऐसी प्रक्रिया भी नहीं, जिससे वापस न लौटा जा सके। इससे मदद मिलती है। इसके अलावा, इस जीवन का सबसे बड़ा फ़ायदा यह है कि आपकी आध्यात्मिक प्रक्रिया, आपकी आंतरिकता का सद्‌गुरु पूरा ख़याल रखते हैं। कोई भी समझदार आदमी यह सब क्यों छोड़ना चाहेगा?' बिना सवाल किए एक आज्ञाकारी जीवन जीने से क्या कोई असंतोष या नाराज़गी नहीं होती? वे बहुत शांति से तर्क देते हैं, 'सद्‌गुरु पर मेरा भरोसा इसलिए है क्योंकि वे अपनी आज़ादी को महत्त्व देते हैं। इसलिए मुझे विश्वास है कि वे ऐसा कुछ नहीं करेंगे जिससे मुझे अपनी आज़ादी से समझौता करना पड़े।'

'होलनेस कार्यक्रम' के दौरान आश्रम के नियमों की तेज़ी से बढ़ती सूची से सोमू हैरान हो गए और घबरा गए। 'इस सबने मुझे डरा दिया। एक दिन शाम को मैं सद्‌गुरु के पीछे-पीछे उनके कमरे तक गया। उस वक़्त अंधेरा था और मुझे याद है कि उनके हाथ में टॉर्च थी। हम दरवाज़े पर रुक गए। उन्होंने मेरी ओर देखा और मैंने बिना कुछ सोचे-समझे उनसे कहा, "जग्गी, मुझे कोई नियम-क़ानून नहीं चाहिए।" उन्होंने मेरे चेहरे पर टॉर्च की रोशनी डाली। उन्होंने मेरी आँखों में आँसू ज़रूर देखे होंगे। उन्होंने नरमी से, बहुत ही नरमी से कहा कि ठीक है, तुम्हारे लिए कोई नियम-क़ानून नहीं है।'

सोमू के लिए यह क्षण इसलिए यादगार है, क्योंकि सद्‌गुरु कभी अपने वचन से डिगे नहीं। सोमू (अब स्वामी गुरुभिक्षा) कहते हैं, 'आज भी सद्‌गुरु नए दीक्षा लेने वालों से सभा में कहते हैं कि उन्होंने वचन दिया है कि उन पर कोई भी नियम ज़बर्दस्ती लागू नहीं किया जाएगा।' सोमू कहते हैं कि किसी बाहरी व्यक्ति को जितना नज़र आता है, उससे ज़्यादा आंतरिक प्रजातंत्र आश्रम की व्यवस्था में मौजूद है। 'सद्‌गुरु अब भी कहते हैं, "अगर कोई भी नियम आपको अनुचित लगते हैं, तो आप इस बात को उचित मंच पर उठाएँ, हम उनको बदल देंगे।" अब मैं उन पर और ज़्यादा भरोसा करता हूँ क्योंकि मैं देखता हूँ कि वे अपने वचन से कभी पीछे नहीं हटते।'

एक युवती कविता ने हाल ही में ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है। उसके लिए यह किसी मजबूरी या बंधन की बजाय अनोखे अनुभवों को प्राप्त करने की प्रतिबद्धता है। 'यह चुनौतियों के साथ जीना है, जहाँ आपको पूरी चेतना में

आगे बढ़ना है। यह आपको हर पल सचेतन और सतर्क होने की चुनौती देता है। मैंने हमेशा ऐसी स्थिति के ख़्वाब देखे हैं, जहाँ हर कोई पूरे जोश से अपनी शख़्सियत की सीमाओं को विसर्जित करने के लिए समर्पित हो। और यहाँ ये मौजूद है।'

अमेरिका में सद्‌गुरु के मार्गदर्शन में कुछ योग-कोर्स करने के बाद, अरकांसास की स्कूल टीचर कविता ने आश्रम में कुछ समय बिताने का फ़ैसला किया। 'मैं पहले से ही ऊर्जा, स्पष्टता और जीवंतता का ऊँचा स्तर महसूस कर रही थी। मैंने सोचा कि मैं ख़ुद को "सुपर-वूमन" बनाकर लौट जाऊँगी। यहाँ स्वयंसेवियों का गरिमामय व्यवहार, शिष्टता और सौम्यता देखकर मैं दंग रह गई। सद्‌गुरु का अनुकरण करने की कोशिश तो बहुत बड़ी महत्त्वाकांक्षा लगी, लेकिन इन लोगों के अनुकरण की कोशिश प्रेरणादायक थी।'

जब तक वह कुछ समझ पाती, उसने टीचर्स ट्रेनिंग प्रोग्राम में दाख़िला ले लिया था। उसने पाया कि उसकी बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाओं की हवा निकल चुकी थी। 'इस कार्यक्रम ने मुझे बहुत विनम्र बना दिया। मैंने सोचा था कि मुझे और ऊँचाइयाँ हासिल करनी हैं, जीतना है, और सबसे अच्छा बनना है। लेकिन टीचर बनने का मतलब है, सीखे हुए को भुलाना, पिघलना, एक प्रवाह का वाहक बन जाना। मैंने महसूस किया कि मैं ज़्यादा बालसुलभ, चंचल और उन्मुक्त होती जा रही हूँ। यह बदलाव मुझे अच्छा लगा और मैंने यहीं रहने का फ़ैसला कर लिया। लक्ष्य नहीं बदला है। पहले मैं ख़ुद को ऐसा इंसान बनाना चाहती थी, जिसकी क़ीमत हो। अब मैं जो हूँ, उसे मिटाना चाहती हूँ ताकि कुछ क़ीमती चीज़ मेरे माध्यम से अपनी चमक दिखा सके।'

सद्‌गुरु अक्सर कहते हैं, 'मैं जितना ज़्यादा अनौपचारिक दिखता हूँ, उतना ही ज़्यादा गंभीर होता हूँ।' उनसे मिलने के बाद जिन लोगों ने अपना जीवन बदल डालने का फ़ैसला लिया है, वे इसकी पुष्टि करते हैं। हाल ही में एक दूसरे शिष्य - अब एक ब्रह्मचारी - ने बताया कि कैसे सद्‌गुरु ने उसे बुलाकर अचानक पूछ लिया कि क्या उसका ब्रह्मचर्य अपनाने का इरादा है? शिष्य ने जवाब दिया, 'नहीं।' सद्‌गुरु ने मज़ाकिया लहजे में पूछा, 'क्यों? क्या अभी भी ख़ूबसूरत बीवी की तलाश है?' शिष्य ने झिझकते हुए जवाब

दिया कि उसे अपनी सुबह की चाय इतनी पसंद है कि वह इसे छोड़ने की नहीं सोच सकता। इस पर उसके गुरु ने ख़ुश होते हुए कहा, 'तब तो हम तुम्हारे लिए उससे भी बेहतर पेय तैयार करेंगे।' इतना काफ़ी था और उसने अपना नाम दे दिया। वह ब्रह्मचारी स्वीकार करता है कि उसे कभी-कभार गरमागरम मसाला चाय की याद तो आती है, लेकिन उसकी चाहत की तीव्रता ख़त्म हो गई है।

उनका एक मित्र से श्रद्धा के पात्र में बदल जाना उनके शुरुआती शिष्यों के लिए मुश्किल था। इसका सबसे ज़्यादा असर विजी पर पड़ा। उसमें भी एक आम औरत की तरह पत्नी और माँ बनने की चाहत थी। बड़े प्रेम से संजोयी अपनी ये इच्छाएँ उसे अब ख़तरे में लगीं। बहुत भावुक और अपने पति पर अपना हक़ समझने वाली इस महिला ने अचानक उस व्यक्ति को, जिसे वह बेहद प्यार करती थी, सामूहिक संपत्ति में बदलते देखा। इसके अलावा, उसने कभी ख़ुद को कोई ख़ास आध्यात्मिक इंसान नहीं माना। उसने शायद ही कभी अपनी साधना पर ध्यान दिया था। हालाँकि वह अपने पति को पूजती थी, फिर भी उसे यह बहुत अजीब लगता था कि दूसरे लोग उन्हें गुरु के रूप में देखते हैं। उनका एक पुराना शिष्य कहता है, 'हममें से कई लोगों को लगा कि विजी के लिए वे ही सबसे बड़ी बाधा, सबसे बड़ी सीमा हैं। हम लोगों के सामने यह बिलकुल स्पष्ट था कि वे एक गुरु हैं, लेकिन विजी के लिए वे अभी भी पति ही थे और वे उन पर अपना पूरा हक़ समझती थीं। हममें से कुछ को महसूस हुआ कि वे उनकी नई भूमिका के बहुत पक्ष में नहीं हैं।'

भारती जैसी व्यावहारिक और समझदार महिला के लिए विजी का मिजाज समझ से परे था। वह अक्सर अपने गुरु की पत्नी के साथ ख़ुद को बेसब्र पाती थी। 'एक बार मैंने विजी से पूछा, आप बैंक में मामूली सा काम करके थोड़ा सा पैसा क्यों कमा रही हैं? आप यहाँ कोयम्बतूर में रहकर अपने पति के महान कार्य में हिस्सा क्यों नहीं लेतीं?' जब विजी ने जवाब दिया कि वे अपने पति की अनिश्चित आमदनी वाले जीवन के कारण नौकरी नहीं छोड़ सकतीं, तो भारती को निराशा हुई। 'मुझे साफ़-साफ़ दिख रहा था कि इस इंसान के पास हमें देने के लिए जो कुछ था, वह चरम संभावना थी। लेकिन इस बात से मुझे अफ़सोस हुआ कि विजी यह सब नहीं देख पा रही थीं। उन्होंने कहा कि उन्हें इस मिशन से पहले अपने पति के साथ

वाली ज़िंदगी की कमी महसूस हो रही है। लेकिन मैं हमेशा सोचती थी कि जो कुछ हम जानते थे, निश्चित ही यह समूचा अभियान उससे बहुत विशाल है। वे इस रोमांचक सफ़र में हिस्सा क्यों नहीं लेना चाहतीं?'

दूसरी ओर, सद्गुरु वर्षों पहले विजी की मानसिक परेशानी के इस आने वाले दौर को भाँप गए थे। किसी पुरानी मुलाक़ात में उन्होंने उसका हाथ देखकर कहा था कि ग्यारह साल बाद वे भावनात्मक उथल-पुथल के दौर से गुज़रेंगी। वे यह भी देख सकते थे कि नए हालात उनकी पत्नी के लिए आसान नहीं होंगे। 'वह हमारे जीवन में तेज़ी से आने वाले बदलावों से घबराई हुई थी। मैं उसे चेतावनी देता रहता था कि चीज़ें बदलेंगी, और जब मैं अपने तरीक़े बदलूँ, तो उसे अपना संतुलन नहीं खोना चाहिए। लेकिन वह इसके लिए बिलकुल तैयार न हो सकी। हमारे संबंधों की निकटता ऐसी थी कि एक समय वह यह सोचने लगी थी कि "यह मेरा पति है।" तेज़ी से होते बदलाव, सफ़र की अधिकता, एक बच्ची के साथ महीनों अपने घर में न रह पाना, यह सब उसके लिए बहुत ज़्यादा हो गया था। दूसरों के घर में गुरु की पत्नी के रूप में रहना आसान नहीं था। मैं जानता हूँ कि अक्सर मेरे साथ उससे भिन्न बर्ताव किया जाता था। उसे यह भी मालूम था कि मेरा अंतिम समय क़रीब आता जा रहा था और उसके पास मेरे साथ रहने को बहुत कम वक़्त बचा था। वह बहुत अधिक दबाव में थी। मैंने उसे मुश्किल हालात में डाल दिया था। लेकिन बाद में जिस पल वह ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए आँखें बंद करके बैठी, उसने सब कुछ बहुत शानदार किया।'

> *यहाँ स्वयंसेवियों का गरिमामय व्यवहार, शिष्टता और सौम्यता देखकर मैं दंग रह गई। सद्गुरु का अनुकरण करने की कोशिश तो बहुत बड़ी महत्त्वाकांक्षा लगी, लेकिन इन लोगों के अनुकरण की कोशिश प्रेरणादायक थी।*

विजी में बदलाव धीरे-धीरे आया। 1996 की शुरुआत में उसने बेंगलुरु में अपनी बैंक की नौकरी छोड़कर कोयम्बतूर आने का फ़ैसला किया। लगभग इसी समय सद्गुरु ने अपने माता-पिता की संपत्ति में मिलने वाला अपना

हिस्सा छोड़ दिया। उनके पास के मित्रों को ये दोनों फ़ैसले अव्यावहारिक लगे। लेकिन उनके दिमाग़ में कुछ और चल रहा था।

कोयम्बतूर आने के बाद विजी अपनी दैनिक साधना पर अधिक ध्यान देने लगी। वह सुमन के साथ सबसे पहले सुबह साढ़े चार बजे ध्यान कक्ष में पहुँच जाती थी। अब वह ज़्यादा शांत थी और अपने पति के लिए उसकी दीवानगी कम हो गई थी। अब वह पत्नी, माँ और शिष्या के तौर पर अपनी भूमिकाएँ ज़्यादा सहजता और गरिमा के साथ निभाने लगी थी। ऐसा लग रहा था कि एक बालसुलभ स्त्री अब बालिग बन गई है। यह पूरी तरह उम्मीद के ख़िलाफ़ नहीं था। इसी दौरान उसके जीवन की सबसे अहम घटनाओं में से एक सामने आने वाली थी। उसे सद्गुरु के मिशन में अपनी एक केंद्रीय भूमिका होने का एहसास होने लगा था।

विजी और भारती के साथ ही सद्गुरु अपने जीवन के उद्देश्य ध्यानलिंग की स्थापना करना चाहते थे। एक तरह से इन दोनों के चुनाव की वजह साफ़ ज़ाहिर थी। एक जन्म पहले ही कडप्पा के एक छोटे-से मंदिर में इनके जीवन की पटकथा लिखी जा चुकी थी। सद्गुरु कहते हैं, 'असल में उनके जीवन तय हो चुके थे। उनकी ज़िंदगियाँ उनकी ख़ुद की नहीं थीं। कभी भी नहीं थीं - बचपन में भी नहीं। हालाँकि तमाम चीज़ों में उनकी भागीदारी थी, फिर भी उनका एक हिस्सा था जो किसी चीज़ में कभी भी शामिल नहीं था। उनका एक हिस्सा पूरी तरह कहीं और था। और जब ध्यानलिंग की संभावना उनके सामने आई, वे बस जान गईं कि उन्हें इसमें पूरी तरह से जुट जाना है।'

तीन जन्मों की तैयारियों के बाद, अब सद्गुरु को ज़रा भी संदेह नहीं था कि उन्हें क्या करना है। वे बड़ी सहजता से यह अत्यंत गूढ़ योगिक प्रक्रिया समझाते हैं : 'यह सारी प्रक्रिया ध्यानलिंग की ऊर्जाओं को इतनी सूक्ष्म बनाने की थी जिसके परे उसका कोई आकार न हो सके। सूक्ष्मता की एक सीमा के परे ऊर्जा कोई आकार बनाए नहीं रख सकती। इसलिए योजना ऊर्जा को सूक्ष्मता की उस चरम सीमा तक ले जाने की थी। और इसे एक ख़ास तरीक़े से कैद किया जाना था ताकि यह हमेशा के लिए वहीं पर रहे। इसे एक ख़ास तरीक़े से क़ैद किया जाता है। प्राण-प्रतिष्ठा की इस प्रक्रिया में मंत्रों या किसी रीति-रस्म की ज़रूरत नहीं होती। यह पूरी तरह से एक ऊर्जा-प्रक्रिया है, जिसमें सिर्फ़ लोग शामिल होते हैं... इसमें आपकी

जीवन-ऊर्जाओं को लचीला बनाया जाता है। अभी यह एक व्यक्ति के रूप में, ठोस रूप में स्थापित है। तो इस प्रक्रिया में शामिल लोगों को विकसित करना, उनसे कई वर्षों तक साधना कराकर उन्हें लचीला बनाना होता है। इन ऊर्जाओं का प्रयोग करके हमने ऐसी स्थिति पैदा की, जहाँ उस स्थान पर एक बहुत ही विशाल शक्ति आमंत्रित की गई। तो प्राण-प्रतिष्ठा इस तरह से हुई।'

जून 1996 में सद्गुरु ने विजी और भारती को एक तीव्र साधना की प्रक्रिया में दीक्षा दी - एक ऐसा अभ्यास जो ऊर्जा के स्तर पर दोनों के बीच की सीमाओं को धुंधला कर दे। 'शुरू में मैंने सोचा था कि मैं यह प्रक्रिया चौदह लोगों को लेकर करूँगा - जिनमें सात औरतें और सात आदमी हों। नब्बे दिनों के "होलनेस कार्यक्रम" के पीछे यही उद्देश्य था। लोगों को गहन क्रियाओं और दूसरी तरह की साधनाओं से गुज़ारा गया था। हम कुछ कर्म-बंधनों को विसर्जित करने की जल्दी में थे। उनके जीवन में इन चीज़ों के घटित होने का इंतज़ार करने के लिए हमारे पास वक़्त नहीं था। इसलिए उनके लिए यह सब बड़ी तेज़ी से करना पड़ा। बहुत कोशिशों के बावजूद ऐसे चौदह लोग तैयार नहीं किए जा सके, जो ऐसी अवस्था में रह सकते हों, जहाँ अपने शरीर से उनका संबंध कम से कम रह जाए, फिर भी वे इतने स्थिर हों कि वहाँ बैठकर उन कामों को कर सकें, जिनकी ज़रूरत है। ऐसे चौदह लोगों को तैयार करना कोई आसान काम नहीं है, जो शरीर, मन और भावनाओं के स्तर पर एक हो जाएँ, और किसी भी काम के लिए पर्याप्त रूप से तैयार हों। मैंने इसके लिए एक वर्ष से थोड़े ज़्यादा समय तक कोशिश की। मैंने अपने दिमाग़ में उन्हें तय भी कर लिया था, लेकिन किसी को नहीं बताया कि वे कौन थे। मैंने उनके साथ मेहनत की, लेकिन फिर एहसास हुआ कि ऐसा करना मुश्किल होगा। या तो उनमें ऊर्जा थी, तो दिमाग़ नहीं था। या फिर दिमाग़ था तो ऊर्जा नहीं थी। वक़्त ज़्यादा नहीं था। इसलिए मैंने एक कड़ा क़दम उठाने का फ़ैसला किया - बस तीन लोगों के साथ आगे बढ़ने का। इस प्रक्रिया में ख़तरा ज़्यादा था, लेकिन दो लोगों को क़ाबू में रखना, चौदह लोगों पर पूरी तरह नियंत्रण रखने से आसान था।'

उनकी ऊर्जाओं का एक त्रिकोण बनाने की योजना थी। विजी और भारती उसके दो बिंदु होने थे और सद्गुरु शीर्ष-बिंदु। संख्या कम होने के फ़ायदे के अलावा ये दोनों भिन्न मिजाज की थीं, लेकिन एक दूसरे की पूरक

थीं। विजी अगर चंचल और भावुक प्रकृति की थी तो भारती शांत और तार्किक थी। विजी की भूमिका स्त्री-ऊर्जा की थी और भारती की पुरुष-ऊर्जा की। सद्गुरु थे अर्धनारी के रूप में, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों की ऊर्जाएँ समाहित थीं। उन्होंने इन दोनों की ऊर्जाओं को पिछले जन्म में ही तय कर दिया था, इसलिए इनके कारगर न होने की उन्हें कोई आशंका नहीं थी। भारती की ऊर्जाएँ पहले ही एक ख़ास तरीक़े से स्थापित की जा चुकी थीं, इसलिए उसके पास दो पिंगलाएँ थीं। उन्हें पूर्वाभास था कि ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा में एक ऐसी स्त्री की ज़रूरत होगी, जो पुरुष की तरह काम कर सके।

इसमें भाग लेने वाले सभी लोगों के लिए यह प्रक्रिया काफ़ी ख़तरनाक होने वाली थी। सद्गुरु स्वीकार करते हैं, 'जब आप इस तरह की कठिन साधना से गुज़रते हैं तो आपका ऊर्जा-शरीर आपसे कभी भी अलग हो सकता है। अगर मैं उन्हें ध्यान के लिए बैठाता था, तो यह छह से आठ घंटे तक चलता था। वे बिना हिले-डुले रातभर बैठी रहती थीं। हर दिन यह प्रक्रिया शाम के छह या सात बजे शुरू होती और सुबह तीन या चार बजे तक बिना रुके चलती रहती। ज़रूरी साधना के बिना हर कोई इस गहन प्रक्रिया को नहीं झेल सकता। इन लोगों ने सुख-सुविधाओं में जीवन बिताया था। अपने पिछले जन्म की साधना की वजह से ही वे यह कर पा रहीं थीं, लेकिन तब भी यह ख़तरा हमेशा बना हुआ था कि उनमें से कोई भी किसी भी वक़्त मेरे हाथों में गिर सकता था।'

विजी ने शुरुआत में इस योजना पर शंका और गहरा विरोध जताया। लेकिन धीरे-धीरे वह मान गई। भारती कहती है, 'शायद तब तक वे समझने लगी थीं कि अगर सद्गुरु के जीवन का हिस्सा बनना है तो उनके काम का हिस्सा भी बनना पड़ेगा।' इन दिनों विजी ने सद्गुरु को बताया कि बचपन में उसे ऐसे सपने अक्सर आते थे कि तीन लोग त्रिभुज के आकार की संरचना में बैठकर कोई क्रिया कर रहे हैं। ऐसा लग रहा था कि सारी योजना और उसमें उसकी भूमिका पहले से तय थी। ऐसे में विरोध करना उसे व्यर्थ लगा।

इस प्राण-प्रतिष्ठा प्रक्रिया का हिस्सा बनने के लिए औपचारिक तौर पर कहा जाना भारती को ठीक से याद नहीं है। उसे बस इतना याद है कि एक पूर्णमासी की शाम उसे सद्गुरु और विजी के साथ एक ध्यान प्रक्रिया

में शामिल होने को कहा गया था। वह कहती है, 'मैं ध्यान में बैठ गई, वैसे शुरुआत में मैं अपनी भूमिका को लेकर थोड़ी आशंकित थी। लेकिन सद्गुरु की मौजूदगी में एक बार जब मैं आँखें बंद करती हूँ, तो फिर कोई शक नहीं बचता। कोई दूसरी शक्ति, जो मेरी अपनी नहीं लगती, मुझ पर हावी हो जाती है और मैं लगभग उसी पल ध्यान में चली जाती हूँ। वैसा ही या उससे कुछ ज़्यादा उस पूर्णमासी के ध्यान में हुआ। ऐसा लग रहा था कि कोई अदम्य शक्ति और ऊर्जा मेरे अंदर उमड़ रही थी, जिसे मैं सँभाल नहीं पा रही थी। मेरा पूरा शरीर ऐंठने और बल खाने लगा और मैं अपनी शारीरिक इंद्रियों पर से क़ाबू खो बैठी, हालाँकि मैं पूरी तरह जागरूक थी। यह प्रक्रिया मुझ पर हावी हो गई। मैंने महसूस किया कि मेरा अंतर्मन निर्मल हो गया है और तमाम बेकार की भीतरी उथल-पुथल से छुटकारा मिल गया है। मेरा शरीर बहुत संवेदनशील हो गया। अंत में एक अनजान ऊर्जा-रूप ने मुझे नियंत्रण में ले लिया था। उस ऊर्जा के गहरे संपर्क के अनुभव से मेरा शरीर इतना कमज़ोर हो गया कि मुझे खड़े होने और चलने के लिए विजी की मदद की ज़रूरत पड़ी।'

*वह आदमी साठ साल से ऊपर का था और मैं लगभग बीस साल का। लोग उन्हें महान ज्ञानी और संत मानते थे। मैंने कहा, मुझे बहुत भूख लगी है, मुझे कुछ खाने को चाहिए। मेरी ओर देखकर उनकी हँसी फूट पड़ी और उनकी आँखों में आँसू बह निकले। अगले ही क्षण वे मेरे पैरों पर गिर पड़े।*

सद्गुरु ने विजी और भारती को सलाह दी कि इस प्रक्रिया को और आसान बनाने के लिए एक दूसरे के साथ ज़्यादा वक़्त बिताएँ। उन दोनों की इसमें कोई ख़ास रुचि नहीं थी। 'मेरे लिए विजी हमेशा से सिर्फ़ सद्गुरु की पत्नी थी,' स्पष्टवादी भारती कहती हैं, 'उनके साथ सामाजिक तौर पर कोई मेलजोल नहीं था। मैं भावुक लोगों के साथ कभी भी सहज नहीं रही हूँ।' इन दोनों महिलाओं के मन में एक दूसरे के ख़िलाफ़ कुछ नहीं था। लेकिन

सद्‌गुरु के प्रति उनके समर्पण के अलावा दोनों में कोई समानता भी नहीं थी। शुरू में रुक-रुक कर बातचीत हुई। ऐसे भी मौक़े आए, जब मतभेद हुए और दोनों भड़क गए। क्योंकि जो चीज़ करने को कही जा रही थी, वह असल में बिलकुल साधारण लेकिन भारी चुनौती वाली थी - निजी शख़्सियत को स्वेच्छा से मिटाना, जिससे एकत्व पैदा किया जा सके। असल में यह ख़ुद अपनी व्यक्तिगत पहचान की हत्या करने से कम नहीं था।

सद्‌गुरु कहते हैं, 'लोगों के अंदर विरोध की कई परतें होती हैं। मैंने उनके कर्मों को एकदम काटकर उसे एक ओर रखा और दोनों को साथ रखा, वरना उनका साथ हो पाना बिलकुल भी संभव नहीं था। वे दोस्त बनने को तैयार थीं लेकिन इसके आगे न बढ़ पातीं। क्या कोई ऐसा होता है जिसके साथ आप घुल-मिलकर एकाकार करने को तैयार हों? ऐसा नहीं होता। सिर्फ़ कुछ क्षणों में आपको ऐसा लगता है, लेकिन ऐसा होता नहीं है।'

यह आसान नहीं था। स्वेच्छा से अपनी पहचान को नकारने के अलावा तीन लोगों के बीच सीमाओं को मिटाने के मायने थे - अपनी निजता को खोना और अचानक तमाम विचारों और यादों की विरासत पा लेना। सद्‌गुरु कहते हैं, 'जब ऊर्जा का त्रिकोण बनाने के लिए मुझे धुरी में रखते हुए इन दो लोगों को साथ लाया गया, तो यह ज़रूरी था कि वे अपने मन, भावना और ऊर्जा में एक हो जाएँ। अब अगर यह इंसान (सद्‌गुरु) अपने बाएँ घुटने पर कुछ महसूस करता, तो दूसरे दोनों भी अपने बाएँ घुटने पर वही महसूस करते, चाहे वे कहीं पर भी हों। आपका जो जीवन था और उनका जो जीवन था, वह सब आपके दिमाग़ में गड्ड-मड्ड हो गया था। मान लेते हैं कि आप, मैं और कोई तीसरा इस समय एक ऊर्जा-त्रिभुज बनाए हुए हैं। दस साल पहले मेरे जीवन में क्या हुआ था, यह आपको मालूम नहीं था, लेकिन अब आप जान जाते हैं। और पचीस साल पहले आपके जीवन में जो हुआ, वह मुझे नहीं मालूम था लेकिन अचानक अब मैं जानता हूँ। यह सब कुछ इतना गड्ड-मड्ड हो गया था कि हम नहीं जानते थे कि कौन सी स्मृति किसकी थी। हम तीनों का दिमाग़ एक हो गया था, भावनाएँ एक हो गईं थी, ऊर्जा-शरीर भी एक हो गया था...'

जैसे-जैसे यह प्रक्रिया गहरी हुई, भारती को अचानक विजी के जीवन की ऐसी बातें मालूम हो गईं, जो उसे कभी नहीं बताई गई थीं। ज़्यादा

रहस्यमय बात यह थी कि वह यह भी जान जाती थी कि विजी किसी वक़्त क्या सोच रही है। 'जब मैं कोयम्बतूर में अपने घर में होती तो भी अक्सर मुझे मालूम पड़ जाता कि वह कब खाना खा रही थी या कब नहा रही थी। लेकिन उस वक़्त तक चूँकि हम कुछ प्रक्रियाओं में पूरी तरह से डूबे हुए थे, तो इस बात से मुझे बहुत आश्चर्य नहीं हुआ।'

जिस प्रक्रिया में सद्गुरु ने उन्हें दीक्षित किया था, खुद सद्गुरु बताते हैं कि वह काफ़ी शक्तिशाली थी। 'यह ईश्वर या चैतन्य को आमंत्रित करने के लिए ऊर्जा का त्रिकोण बनाने जैसा था। एक बार यदि आप त्रिकोण बना लेते हैं तो यह एक भँवर की तरह होता है। यह एक ख़ास तरह की प्रचंड संभावना है, जो सब कुछ अपने भीतर सोख लेती है।'

अपनी सामूहिक ऊर्जा के भँवर में ईश्वर को उतारने की प्रक्रिया में प्रतिभागियों के पास उनकी इच्छित चीज़ के अलावा भी बहुत कुछ चला आया। एक दिन भारती और विजी ध्यान के दौरान अपने आसपास अजीब-सी बेसुरी आवाज़ें सुनकर हैरान रह गईं। भारती बताती हैं, 'ध्यानलिंग प्राण-प्रतिष्ठा प्रक्रिया वाली साधना करने के लिए पूर्णिमा और अमावस्या काफ़ी महत्त्वपूर्ण दिन होते हैं। एक अमावस्या को जब मैं सद्गुरु और विजी के साथ पूजास्थल पर ध्यान कर रही थी तो, मुझे दबी आवाज़ में फुसफुसाहट सुनाई दी और अपने आस-पास धक्का-मुक्की जैसा महसूस हुआ। मुझे यक़ीन नहीं हुआ, सोचा कि यह मेरी कल्पना होगी। लेकिन दबी हुईं आवाज़ें आती रहीं।' कुछ दिनों में ये कानाफूसी की आवाज़ें बढ़ती चली गईं और एक दिन भारती को लगा कि उसके कंधे पर किसी का हाथ है और कोई दूसरा शरीर उसके शरीर को ठेल रहा है। 'मैंने आँखें खोलीं तो देखा कि कई आकृतियाँ मेरे बग़ल में ठस कर बैठी हुई थीं।'

तब सद्गुरु ने समझाया कि ये शरीरहीन प्राणी हैं जो अपनी मुक्ति की संभावना से (जो अचानक बन गई थी) इस जगह पर खिंचे चले आए हैं। 'ये उच्च अवस्था प्राप्त लोग थे जो लगभग हर चीज़ से मुक्त हो चुके थे, लेकिन उनमें कुछ कार्मिक ढाँचा अब भी बाक़ी था। पूर्ण विसर्जन अभी तक नहीं हुआ था। तो एक बार जब आप ऊर्जा के उस आयाम तक पहुँच जाते हैं तब आपको उनकी कर्म-संरचना टेप रिकॉर्ड जैसी बजती हुई सी सुनाई देने लगती है। विजी और भारती दोनों को ही कई लोग एक साथ

बातें करते हुए साफ़-साफ़ सुनाई दे रहे थे। कोई भी इससे डर सकता था, लेकिन उस स्थिति में उनको यह सब बड़ा स्वाभाविक लगा, क्योंकि दोनों को ऊर्जा के उच्च स्तर तक पहुँचा दिया गया था। मैंने कभी उम्मीद नहीं की थी कि वे इसे इतनी सहजता से ले पाएँगी। वे पूरी जागरूकता में इस तरह के अनुभवों से गुज़रीं। यह उनका मतिभ्रम नहीं था, न ही वे सम्मोहित या किसी नशीली चीज़ के प्रभाव में थीं। वे पूर्ण रूप से चेतना की अवस्था में थीं, आम तौर पर जितनी चेतना में कोई हो सकता है, उससे भी ज़्यादा।'

उनके चारों ओर शक्तिशाली ऊर्जा क्षेत्र का होना भारती के लिए एक ऐसा असली अनुभव था कि कोई भी तार्किक दलील अब हल्की और बेमानी लगती। 'मैंने तर्क से परे की बातों को हमेशा हँसी में उड़ाया है। लेकिन धीरे-धीरे मैंने मन को एक किनारे रखना शुरू कर दिया और ख़ुद को प्राण-प्रतिष्ठा की प्रक्रिया को समर्पित कर दिया।'

भारती और विजी दोनों पूरी सावधानी से अपने तुच्छ मतभेदों से ऊपर उठकर एक महान कार्य में हाथ बँटाने को तैयार थीं। यह प्रक्रिया सद्‌गुरु की उम्मीद से कहीं ज़्यादा तेज़ी से आगे बढ़ने लगी। अक्टूबर तक इतनी प्रगति हो चुकी थी कि उन्हें यक़ीन हो गया था कि तीन जन्मों का लक्ष्य अब दूर नहीं है। 'पहले मुझे अंदाज़ा नहीं था कि प्रक्रिया कितनी तेज़ या कितनी धीमी चलेगी। लेकिन एक बार जब हमने उन्हें साथ रखा, तो सब कुछ मेरी उम्मीदों से बढ़कर होने लगा। वे काफ़ी कुछ दो विपरीत ध्रुवों की तरह थीं। एक पूरी तरह तर्क तो दूसरी पूरी तरह प्रेम... जब ये दोनों गुण साथ आए, तो इनसे एक सुंदर सर्वगुण संपन्न इंसान बन गया। वे एक संपूर्ण मनुष्य की तरह हो गईं... लेकिन उसके बाद यह प्रक्रिया बहुत ज़बर्दस्त हो गई। इन दोनों को उनके शरीरों में जमाए रखना मुश्किल हो गया। इसलिए हमें प्रक्रिया कुछ वक़्त के लिए रोकनी पड़ी... एक बात यह भी थी कि इन दोनों को अपने-अपने परिवारों की देखभाल और अपने रोज़मर्रा के काम भी करने होते थे, जिनमें उन्हें पूरी तरह शामिल होना पड़ता था। दूसरी बात यह थी कि उन्हें ऊर्जा का उच्च स्तर बरकरार रखना था और ख़ुद को पूरी तरह से प्राण-प्रतिष्ठा की प्रक्रिया में समर्पित करना होता था। तो दोनों को अपने भीतर ज़रूरी परिपक्वता, संतुलन और आज़ादी हासिल करनी थी ताकि वे सब कुछ सँभाल सकें।'

मुश्किलें ख़त्म नहीं हुईं, लेकिन अब वे क़ाबू में थीं। सद्गुरु कहते हैं, 'ये दोनों पूरी तरह से विपरीत थीं। आम तौर पर दोनों साथ-साथ बैठ भी नहीं सकती थीं, क्योंकि दोनों की अपनी-अपनी एकदम अलग दुनिया थी। अब इन दोनों का एक में विलय करना था। एक तो विशुद्ध तर्क, दूसरी विशुद्ध भावुकता। हालाँकि उन्होंने प्राण-प्रतिष्ठा प्रक्रिया के दौरान एक साथ बहुत अच्छा काम किया, लेकिन मेरे लिए इसे आसान बनाने के लिए उन्होंने अलग से कोई ख़ास कोशिश नहीं की। मैंने इस सबका आनंद भी लिया। यह मेरे लिए एक बड़ी चुनौती थी।'

> *लेकिन जिस चीज़ को उन्होंने तौला नहीं था, वह था उसका दृढ़ निश्चय। क्योंकि उस दिन के बाद से विजी एक बदली हुई इंसान थी। उसके चेहरे पर नई चमक थी, उसका जीवन एक नए उद्देश्य के बोध से भर गया था।*

भारती याद करती हैं कि उसे विजी में साफ़ बदलाव तब नज़र आया, जब उसे एक बड़े रंगमंच पर अपनी भूमिका का एहसास होने लगा। वे कहती हैं, 'विजी में ग़ज़ब की बात यह थी कि जब एक बार वह साथ देने का फ़ैसला कर लेती थी, तो निजी संघर्षों के बावजूद वह पूरी तरह से प्रक्रियाओं में समर्पित हो जाती। शायद मेरी तरह उनके पास भी दूसरा विकल्प नहीं था। मुझे नहीं पता। हो सकता है, उनमें अब भी असुरक्षा की भावना रह गई थी। लेकिन जब हम साथ बैठतीं थीं, तो हम दोनों प्रक्रिया में पूरी तरह शामिल होती थीं। कुछ मायनों में वह मुझसे ज़्यादा दरियादिल इंसान थी। मुझे यक़ीन है कि कई बार वह मुझसे डरती और नफ़रत करती थी। लेकिन वह मुझे पसंद भी करती थी। शायद विजी की तरह भावुक होने का फ़ायदा यह है कि आप प्रेम अपने दिल में जगा सकते हैं और तब शायद चीज़ें होने लगती हैं।'

साथ ही तर्कसंगत भारती को एहसास था कि उनके भीतर भी एक बदलाव आ रहा था। वे स्वीकार करती हैं कि उस समय तक उनके भीतर उनका एक हिस्सा, विजी के प्रति तिरस्कार और उपेक्षा का भाव रखता था।

'मुझे ऐसा लगता था कि मेरे गुरु ने शादी करके ख़ुद को किसी अयोग्य के अधीन बना दिया था।' लेकिन इस प्रक्रिया से उनकी सोच में हल्का बदलाव हुआ, उनका रुख़ नरम पड़ा। 'हम दोनों अलग-अलग तरह से सद्गुरु पर हक़ समझती थीं। जब हम इस प्रक्रिया के लिए बैठीं तो हमारे व्यक्तित्व उसमें बाधक नहीं बने। सद्गुरु के माध्यम से हमारे बीच एक गहरे स्तर पर संबंध विकसित होने लगे। हम क़रीब आने लगे। इसके अलावा ये प्रक्रियाएँ इतनी शक्तिशाली थीं कि मैं विजी को एक इंसान की तरह कम और एक ख़ास तरह की ऊर्जा के रूप में ज़्यादा देखने लगी। मैंने ख़ुद को सद्गुरु के लिए हमेशा एक साधन के तौर पर माना है। इसमें कोई निजी पसंद का सवाल नहीं था। अपने अहं और झक्कीपन के बावजूद, प्रक्रिया के दौरान मैं बस ख़ुद को ख़ाली करके वहाँ बैठ जाती और उन्हें वह करने देती, जो ज़रूरी था। विजी भी ऐसा ही करती। इसी वजह से मेरे मन में उसके प्रति सम्मान था।'

फिर भी यह सब इतना सुगम और सुव्यवस्थित लग रहा था कि इसके सच होने पर शक होने लगा था। सद्गुरु कहते हैं, 'मैं जानता था कि कुछ न कुछ तो ज़रूर गड़बड़ होगी। मुझे मालूम था कि ध्यानलिंग की स्थापना जैसा विशाल अभियान बिना किसी गड़बड़ी के पूरा करना मुमकिन नहीं था।' सामाजिक बाधा आने की पहले से आशंका थी। पिछले जीवनकाल में भी इसी वजह से बात बिगड़ गई थी। सद्गुरु ने अपने शिष्यों को बाहरी दुनिया से संपर्क के बारे में ख़ास तौर पर सावधानी बरतने के निर्देश दे रखे थे। इस अभियान के लिए सामाजिक सद्भाव ज़रूरी था। उन्हें पता भी नहीं था कि आने वाली समस्या के बीज उनके काफ़ी पास थे।

---

दो दशक से भी पहले, जब जग्गी कॉलेज के बिंदास छात्र ही थे, तब वह अपनी मोटरसाइकिल पर कर्नाटक की पहाड़ियों को नापने निकल पड़े थे। उनके पास खाने-पीने की चीज़ें ख़त्म हो गईं थीं, लेकिन यह उनके लिए कोई नई बात नहीं थी। वे पहले भी ऐसे हालात से गुज़र चुके थे। लेकिन पाँच दिन तक लगभग भूखे मरने जैसी हालत के बाद उन्होंने अपने लिए खाने का जुगाड़ करने का फ़ैसला किया। इस मौक़े पर उन्हें एक पहाड़ी पर एक आश्रम जैसा कुछ दिखाई पड़ा। उन्होंने तुरंत अपनी मोटरसाइकिल उसी दिशा में मोड़ दी। जब वे पास पहुँचे तो मोटरसाइकिल से उतरने के

बजाय उसे पंद्रह सीढ़ियों तक ऊपर चढ़ाते हुए ले गए। आश्रम में घुसने का यह कोई औपचारिक तरीक़ा नहीं था। इतने दिनों तक जंगलों में रहने की वजह से बिना धुले गंदे, सिकुड़े हुए और धूल-धूसरित कपड़ों में जग्गी अजीब से लग रहे थे।

आश्रम के गुरु स्वामी निर्मलानंद (जिनका उन इलाक़ों में संत की तरह आदर होता था) सीढ़ियों पर सबसे ऊपर खड़े थे। जग्गी नहीं जानते थे कि इस हुलिए में उनके साथ कैसा सुलूक होगा। लेकिन उन्हें तब बड़ी हैरानी हुई जब स्वामीजी मुस्कराए। इसके बाद जब स्वामीजी ने जग्गी के पास आकर उनके पैर छुए तो जग्गी स्तब्ध रह गए। उनके मुँह से एक शब्द न निकला। उनकी समझ में नहीं आया कि वे क्या करें। उस समय उनके भीतर कोई संकीर्णता चूर-चूर होती हुई लगी। उन्हें बिलकुल समझ नहीं आ रहा था कि आख़िर हो क्या रहा है। लेकिन वे इतना जान गए कि किसी अनजान वजह से इस संत ने उनको सम्मान दिया है और इससे वे द्रवित हो उठे।

वे याद करते हैं, 'जब तक बहुत ज़रूरी नहीं होता था, मैं मोटरसाइकिल से नहीं उतरता था। तो मैं सीढ़ियों पर ऊपर तक गाड़ी चढ़ाता हुआ उनके निवास के पास पहुँच गया था। मैं सिर से पैर तक मिट्टी और कीचड़ से सना हुआ था। वह आदमी साठ साल से ऊपर का था और मैं लगभग बीस साल का। लोग उसे महान ज्ञानी और संत मानते थे। मुझे साधु-संतों में कभी भी दिलचस्पी नहीं थी। मुझे बस भूख लगी थी और मुझे खाना चाहिए था। जाने के लिए कोई और जगह नहीं थी, आसपास कोई रेस्तराँ भी नहीं था। मैंने कहा, "मुझे बहुत भूख लगी है, मुझे कुछ खाने को चाहिए।" मेरी जेब में कुछ रुपये थे। मैं खाने की क़ीमत चुका सकता था। मेरी ओर देखकर उनकी हँसी फूट पड़ी और उनकी आँखों में आँसू बह निकले। अगले ही क्षण वे मेरे पैरों पर गिर पड़े। इसने मुझे हिला दिया। मैं अपने जीवन में किसी के आगे नहीं झुका था। अब मैं किसी भी चीज़ के आगे झुक सकता हूँ, एक चींटी के आगे भी। लेकिन तब मैं किसी के आगे नहीं झुकता था, और इस आदमी का आकर मेरे कीचड़ भरे जूतों को छूना मुझे थोड़ा परेशान कर रहा था। लेकिन फिर मैंने इस बात को भुलाकर कहा, "ठीक है, मुझे भूख लगी है। क्या आपके पास कुछ खाने का सामान है?" उन्होंने कहा, "आइए" और मुझे बैठाया। वे मेरे जूते के फ़ीते खोलना चाहते थे। मैंने कहा, "ऐसा मत

कीजिए।” वे गंदे थे। उन्होंने मेरे लिए रोटियाँ बनाईं। रोटी बहुत अच्छी नहीं थी, लेकिन उनके पास कुछ और था भी नहीं। उनके पास शहद था। उन्होंने मुझे रोटियों के साथ शहद दिया। मैंने सारी रोटियाँ खा लीं। वे वहाँ बैठकर एक छोटे बच्चे की तरह मेरी देखभाल कर रहे थे। मैंने इन सब बातों को नज़रअंदाज़ किया, और खाना खाकर वहाँ से चला आया।’

स्वामी निर्मलानंद एक मौनी संत थे। उन्होंने कई साल मौन में बिताए थे और नोट लिखकर या पत्र द्वारा अपनी बात बताते थे। उस मुलाक़ात के बाद जग्गी कई बार उनके पास गए और अक्सर उनके लिए फल बतौर भेंट ले जाते थे। चूँकि एक आध्यात्मिक साधक बनने में उनकी कोई रुचि नहीं थी, इसलिए उन्होंने स्वामीजी से कोई मार्गदर्शन नहीं माँगा। लेकिन उनके संबंध बढ़ते रहे और दोनों ने बहुत से अच्छे पल साथ बिताए। ‘मुझे याद है, कभी-कभी वे मुझसे बात करते थे। लेकिन अधिकतर वे काग़ज़ पर लिखकर बात करते थे। वे मुझसे स्नेह करते थे और मुझे भी उनसे स्नेह हो गया था। मैंने कभी परवाह नहीं की कि वे आत्मज्ञानी थे या नहीं। इस बात के मेरे लिए कोई मायने नहीं थे। मैं यह मानने को तैयार न था कि मैं किसी आध्यात्मिक इंसान के पास जाता हूँ, क्योंकि आध्यात्मिकता और मैं दोनों साथ नहीं रह सकते थे। लेकिन मैं उन्हें पसंद करने लगा था। यह एक तरह का मौन प्रेम संबंध बन गया। वे बहुत ही शानदार इंसान थे। वे बड़ी नम्रता और सौम्यता से रहते थे। अगर उन्हें अपनी रोज़ की पूजा के लिए फूलों की ज़रूरत पड़ती तो वे फूलों के गिरने का इंतज़ार करते। वे पेड़ से कभी फूल नहीं तोड़ते थे। सिर्फ़ गिरे हुए फल ही उठाकर खाया करते थे। पेड़ों से फल भी कभी नहीं तोड़ते थे। इस तरह के इंसान थे वे।’

सद्‌गुरु का आध्यात्मिक जीवन शुरू होने के बाद वे इतने व्यस्त हो गए कि स्वामीजी से संपर्क क़ायम नहीं रख सके। लेकिन अपनी शादी के तुरंत बाद वह विजी को स्वामीजी के बी आर हिल वाले आश्रम ले गए। स्वामीजी ने मौन रहते हुए उनका स्वागत किया। शुरू में वे शायद सद्‌गुरु को पहचान न सके, क्योंकि पिछले दशक के दौरान उनका रूप-रंग बहुत बदल चुका था। ‘मेरी दाढ़ी अब पूरी बढ़ी हुई थी। विजी मेरे साथ थी। मैं अब थोड़ा नम्र हो गया था। पहले वाले जोशीले युवक से, अब मैं थोड़ा सौम्य हो गया था,’ सद्‌गुरु मज़ाक में कहते हैं।

लेकिन जब सद्गुरु ने ख़ुद का जग्गी कहकर परिचय दिया, तो अचानक स्वामीजी की आँखें चमक उठीं। 'मोटरसाइकिल मैन!' उन्होंने संकेत में पूछा। सद्गुरु ने हामी भरी। फिर स्वामीजी ने काग़ज़ के एक टुकड़े पर कुछ लिखकर उनको दिया। इसमें लिखा था, 'मैंने तुम्हारी मुस्कराहट पहचान ली।' (स्वामीजी मुस्कराहट को किसी के व्यक्तित्व और उसके आध्यात्मिक विकास का पैमाना मानते थे) सद्गुरु कहते हैं, 'उन्होंने हमारा स्वागत किया और बैठाया। इसके बाद जब कभी भी मैं उनके पास गया, और पहले भी जब मैं उनके पास जाता था, वे मुझे शहद का एक डिब्बा दिया करते थे। यही एक ऐसी चीज़ थी जो वे मुझे भेंट देने के लिए रखते थे। वे मुझे हमेशा दो या तीन लीटर शहद घर ले जाने के लिए देते थे। हमारी बातचीत लंबी चलती थी। वे अपने सवाल लिख देते थे और मैं बोलकर जवाब देता था। वे रोज़ कम से कम अस्सी से सौ पत्र लिखते थे। इसी तरह वे लोगों के संपर्क में रहते थे। उस मुलाक़ात के बाद उन्होंने मुझे पत्र लिखना शुरू कर दिया। लेकिन ज़्यादातर समय मैं घूमता रहता था इसलिए अक्सर उनके पत्रों का जवाब नहीं दे पाता था। मेरी पास अपनी मेज़ नहीं थी। न घर, न चूल्हा, कुछ भी नहीं। उन दिनों मैं बहुत ज़्यादा घूमता था। कभी-कभार ही मैंने उनको जवाब लिखा। वे कभी भी यात्रा नहीं करते थे। उन्होंने लगभग बीस वर्षों से कोई यात्रा नहीं की थी। वे उस दो एकड़ की ज़मीन पर बने आश्रम से बाहर क़दम नहीं रखते थे। वे उन हदों में ही रहा करते थे। उनका आश्रम एक खड़ी चट्टान के ऊपर बना हुआ था। कभी-कभी वे किनारे जाकर पहाड़ों और घाटियों को निहारते और वापस आ जाते, बस।'

*मैं चाहता था कि ध्यानलिंग में शामिल लोग समाधि की अवस्थाओं में रहें। समाधि का एक पहलू यह है कि आपका शरीर के साथ संपर्क बहुत कम हो जाता है। इसे शरीर के सिर्फ़ एक बिंदु पर संपर्क की सीमा तक लाया जा सकता है। हम इसे 'निर्विकल्प समाधि' कहते हैं।*

उनसे यह मुलाक़ात कई तरह से अहम थी। यह विजी की एक ऐसे इंसान से पहली मुलाक़ात थी, जो उसके जीवन के लक्ष्यों को इस तरह से बदलने वाली थी, जिसकी कल्पना ख़ुद विजी ने कभी नहीं की थी। उन्हें देखते ही विजी उनको पसंद करने लगी थी और मैसूर में होने पर वह उनसे मिलने को उत्सुक रहती। उनके पास से लौटते वक़्त रास्ते में हुई एक ख़तरनाक घटना की वजह से भी यह मुलाक़ात एक यादगार है। जब वे सद्‌गुरु की मोटरसाइकिल पर जंगल से होकर तेज़ी से घर की ओर लौट रहे थे, तो अचानक उन्होंने ख़ुद को एक जंगली हाथी के बहुत क़रीब पाया। जग्गी ने मोटरसाइकिल का इंजन बंद कर दिया। विजी डरकर उनसे चिपक गई। उनके और उस जंगली जानवर के बीच तीन फ़ुट से भी कम दूरी थी। हाथी कुछ पेड़ों की तरफ़ मुँह करके खड़ा हुआ था और अभी तक उसने उन दोनों को देखा नहीं था। ठीक पीछे एक छोटा-सा ढलान का रास्ता था। हाथी इंसान की मौजूदगी सूँघकर घूमा। यह अभी नहीं तो कभी नहीं वाली हालत थी। सद्‌गुरु ने अपनी बाइक हाथी के ठीक बग़ल से सनसनाते हुए ढलान पर उतार दी। हाथी ज़ोर से चिंघाड़ा और लगा कि वह उनकी तरफ़ बढ़ रहा है। विजी को इस तरह चल देने की उम्मीद नहीं थी। वह अपने पति के दुस्साहस पर हैरान रह गईं। 'वह गुस्सा हो गई और रोने लगी। वह मुझे मारते हुए कह रही थी, "पागल हो गए हो क्या! ऐसा तुमने क्यों किया?" वह इतनी डर गई थी कि पैंट में उसकी पेशाब निकल गई थी,' सद्‌गुरु ने हँसते हुए बताया। उन्होंने उस मौक़े पर भी इस बात को हँसकर उड़ा दिया था।

जून 1996 में सद्‌गुरु और विजी अपनी बेटी के साथ एक बार फिर स्वामी निर्मलानंद से मिलने गए। अब वे ज़्यादा बूढ़े हो गए थे और कुछ थके हुए और सुस्त लग रहे थे। वे अपने मौन के दौर से बाहर आए थे। उन्होंने सद्‌गुरु को बताया कि वे एक योगी की तरह जिए और योगी की तरह ही मरना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि वे असहाय होकर दूसरों के सहारे ज़िंदगी नहीं खींचना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि अगली ग्रीष्म संक्रांति से पहले वे अपना जर्जर होता शरीर त्याग देना चाहते थे।

उन्होंने पहले ही अपने लिए एक छोटी समाधि बना रखी थी। बातचीत के दौरान उन्होंने सद्‌गुरु से 'महासमाधि' की अवस्था के बारे में कई सवाल

पूछे। उनकी यह जानने की इच्छा थी कि बिना दर्द या तकलीफ़ के शरीर कैसे त्यागा जाए? सद्गुरु कहते हैं, 'उन्होंने बताया कि वे तिहत्तर साल के हो गए थे और एक योगी की तरह मरना चाहते थे, न कि एक रोगी या अपंग की तरह। वे जानना चाहते थे कि क्या ऐसा किया जा सकता है, इसमें वास्तव में क्या होता है। वे इसके बारे में हर तरह की जानकारी चाहते थे। यह पहला मौक़ा था जब मैंने इस विषय पर विस्तार से चर्चा की और उनको एक बिलकुल अलग आयाम के बारे में बताया - कि वह क्या चीज़ है जो किसी इंसान को शरीर छोड़ने से रोकती है और इन बाधाओं से कैसे निबटा जा सकता है। मैंने कुछ चीज़ें विस्तार से बताईं।'

जब सद्गुरु स्वामीजी की शंकाओं का समाधान कर रहे थे, तब विजी बड़े ध्यान से उनकी बातें सुन रही थी। वह अनचाहे ही इस बहुत उच्च स्तर की गूढ़ बातचीत की गवाह बन गई थी। ऐसा वार्तालाप कोई भी किसी नए शिष्य के सामने कभी नहीं करेगा। सद्गुरु को याद आता है, 'यह सब कुछ सुनते हुए वह रोने लगी। वह रोती चली गई। मैं उस पर बिना ध्यान दिए बोलता रहा, क्योंकि विजी किसी भी वजह से रो सकती थी - ख़ुशी हो या कुछ और हो। जो मैं कह रहा था, उससे वह इतनी अभिभूत हो गई कि ख़ुद को रोक नहीं सकी। निर्मलानंद भी बीच-बीच में रो पड़ते थे। वे मुझसे लगातार सवाल पूछते जा रहे थे। हमने ऐसे विषयों पर विस्तार से बात की, जिन पर मैंने पहले कभी भी कहीं नहीं बोला था।'

वापसी में विजी असामान्य तौर पर शांत थी। उसका मन बहलाने के लिए सद्गुरु ने कार रोक दी और उसे पिछली यात्रा के दौरान जंगली हाथी से बाल-बाल बचने की याद दिलाई। लेकिन उसके चेहरे पर मुस्कान नहीं आई। 'मैं उन बातों से उसका ध्यान हटाकर उसका मन हल्का करना चाहता था, लेकिन वह एक अलग ही तरह के मूड में थी। मैं सड़क पर खड़ा था। मेरे सामने यह अविश्वसनीय दृश्य था। मेरी बेटी पास ही खेल रही थी। अचानक विजी मेरे पैरों पर गिर पड़ी। उसने कहा कि वह भी उन्हीं की तरह जाना चाहती है।'

'मैंने कहा, "तुम जाना चाहती हो? तो पहाड़ से कूद जाओ। तुम्हारी समस्या क्या है?" मैं बस मज़ाक में सारी बात उड़ा देना चाहता था।'

'उसने कहा, "नहीं, मैं उनकी तरह जाना चाहती हूँ - पूरी तरह जागरूक रहते हुए। मैं उस तरह से जाना चाहती हूँ।"

'मैंने कहा, "अच्छा, तो कब जा रही हैं आप? यह ख़ुशख़बरी मुझे भी तो सुनाइए।" मैं अभी भी उससे मज़ाक कर रहा था।'

'लेकिन उसमें भावनाएँ उफान पर थीं और उसकी आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। उसने कहा, "नहीं, मैं सचमुच गंभीर हूँ। आपको मेरी मदद करनी होगी।"

तब ख़तरे की घंटी बजनी शुरू हो गई। ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा में विजी की केंद्रीय भूमिका थी। महासमाधि की इच्छा इससे ज़्यादा बेवक़्त नहीं हो सकती थी। सद्गुरु जानते थे कि इस इच्छा को बेक़ाबू नहीं होने दिया जा सकता। लेकिन यह तो बस शुरुआत थी। इसके बाद विजी ने अक्सर अपने पति से महासमाधि की बात उठाई। उन्होंने देखा कि वह दृढ़-प्रतिज्ञ थी और ध्यान भटकने नहीं देती थी। यह बात परेशान करने वाली थी। लेकिन सद्गुरु जानते थे कि वह आध्यात्मिक तौर पर अब भी नौसिखिया ही थी। उसमें अपने लक्ष्य को हासिल करने की न तो परिपक्वता थी, न ही तीव्रता। महासमाधि की प्रक्रिया के लिए साधना की ज़रूरत थी और विजी ने अभ्यास जारी रखने में कोई रुझान कभी नहीं दिखाया था। सौभाग्य से वह अभी तक अपरिपक्व थी और उसकी कोई तैयारी नहीं थी।

लेकिन जिस चीज़ को उन्होंने तौला नहीं था, वह था उसका दृढ़ निश्चय। क्योंकि उस दिन के बाद से विजी एक बदली हुई इंसान थी। उसके चेहरे पर नई चमक थी, उसका जीवन एक नए उद्देश्य के बोध से भर गया था। 'उस दिन से वह एक बिलकुल अलग इंसान थी। उसे जानने वाले यही जानते थे कि वह कितनी चंचल थी, ज़्यादातर समय एक छः साल की बच्ची जैसी हरकतें करती थी। लेकिन अचानक पिछले आठ नौ महीनों में वह पूरी तरह से केंद्रित हो गई थी। यह सब उसी दिन से शुरू हुआ था। मैंने कहा, "ठीक है, तो क्या तुम कुछ साधना करने को तैयार हो? चलो देखते हैं तुम कितनी गंभीरता से यह करती हो।" मैंने कभी नहीं सोचा था कि उसमें हमेशा के लिए इसमें लग जाने की धुन होगी। इसके लिए तो चौबीसों घंटे की लगन और प्रतिबद्धता चाहिए। लेकिन साथ ही मैं किसी को इस संभावना को हासिल करने से मना भी नहीं कर सकता था।'

सद्‌गुरु पहले ही ध्यानलिंग मंदिर बनाने की योजना के साथ इतने व्यस्त थे कि किसी तरह के ख़तरे के संकेत पर उनका ध्यान नहीं जा सकता था। जैसे-जैसे विजी का इरादा पक्का होता गया, वे इस बदलाव के प्रति सिर्फ़ सतही तौर पर ही जागरूक हुए। उन्हें हर हालत में विश्वास था कि वह ऐसा कमाल ख़ुद अपने बलबूते पर कभी हासिल नहीं कर सकती। 'मैंने सोचा कि अगर ऐसा कोई कर सकता था तो वह भारती थी, क्योंकि वह अपने प्रति कुछ अनासक्त थी। लेकिन विजी हमेशा मुझसे चिपकी रहती थी। मैंने कभी नहीं सोचा कि उसमें इसके लिए क़ाबिलियत थी।' उन्होंने अपने आसपास के कुछ लोगों को इस बारे में बताया, लेकिन उन्होंने इसे हँसी में उड़ा दिया। अगर कोई एक इंसान महासमाधि के लिए नाक़ाबिल लगता था, तो वह थी विजी। किसी पूरी तरह से एकनिष्ठ आध्यात्मिक साधक के लिए भी यह लक्ष्य बहुत दूर और असाध्य लगता था। हाल में आई परिपक्वता के बावजूद विजी इतनी अस्थिर और डाँवाडोल लगती थी कि वह महासमाधि के लिए पात्र नहीं लगती थी।

*मैंने अपने अंदर एक प्रचंड संकल्प महसूस किया। हमारे रास्ते में आने वाली हर चीज़ नगण्य लगी। लेकिन मन में कुछ नाराज़गी भी थी : मेरे मार्गदर्शक, मेरे गुरु, राजाओं के राजा ने इस जन्म में शादी करने की क्यों ठानी?*

वे कहते हैं, 'मैंने उसे कुछ बिलकुल साधारण क़िस्म की साधना करने को दी मगर उसने पूरे समर्पण के साथ उसे किया। कुछ ही महीनों में मैंने देखा कि वह वाक़ई काफ़ी आगे बढ़ रही थी। वह अगले छह या आठ महीनों में दुनिया से जाने के बारे में बड़े विश्वास से बातें भी करने लगी। तब मैंने उसकी लगन को डिगाने और उसकी रफ़्तार थोड़ी धीमी करने की कोशिश की। मैंने उसे याद दिलाया कि आख़िर बारह वर्षों तक सड़कों पर रहने के बाद अब हमारे पास रहने को एक जगह थी। पहली बार उसके पास कोई जगह थी, जिसे वह अपना कह सकती थी। वह खाना पका सकती थी और घर-गृहस्थी चला सकती थी। मैं जानता था कि ये बातें उसके लिए काफ़ी

मायने रखती थीं। हमारी बेटी सात साल की होने जा रही थी। और विजी ने भी अभी खिलना शुरू ही किया था। भीतरी अपरिपक्वता, समस्याओं और संघर्षों के लंबे दौर के बाद उसके लिए सभी चीज़ें सुधर रही थीं। इसलिए मैंने कहा, "इस वक़्त ही क्यों? जल्दी किस बात की है?"

'उसने कहा, "अभी मैं अंदर से बहुत ही शानदार महसूस कर रही हूँ और बाहर भी हर कोई मुझ पर बहुत मेहरबान है। मुझे नहीं मालूम कि मैं कितने समय तक इसे क़ायम रख सकूँगी। सारी ज़िंदगी मैं दुविधा में रही, उथल-पुथल में रही, भावनात्मक उतार-चढ़ावों से गुज़री। इस वक़्त मैं उस मुक़ाम पर हूँ जहाँ मैं होना चाहती हूँ। अगर कल मेरी बच्ची को या आपको कुछ हो गया, तो शायद उसका मुझ पर बहुत गहरा असर पड़े और मैं फिर वैसी हो जाऊँ। लेकिन इस वक़्त मेरे लिए कुछ भी मायने नहीं रखता है। अभी मैं ऐसी अवस्था में हूँ। यही मेरे जाने का सही समय है।"

'इसके लिए मेरे पास कोई तर्क नहीं था, क्योंकि मैं जानता था कि यह सच था। मैंने कहा, "कुछ साल इंतज़ार करो, इसका आनंद लो, फिर जाओ।"

'लेकिन उसने कहा, "इस वक़्त तुम नहीं चाहते कि मैं जाऊँ। लेकिन कुछ सालों बाद हो सकता है कि तुम ऐसा चाहो!"

इसे याद करते हुए सद्‌गुरु हँस पड़ते हैं। 'ऐसे ज्ञान के ख़िलाफ़ मेरे पास कोई तर्क नहीं था! इसलिए एक पति के तौर पर मैंने उसे निरुत्साहित करने की कोशिश की। लेकिन गुरु के तौर पर मैं उसे नहीं रोक सका।'

प्राण-प्रतिष्ठा के लिए कराए जाने वाले अभ्यासों ने विजी के संकल्प को और प्रेरणा देने में अपनी भूमिका निभाई और उसके सपने उसकी पहुँच तक आ गए। सद्‌गुरु कहते हैं, 'मैं चाहता था कि ध्यानलिंग में शामिल लोग समाधि की कुछ ख़ास अवस्थाओं में रहें। समाधि का एक पहलू यह है कि आपका शरीर के साथ संपर्क बहुत कम हो जाता है। इसे शरीर के सिर्फ़ एक बिंदु पर संपर्क की सीमा तक लाया जा सकता है। हम इसे 'निर्विकल्प समाधि' कहते हैं। इसका मतलब है कि आपके शरीर के साथ आपका संपर्क न्यूनतम है, एक धागे की तरह। अगर आप यह धागा तोड़ देते हैं तो यह महासमाधि हो जाती है। लेकिन सिर्फ़ एक धागे की पकड़ बनाए हुए जीवित रहना अच्छा है, क्योंकि तब आप शरीर से लगभग मुक्त होते हैं और जीवित

भी रहते हैं। आपको कुछ चीज़ें करनी होती हैं। आपको अब भी थोड़ा भोजन करना होता है, शौचालय जाना होता है। लेकिन बाक़ी हर तरीक़े से आप शारीरिक प्रक्रियाओं से मुक्त रहते हैं। जीने का यह अच्छा तरीक़ा है। आम तौर पर जब लोग इस अवस्था में होते हैं, तो हम उन्हें निष्क्रियता और सुरक्षा के ख़ास स्तरों पर रखते हैं। हम उन्हें संरक्षित वातावरण में रखते हैं। हम उन्हें बाहरी हालात के संपर्क में नहीं आने देते। क्योंकि ज़रा-सी बाधा से ही वे अपना शरीर छोड़ सकते हैं। सिर्फ़ एक पिन चुभोने से ही वे शरीर को हमेशा के लिए त्याग सकते हैं। लेकिन जब हम ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा कर रहे थे, तब जो लोग समाधि की अवस्था में थे, मैं उन्हें शारीरिक तौर पर सक्रिय रखना चाहता था। इसमें ख़तरा था। लेकिन प्रक्रिया के लिए इसकी ज़रूरत थी। तो मैं उन्हें सिखा रहा था कि कैसे सक्रिय रहें। इससे विजी को एक ख़ास क्षमता विकसित करने का ज़बर्दस्त मौक़ा मिला। वह पूरी तरह उसमें जुट गई।'

अक्टूबर 1996 में सद्‌गुरु जनवरी के अपने कार्यक्रमों की योजना बना रहे थे। उस समय अचानक उनको सहज ज्ञान से आभास हुआ कि प्रस्तावित कक्षाएँ संभव नहीं हो सकेंगी। उन्होंने कक्षाओं को रद्द करने का फ़ैसला किया। 'मैंने राजा से कहा, "मुझे लगता है कि जनवरी के अंतिम सप्ताह में कार्यक्रम नहीं हो सकेंगे। मुझे यह ठीक नहीं लग रहा है। इन्हें खिसकाकर फ़रवरी के पहले सप्ताह में कर दो।" राजा ने मुझसे पूछा कि कहीं मेरा कोई निजी काम तो नहीं है? मैंने कहा, "नहीं, मुझे बस लग रहा है कि उन दिनों के तय कार्यक्रमों को स्थगित करना पड़ सकता है।" आसपास के दूसरे लोगों ने इसकी वजह पूछी लेकिन वे कोई जवाब नहीं दे सके।

नवंबर के अंत तक लिंगम की संरचना आश्रम में आ चुकी थी। सद्‌गुरु ने अब उड़ीसा में सम्बलपुर की यात्रा की। उन्हें वहाँ मुक्तेश्वर मंदिर के जीर्णोद्धार की शुरुआत करानी थी। वे विजी को अपने साथ ले गए। यह यात्रा बड़ी विचित्र साबित हुई। एक पुराने शिष्य को याद है कि मंदिर जाने के बाद सद्‌गुरु आसपास के जंगल में बड़ी तेज़ी से टहलने लगे। रात का समय था और कुछ लोग उनके पीछे-पीछे गए। एक छोटे से तालाब पर (जिसमें महानदी से पानी आता है) पहुँचकर वे ठिठककर रुक गए। उन्होंने दूसरे लोगों को रुकने का इशारा किया और ख़ुद चलते रहे। वे तालाब

के चारों ओर घूमे और एक पुराने पेड़ के सामने अचानक रुक गए। वे इसे बहुत देर तक एकटक देखते रहे। उनकी आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। तभी अचानक उन्होंने अपने गले से माला निकाली और पेड़ पर रख दी। उनके ऐसा करने से वहाँ खड़े लोगों में भी हैरान कर देने वाली प्रतिक्रियाएँ पैदा हुईं। कुछ रोने लगे, दूसरे ज़मीन पर गिरकर लोटने लगे मानो उन पर किसी आत्मा का साया हो। वह वातावरण एक तीव्र ऊर्जा से भरा हुआ लग रहा था।

कोयम्बतूर लौटने पर सद्‌गुरु ने बताया कि वे एक ऐसे मंदिर में गए थे, जिसे किसी पिछले जन्म में वे बहुत क़रीब से जानते थे। 'बिल्वा अपने क़बीले के बहुत सारे लोगों को सम्बलपुर लाने की कोशिश कर रहा था। वह अक्सर अपने परिवार के साथ इसी पेड़ के नीचे डेरा डालता था। हैरानी की बात यह थी कि यह पेड़ इतनी सदियों से कैसे खड़ा था? किसी ने इसे काटकर गिराया नहीं। पुराना पेड़ ख़त्म हो गया था और बस उसकी छाल ही बची थी। पुराने पेड़ के खोल में ही नई कोंपलें उग आई थी, इसलिए एक तरह से यह वही पेड़ था।'

दिसंबर 1996 में सद्‌गुरु विजी और आश्रम के कई निवासियों को स्वामी निर्मलानंद के आश्रम ले गए। स्वामी बहुत कमज़ोर लग रहे थे और यह साफ़ ज़ाहिर था कि उनकी महासमाधि का दिन दूर नहीं था। वे बहुत शांत इंसान थे। साथ आए साधकों को उनकी मौजूदगी पवित्र लगी। कुछ की आँखों में आँसू आ गए थे। स्वामी ने उन्हें दिलासा दी। उन्होंने शांतिपूर्वक कहा, 'अगली बार जब आप यहाँ आएँ तो शायद मैं न मिलूँ। लेकिन आप मेरी मौजूदगी हर जगह महसूस करेंगे।' उन्होंने साधकों को निडर रहने की सलाह दी। उन्होंने उन्हें आश्वस्त किया कि उनके पास जो गुरु हैं वे उन्हें सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धियों तक ले जाने में सक्षम हैं। उन्होंने कहा, 'उन पर भरोसा करो और अपनी साधना के प्रति ईमानदार रहो। बाक़ी उन पर छोड़ दो।'

स्वामी के आख़िरी कुछ महीने उनके लिए मुश्किलों से भरे थे। उनकी महासमाधि की घोषणा से विवाद पैदा हो गया था। कर्नाटक के 'रैशनलिस्ट' गुटों ने इसे आत्महत्या की कोशिश बताया। इसे एक रूढ़िवादी परंपरा बताते हुए उन्होंने इसके ख़िलाफ़ ज़बर्दस्त विरोध का नेतृत्व किया। आश्रम

में जाँच-पड़ताल के लिए पुलिस भी आई। सद्गुरु बताते हैं, 'जब हम वहाँ पहुँचे, उस वक़्त आश्रम में दो पुलिस कांस्टेबल थे। स्वामी मुझे पकड़कर रोने लगे। उन्होंने कहा कि ज़रा देखो, मैंने जीवन भर इस आश्रम में एक फूल भी नहीं तोड़ा, लेकिन उन लोगों ने यहाँ पुलिस तैनात करा दी है।'

*वेंकन्ना बाबू की आँखें कुछ समय तक बंद रहीं। थोड़ा रुककर उन्होंने कहा, तुम्हारे गुरु कोई साधारण इंसान नहीं हैं। वे तो महासागर से भी विशाल हैं। लेकिन मौजूदा हालात उनके ख़िलाफ़ हैं और इसका असर उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ेगा।*

'मैंने कहा, "आप क्यों परेशान होते हैं? यहाँ बैठे ये दो आदमी आपका क्या बिगाड़ लेंगे?" उन्होंने कहा, "लेकिन वे सोचते हैं कि मैं आत्महत्या करने जा रहा हूँ।"

'मैंने कहा, "आप परेशान न हों, आप तो जानते हैं आपको किस तरह से क्या करना है।" और जो किए जाने की ज़रूरत थी, मैंने वह विस्तार से बताया। लेकिन वे दुखी थे, क्योंकि पुलिस हर समय उन पर नज़र रखे हुए थी ताकि वे अपना जीवन समाप्त न कर लें।'

स्वामी ने आख़िरकार एक बयान जारी किया जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि एक ऐसा इंसान जिसने एक लंबा और आध्यात्मिक तौर पर सार्थक जीवन जिया हो, उसके लिए शरीर छोड़ने का फ़ैसला इतना ही स्वाभाविक है, जितना एक पुराने पत्ते का पेड़ से गिरना। उन्होंने कहा कि आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके किसी इंसान के लिए शरीर एक असहनीय बोझ बन जाता है, दूसरे इस बात को नहीं समझ सकते कि ऐसे इंसान के लिए अपने शरीर को धारण किए रहना कितना पीड़ादायक होता है। उन्होंने कहा कि बिना किसी हिंसा के सचेतन तरीक़े से शरीर छोड़ने की इस देश की आध्यात्मिक विरासत में कई सम्मानजनक मिसालें हैं। उन्होंने आंदोलन करने वालों से अपील की कि वे लोगों के दिमाग़ में बेकार का कोई भ्रम पैदा न करें और उन्हें शांति से शरीर छोड़ने दें। तिहत्तर वर्षीय स्वामी ने आख़िरकार 10 जनवरी 1997 को अपना शरीर त्याग दिया। सद्गुरु कहते हैं, 'जनवरी की एक शुभ दोपहर के

समय वे आए और अपनी समाधि में बैठे। लगभग पचपन लोग इस बात के गवाह थे, उन्होंने सहजता से अपना शरीर छोड़ दिया। पुलिस उन्हें पकड़ नहीं सकी। तर्कवादियों ने तर्क दिया, "उन्होंने कोई ज़हर खा लिया होगा। उनका पोस्टमार्टम किया जाना चाहिए।" लेकिन ज़हर खाकर इंसान कैसे समाधि तक चलकर जाएगा, पालथी मारकर बैठेगा और मुस्कराता हुआ इस तरह चला जाएगा?'

स्वामी से आख़िरी मुलाक़ात का ईशा साधकों पर गहरा असर पड़ा। एक साधक कहते हैं, 'स्वामी और सद्गुरु को एक साथ देखना बहुत ख़ास अनुभव था। यह अरुद्र दर्शन का (तमिल उत्सव, जिसमें शिव के तांडव नृत्य का समारोह मनाया जाता है और यह वर्ष की सबसे लंबी रात मानी जाती है) दिन था। इस मौक़े पर उन दोनों के एक साथ होने से उस पल का महत्त्व और बढ़ गया। यह सूर्य और चंद्रमा को एक साथ देखने जैसा था।'

दिसंबर के तीसरे हफ़्ते में सद्गुरु ने भारती को फ़ोन किया। उन्होंने उससे पूछा कि क्या वह पंद्रह दिन की कार यात्रा पर विजी, उनकी बेटी और उनके साथ जाना चाहेगी? इसे उनकी पारिवारिक छुट्टियाँ समझकर उसमें शामिल न होने की इच्छा होते हुए भी वह तैयार हो गई। इसका मतलब यह था कि वह फिर से अपने परिवार के लिए इंतज़ाम करे। वह मुस्कराते हुए कहती है, 'लेकिन तब तक मैं तरकीब लगाना सीख गई थी। चूँकि यह क्रिसमस-पोंगल का समय था और मेरे बच्चों के स्कूल की छुट्टियाँ थीं, तो मैंने उन्हें हैदराबाद अपने भाई के घर भेज दिया।' वह छब्बीस दिसंबर को सद्गुरु और उनके परिवार के साथ निकल पड़ी। किसी को भी इस यात्रा के मक़सद की कोई जानकारी नहीं थी, और उनमें से किसी को भी अंदाज़ा नहीं था कि यह सफ़र किस हद तक मार्गप्रदर्शक साबित होगा।

हालाँकि ध्यानलिंग का काम तेज़ी से चल रहा था, पर सद्गुरु को एहसास था कि कर्मों की कुछ बाधाएँ बची हुई थीं, जो इस प्रक्रिया में दोनों भागीदारों के पूर्ण रूप से एक हो जाने में दख़ल दे रही थीं। हालाँकि विजी और भारती सहयोग देने के लिए पूरी तरह तैयार थीं, लेकिन अवरोध के कुछ ऐसे अचेतन क्षेत्र थे, जिन्हें ठीक करने की ज़रूरत थी। गहरी दबी गाँठों को खोलने का आदर्श तरीक़ा उन जगहों की साथ-साथ यात्रा करना था, जो उनके पिछले जन्मों में महत्त्व के थे।

भारती, जो विजी की तरह ही यात्रा के उद्देश्य से अनजान थी, यात्रा के उन पलों को याद करती है, जब उसे लगा कि अगर वह उनके साथ नहीं जाती तो यह ज़्यादा आसान होता। 'मेरे सामने यह बात साफ़ होती जा रही थी कि विजी अपने पति पर सिर्फ़ अपना हक़ मानती थीं। जिस तरह युवा लोग उनको भगवान जैसा मानने लगे थे और उनके पीछे पागल थे, इसको लेकर उनमें असुरक्षा की भावना घर कर रही थी। उन्होंने महासमाधि लेने की जो बात सद्गुरु से की, वह भी मुझे बेवकूफ़ी भरी लगी। मुझे यह किसी बच्चे का बार्बी डॉल के बारे में बात करने जैसा लगा। मैंने उनसे पूछा, "महासमाधि क्यों? मरना क्यों? क्यों न जीवित रहकर उनकी मदद करो?" जब मैं ऐसी बातें करती तो वे अपने खोल में सिमट जातीं। कभी-कभी मुझे उन पर एक तरह का गुस्सा आता - कि मेरे गुरु की पत्नी एक ऐसी स्त्री है, जो उनके जीवन के मिशन की विशालता को समझ नहीं सकी। अब मैं सोचती हूँ कि शायद मैं उनके साथ थोड़ी नरम हो सकती थी। एक स्त्री के तौर पर उनकी पीड़ा मैं कभी नहीं समझ सकी और अक्सर उन्हें नीची दृष्टि से देखती थी। ऐसा इसलिए था क्योंकि मैं यह नहीं समझ सकी कि वे उन्हें बस एक पति की भूमिका तक ही क्यों सीमित रखना चाहती थीं, जबकि साफ़ तौर पर वे उससे कहीं ज़्यादा थे।'

यात्रा का पहला पड़ाव ओडिशा की पश्चिमी सीमा पर सम्बलपुर में था। अच्छी-ख़ासी आदिवासी आबादी वाला यह शहर हीराकुड बाँध से सोलह किलोमीटर दक्षिण की तरफ़ है। यह हीरा व्यापार का पुराना केंद्र था और आजकल कपड़ा उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यह वज्रयान बौद्धों का भी प्रसिद्ध केंद्र है। फिर सद्गुरु का ग्रुप सम्बलपुर से एक घंटे की दूरी पर स्थित मुक्तेश्वर मंदिर की ओर बढ़ गया।

इस प्राचीन मंदिर के पास पहुँचते ही भारती को साफ़ तौर पर एहसास हुआ कि वह जगह उसके लिए नई नहीं थी। इस जगह ने उसके मन में चाह और दुख का मिलाजुला भाव पैदा कर दिया, जो बढ़ता चला गया और असहनीय हो गया। इस गहरे और शक्तिशाली अनुभव ने उसे ख़ामोश कर दिया और वह ख़ुद में सिमट गई। भारती ने बताया, 'यात्रा के दौरान सद्गुरु ने विजी को कई बातें समझाईं - हम जिन जगहों पर जा रहे थे उसकी वजह, उनका महत्त्व, वगैरह। मेरे मन में ज़्यादा सवाल नहीं थे। सम्यमा कार्यक्रम के दौरान मुझे पहले ही कुछ झलकियाँ मिल चुकी थीं, जिससे कई जगहों को

मैं तुरंत पहचान गई।' तीनों ने तीन दिनों तक उस मंदिर में ध्यान किया। भारती आसानी से अपनी ध्यान प्रक्रिया में चली जाती थी। उसे वह स्थान ऊर्जा से सराबोर लगा और ध्यान सत्रों के बाद वह अक्सर खड़ी नहीं हो पाती थी।

उनकी सम्बलपुर की दोनों यात्राओं का इंतज़ाम करने वाले एक पुराने शिष्य ने ग़ौर किया कि पंद्रह दिन पहले जब विजी यहाँ आई थी, तबसे वे अब काफ़ी बदल गई थीं। अब सद्गुरु के प्रति उनका दृष्टिकोण कम लापरवाही भरा और अधिक श्रद्धापूर्ण था। उनकी अपनी मौजूदगी में कुछ ऐसी बात थी जिसकी वजह से उनके प्रति आदर पैदा होता था।

अब सद्गुरु ने बिल्वा के जीवन के घटनाक्रम का अनुसरण करने का फ़ैसला किया। वे जानते थे कि उस सँपेरे की बस्ती कहीं आसपास ही होने की संभावना थी। लेकिन उन्हें मालूम नहीं था कि उस कस्बे का नाम क्या था या वह किस दिशा में था। इस बात से परेशान हुए बिना वे चारों अनजान ठिकाने की अनिश्चित खोज में जुट गए। उनके पास इसके लिए न तो कोई नक़्शा था, न सुराग, न मार्गदर्शन। यह ऐसा अभियान था जिसे पूरा होने में महीनों लग सकते थे। फिर भी उन्हें किसी बंद गली का सामना नहीं करना पड़ा। वे सब जीप से यात्रा कर रहे थे। सद्गुरु पूरी तरह अपने अंतर्बोध के आधार पर ड्राइवर को निर्देश दे रहे थे। वे जीप को ओडिशा की सीमा के दूसरी तरफ़ छत्तीसगढ़ के शहर रायगढ़ ले गए।

जीप के वहाँ पहुँचने पर भारती पर पिछले जीवन के अनुभव फिर से हावी होने लगे। यह जगह उसे जानी-पहचानी जैसी लगी। उसे ज़रा भी शक नहीं था कि उसका कोई बहुत प्रिय इंसान यहाँ रहा करता था। वे सीधे एक छोटे से शिव मंदिर की ओर बढ़े। जैसे ही उसने मंदिर में क़दम रखा, भारती जान गई कि यह वही मंदिर था जिसे उसने दूसरी सम्यमा साधना के दौरान अपने मानस-पटल पर उभरे दृश्य में देखा था। जब वह छोटी बच्ची थी, तब मंदिर के घंटे की आवाज़ उसके सपनों में अक्सर आती थी। इस मंदिर के घंटे की आवाज़ बिलकुल वैसी ही थी, जैसी उसे पहले सुनाई दिया करती थी। उसे याद है, 'बचपन से ही मेरी नज़रों में कहीं दूर एक छोटा-सा मंदिर घूमा करता था। इस शिव मंदिर को देखते ही मैं जान गई कि पिछले जीवनकाल में मैं यहाँ बचपन में पूजा करने आया करती थी।'

सदगुरु के लिए भी उनका अनुभव उतना ही जीवंत था। 'रायगढ़ की वह सड़क बिलकुल वैसी ही थी, जैसी वह पहले थी। सब कुछ वैसा ही था, जैसा मुझे याद था। वही ब्राह्मणों का मुहल्ला, मंदिर, सब कुछ। उसके तुरंत बाद इस मंदिर का जीर्णोद्धार किया गया था। लेकिन उस वक़्त तो सब कुछ समय के साथ स्थिर हो गया था, मानो उन्हें हमारे फिर से आने और पहचान लिए जाने का इंतज़ार हो।'

उस मंदिर में ध्यान करने के बाद सद्गुरु उन लोगों को मंदिर के बाहर एक पेड़ के पास ले गए। यह एक नाले के सामने था। हालाँकि यह दूसरे कई पेड़ों के बीच में था, फिर भी इसमें कोई शक नहीं था कि वह उनसे कुछ अलग था। यह अब भी एक विशुद्ध ऊर्जा से स्पंदित था और इन लोगों ने इसे तुरंत पहचान लिया। चार सौ साल के बाद भी यह उन्हें समय और स्थान के एक दूसरे आयाम में ले गया। यहीं पर एक नौजवान ने अपने जीवन की आख़िरी चंद साँसें ली थीं। सद्गुरु कहते हैं, 'जब बिल्वा गिरा था तो उसका चेहरा नीचे की तरफ़ था। जब हम उस पेड़ के पास पहुँचे तो उस शरीर की ऊर्जा तब भी ज्यों की त्यों थी। कुछ भी नहीं बदला था।' सद्गुरु ने बताया कि बिल्वा के जीवन के वे अंतिम कुछ मिनट किसी दैवी कृपा के हस्तक्षेप से पूर्ण चेतना में बीते थे। 'इसी वजह से ईशा में साँसों पर ध्यान केंद्रित करने का कुछ-कुछ ज़हर सा असर होता है।' सद्गुरु अक्सर कहते हैं, 'कहीं और साँसों पर ध्यान देना काफ़ी शीतल और शांतिदायक होता है। ईशा में यह काफ़ी प्रचंड होता है। यहाँ बैठकर अगर आप अपनी साँसों पर ध्यान देते हैं, तो यह पागलपन जैसा उन्माद पैदा करता है। ऐसा लगेगा, मानो आप ज़िंदगी और मौत की कगार पर हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि इस आदमी ने अपनी प्राण-वायु पर उस समय नज़र रखी थी, जब यह धीमी पड़ रही थी। यह जागरूकता आसानी से नहीं आई थी। यह तब हुआ, जब उसकी साँस लगभग ख़त्म हो चुकी थी।'

*कर्म-यात्रा के बाद अब वह पूर्णिमा के चाँद की तरह चमक रही थी। जिसने भी उसे उन आख़िरी सप्ताहों में देखा, वह साफ़ बता सकता था कि अब वह बिलकुल अलग थी। जो भी उससे मिला, सभी ने कहा - वाह, तुमने क्या पत्नी पाई है।*

अपनी वापसी के दौरान यह ग्रुप आंध्रप्रदेश के विशाखापत्तनम शहर से होकर गुज़रा। यहाँ भी सद्गुरु ने कुछ खोजने का फ़ैसला किया। भाग्य ने इस बार भी उनका साथ दिया। हर बार जब वे किसी नई दिशा में जाते, वह भी मुख्य रास्ता बनता हुआ लगता, हर बार नई तरफ़ मुड़ना भी मंज़िल का एक और मार्ग बन जाता। सद्गुरु अक्सर आंध्रप्रदेश के रायलसीमा इलाक़े में किसी जगह के बारे में भारती से पूछते थे। उन्हें इसका नाम मालूम नहीं था। चूँकि वह राज्य के तटीय इलाक़े की रहने वाली थी, इसलिए वह उनकी मदद नहीं कर पाती थी। अब ग्रुप ने फिर से अपनी यात्रा की योजना में बदलाव करने का इरादा किया। बेंगलुरु होते हुए कोयम्बतूर लौटने के बजाय उन्होंने हैदराबाद जाने का फ़ैसला किया। एक रात वहाँ बिताने के बाद उन्होंने फिर यात्रा शुरू की। चार घंटे के बाद वे एक छोटे से कस्बे कडप्पा के पास पहुँचे। सद्गुरु फिर से अपने अंतर्बोध के अचूक राडार के मार्गदर्शन में सीधे शिव मंदिर तक गए।

मंदिर के पास पहुँचने पर सद्गुरु मौन हो गए। इसके भीतर प्रवेश करते ही भारती को एक जानी-पहचानी ऊर्जा का उफान महसूस हुआ। वह तुरंत जान गई कि यही वह जगह है, जहाँ अपने पिछले जन्म में उसने अपने गुरु के साथ समय बिताया था। वहीं पर सद्गुरु श्री ब्रह्मा और उनके शिष्य ने ध्यानलिंग का खाका तैयार किया था। उन्होंने भविष्य के शिष्यों के जीवन, यहाँ तक कि उन कोखों को भी तय किया था, जिनसे उन्हें जन्म लेना था। इन लोगों ने कुछ देर तक यहाँ ध्यान किया। उन्हें पता चला कि यह मंदिर कई वर्षों से वीरान पड़ा हुआ था और हाल ही में उसका जीर्णोद्धार हुआ था।

विजी ने पाया कि किसी अनजान वजह से इस मंदिर में ठहरने के दौरान वह भारती से नज़रें नहीं मिला पा रही थी। हालाँकि भारती इस बात से हैरान थी, लेकिन कहीं न कहीं वह इसकी वजह जानती थी। मंदिर में उसके रवैये और हावभाव में ख़ासा बदलाव दिखा। 'मैं जानती थी कि यहाँ मेरे और सद्गुरु के बीच काफ़ी कुछ हुआ था, और मैंने अचानक उनके प्रति सुरक्षात्मक रवैया महसूस किया। मैं जानती थी कि मैं पहले अपने गुरु को पीड़ा और पराजय की स्थिति में देख चुकी थी, और अब उन्हें फिर से असफल होता नहीं देखना चाहती थी। मैंने अपने अंदर एक प्रचंड संकल्प महसूस किया। हमारे रास्ते में आने वाली हर चीज़ नगण्य लगी। लेकिन मन

में कुछ नाराज़गी भी थी : मेरे मार्गदर्शक, मेरे गुरु, राजाओं के राजा ने इस जन्म में शादी करने की क्यों ठानी?'

इसका एहसास भारती को बाद में हुआ कि पिछले जन्म में सद्गुरु श्री ब्रह्मा के साथ मंदिर में बिताया समय दोनों के लिए काफ़ी कठिन था। यह वह वक़्त था, जब उनका रवैया अपने गुरु की ख़ातिर लड़ाई मोल लेने की हद तक रक्षात्मक था। मंदिर की शक्तिशाली ऊर्जा ने उनके मन की गहराई में छिपी इस उग्रता को फिर उभार दिया था। इसमें कोई हैरत की बात नहीं थी कि इस बदले हुए विचित्र मिजाज से विजी सहम गई थी। मंदिर से रवाना होने पर यह आक्रामक रुख़ उतनी ही तेज़ी से ठंडा भी पड़ गया, जितनी तेज़ी से यह उठा था।

भारती को याद है कि इस यात्रा का उन पर तात्कालिक असर यह पड़ा था कि वह अपने कुछ रिश्तों और घटनाओं को लेकर कुछ छोटे-मोटे परी-कथाओं जैसे लगावों से मुक्त हो गई। इसने उसके और विजी के बीच का तनाव काफ़ी कम कर दिया था। यह सफ़ाई सिर्फ़ मनोवैज्ञानिक स्तर पर ही नहीं हुई थी, बल्कि काफ़ी गहराई में कुछ हुआ था। सद्गुरु की बेटी ने इसकी पुष्टि अनजाने में कर दी। जब वे एक लंबे ध्यान के बाद मंदिर से बाहर आए, तो वह सहज ही भारती को 'अम्मा' पुकारती हुई उसकी तरफ़ दौड़ी। एक पल बाद उसे अपनी ग़लती का एहसास हुआ। हालाँकि यह घटना छोटी थी, लेकिन इस बात की गवाह थी कि अब उन दोनों से ऐसी ऊर्जा प्रवाहित हो रही थी, जो पहले से कहीं ज़्यादा तालमेल में थी।

यह बहुत तूफ़ानी यात्रा थी। उन्होंने छह राज्यों और पाँच हज़ार किलोमीटर की लंबी दूरी बारह दिनों में तय की थी। छह दिन तो गाड़ी चलाते हुए बीते थे और कई रातें गाड़ी में ही बितानी पड़ी थीं। लेकिन इन यात्रियों के लिए यह सिर्फ़ एक व्यस्त ट्रिप से कहीं ज़्यादा थी। इस दौरान वे कई जन्मों से होकर गुज़रे थे। उनकी यात्रा ने कई अलग-अलग कड़ियों को उनकी नज़रों के सामने ला दिया था, जिनसे उन सबके जीवन एक साथ जुड़े थे। सद्गुरु ने अगर इसे 'कर्म-यात्रा' कहा तो इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है। यह किसी तीर्थयात्रा से कम नहीं थी। यह अपने पिछले जन्मों में फिर से घूम-फिरकर, अचेतन मन की गहराई में छिपी रुकावटों और पहचानों को विसर्जित करने का एक मौक़ा था।

वापस लौटते समय ध्यानलिंग की स्थापना अचानक कम दूर और कम मुश्किल लगी। अब यह सपना कम और एक निकट की संभावना ज़्यादा लग रही थी। सद्गुरु याद करते हुए कहते हैं, 'जब हम लौट रहे थे, तब मैंने विजी और भारती से प्रतिज्ञा कराई कि फ़रवरी में आने वाली अगली पूर्णमासी तक हम प्राण-प्रतिष्ठा पूरी कर लेंगे। मैंने कहा कि चाहे जो भी पारिवारिक मजबूरियाँ हों, चाहे जो भी करना पड़े, हम इसे ज़रूर पूरा करेंगे। वे तैयार हो गईं। मैंने कहा, "इतना ही काफ़ी नहीं है, तुम्हें सचमुच शपथ लेनी पड़ेगी।" इसलिए मैंने उनसे वाक़ई तीन बार ज़ोर-ज़ोर से शपथ कहलवाई और उन्होंने शपथ ली भी।'

हालाँकि सद्गुरु इस यात्रा से बहुत थक गए थे, फिर भी उन्होंने जल्दी ही एक सत्संग आयोजित किया। वे अपने शिष्यों से यह साझा करने को उत्सुक थे कि इस यात्रा का क्या फल निकला और यह महत्त्वपूर्ण खोज क्या दर्शाती है। उन्होंने घोषणा की, 'मेरे पास आपको दिखाने के लिए कुछ नहीं है, लेकिन निश्चय ही हम आपके लिए एक ज़बर्दस्त तोहफ़ा लाए हैं।' उन्होंने बताया कि इस कर्म-यात्रा में ज़रा सी भी अड़चन नहीं आई, मानो सारा अस्तित्व ही इस बात के इंतज़ार में हो कि हम इसे संपन्न करें। उन्होंने विजी और भारती को हाल के दो कोनों में एक त्रिकोण बनाते हुए बैठने को कहा। इसके बाद उन्होंने एक सामूहिक ध्यान का संचालन किया, जिसे उनके साधकों ने बहुत अरसे तक एक असाधारण रूप से शक्तिशाली ध्यान की तरह याद रखा।

उन्होंने बाद में बताया, 'यह यात्रा एक बहुत शक्तिशाली अनुभव था। वे दोनों एक के बाद दूसरे जीवन से तेज़ी से 'फ़ास्ट-फ़ारवर्ड' में गुज़रती गईं। उनके पिछले जीवन की तमाम घटनाएँ सामने आती चली गईं... मैं शहर में प्रवेश करने से पहले ही उस जगह के बारे में बिलकुल सही-सही बता देता था, जिससे इन दोनों के मन में भी शंका नहीं आई। वे यह न सोचें कि वे उन चीज़ों की बस कल्पना कर रही हैं। मैं उन्हें बता देता था कि ऊर्जा का स्पंदन किस तरह का होगा, जब तुम उस जगह पर जाओगी तो कौन-सा चक्र जाग्रत होगा... और उनके अनुभव में भी ठीक वैसा ही होता था। यह उससे अलग हो भी नहीं सकता था... चाहे वह कडप्पा हो या सम्बलपुर, हम बिलकुल ठीक-ठीक जान जाते थे कि हमें कहाँ जाना है।

क्योंकि एक बार जब हम उस जगह की तरफ़ बढ़ने लगते हैं, तो स्पंदन इस तरह के होते हैं कि पिछले जन्म के संबंध आपको खींचते हुए वहाँ ले जाते हैं। हम ऐसी तमाम जगहें चुन सकते थे, जहाँ से दोनों के अतीत जुड़े थे, या जिन जगहों से उनके अतीत अलग-अलग जुड़े थे, लेकिन हम उन जगहों पर जाना चाहते थे जो आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थीं। जब हम वहाँ गए तो उन दोनों के लिए आध्यात्मिक आयाम एक जीता-जागता अनुभव बन गया। इसलिए जब वे इन प्रक्रियाओं से गुज़रीं, तो वे सभी बंधन जो उन्हें रोके हुए थे, ढीले पड़ गए। इसके बाद प्राण-प्रतिष्ठा काफ़ी आसान हो गई। इससे पहले भी उनके अंदर कर्म-बंधन तोड़ने की इच्छा थी, इसके लिए ज़रूरी साधना भी थी, लेकिन इस यात्रा ने काम को और आसान बना दिया।'

*एक सिद्ध योगी को भी इसे हासिल करने के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। जिस शीघ्रता से उसने यह हासिल किया है, वह सिर्फ़ उसके प्रेम से संभव हुआ। शायद यही एक चीज़ वह जानती थी। ऐसा लगता है कि 'शम्भो,' जिनके लिए उसका हृदय तड़प रहा था, उसका हाथ पकड़कर अपने साथ ले गए।*

तो अब लक्ष्य पहले के मुक़ाबले ज़्यादा पास लग रहा था। लेकिन परेशानियों की आहटें मिलने लगी थीं। कर्म-यात्रा के तुरंत बाद भारती अपने परिवार के साथ पोंगल मनाने विशाखापत्तनम चली गईं। गाँव में अपने पिता के पुश्तैनी मकान से लौटते वक़्त उनकी ननद ने रास्ते में रुककर एक स्थानीय संत वेंकन्ना बाबू से मिलने का सुझाव दिया। ये संत गोदावरी नदी के किनारे रहते थे।

तांत्रिकों और मंदिरों के प्रति अपने मन में लंबे अरसे से मौजूद अविश्वास की वजह से भारती उनके साथ चलने से हिचक रही थी। मगर चूँकि उन संत का घर रास्ते में ही पड़ता था, इसलिए इंकार करना अशिष्टता लगी। वेंकन्ना बाबू को उस इलाक़े में महान संत की तरह पूजा जाता था। लोग मानते थे कि उनको पूर्वाभास की शक्तियाँ प्राप्त हैं। वे हर शनिवार की

शाम को लोगों से मिलते थे। काफ़ी देर तक प्रार्थना में लीन रहने के बाद वे बाहर आते और लोगों से मिलते थे। वे लोगों के सामने आँखें बंद करके और हाथ में चाँदी की बाँसुरी लेकर खड़े हो जाते, उनके सवाल सुनते और अपनी सलाह देते थे।

भारती और उसकी ननदों ने उनके सादे-से घर में प्रवेश किया। सब लोग उनके सामने फ़र्श पर एक लाइन में बैठ गए। हरेक को एक सवाल पूछने का मौक़ा दिया जाता था। जब भारती की बारी आई तो वह चुप रही। लेकिन संत उसके सवाल का इंतज़ार करते रहे। उसकी ननद ने जब कोहनी से इशारा किया तो उसने अजीब ढंग से कहा, 'मेरे गुरु कुछ स्थापित करना चाहते हैं, आपको क्या लगता है? क्या ऐसा होगा?'

थोड़ी देर चुप्पी छाई रही। वेंकन्ना बाबू की आँखें कुछ समय तक बंद रहीं। फिर उन्होंने बोलना शुरू किया। 'सद्गुरु कुछ स्थापित करना चाहते हैं, लेकिन यह इतनी जल्दी नहीं होगा, जितनी जल्दी वे चाहते हैं। इसमें कुछ मुश्किलें आएँगी, और इससे देरी होगी।' थोड़ा रुककर उन्होंने फिर कहा, 'तुम्हारे गुरु कोई साधारण इंसान नहीं हैं। वे तो महासागर से भी विशाल हैं। लेकिन मौजूदा हालात उनके ख़िलाफ़ हैं और इसका असर उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ेगा।' उनके आख़िरी शब्द भरोसा जगाने वाले थे। उन्होंने भारती से कहा, 'तुम एक ख़ास रास्ते पर चल रही हो और वह सही रास्ता है।'

उस रात जब भारती विशाखापत्तनम पहुँची तो उसने तुरंत विजी और सद्गुरु को फ़ोन किया। इसका ध्यान रखते हुए कि वे निराश न हो जाएँ, उसने वेंकन्ना बाबू से हुई मुलाक़ात के बारे में बहुत संक्षेप में बताया। 'मैंने सद्गुरु को बताया कि संत के मुताबिक़ इस प्रक्रिया में कुछ बाधाएँ आएँगी। मैंने उनको अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखने के लिए भी कहा। विजी ने मुझे बताया कि सद्गुरु पहले ही कुछ देरी होने की उम्मीद कर रहे हैं। जब विजी ने सद्गुरु से पूछा था कि क्या प्राण-प्रतिष्ठा जल्दी पूरी हो जाएगी, तो वे चुप रहे थे। उसने कहा कि उन्हें अंदेशा था कि कोई गड़बड़ ज़रूर होगी। इस बात से उसे चिंता हो रही थी।' वेंकन्ना बाबू की भविष्यवाणी से भारती कोई ख़ास परेशान नहीं हुई। हालात सद्गुरु के क़ाबू में लगते थे, प्राण-प्रतिष्ठा लगभग पूरी होती लग रही थी, और वह अनुमान नहीं लगा पा रही थी कि ऐसे में क्या गड़बड़ हो सकती है। वैसे सद्गुरु से कभी न मिले होने के

बावजूद, वेंकन्ना बाबू ने जिस श्रद्धा के साथ उनके बारे में कहा था, उससे वह दंग रह गई थी।

इसी बीच, सद्गुरु एक रिश्तेदार की शादी में शामिल होने के लिए विजी को बेंगलुरु ले गए। 'हमारी शादी के बारह वर्षों के दौरान हम इतने व्यस्त रहे थे कि अभी तक मेरे रिश्तेदारों में कोई भी - मेरे अपने निजी परिवार के अलावा - मेरी पत्नी से नहीं मिला था। मैं कभी भी किसी पारिवारिक समारोह में शामिल नहीं हो पाया था। मैं किसी से मिलने भी नहीं जा सका था, क्योंकि मैं हमेशा या तो यात्रा में होता था या फिर योग सिखा रहा होता था, एक तरह से मैं एक बिलकुल नए परिवार का निर्माण कर रहा था। इसलिए मैंने जाने का फ़ैसला किया, क्योंकि मैं चाहता था कि परिवार का हर सदस्य विजी से मिले। कर्म-यात्रा के बाद अब वह पूर्णिमा के चाँद की तरह चमक रही थी। जिसने भी उसे उन आख़िरी सप्ताहों में देखा, वह साफ़ बता सकता था कि अब वह बिलकुल अलग थी। जो भी उससे मिला, सभी ने कहा, "वाह, तुमने क्या पत्नी पाई है। कोई ताज्जुब नहीं कि तुम पहले कभी हमसे मिलने नहीं आए," और लोगों ने इसी तरह की बातें कीं।'

इस पारिवारिक समारोह में शामिल होना एक तरह से विदा लेना भी था, हालाँकि सद्गुरु और विजी के अलावा किसी को भी इसका भान नहीं था। 'मैं जानता था कि वह ख़ुद को महासमाधि के लिए तैयार कर रही है, और प्राण-प्रतिष्ठा पूरी होने के बाद फ़रवरी-मार्च तक वह दुनिया से जाना चाहती थी।' उन्होंने इस ओर इशारा भी किया, लेकिन किसी ने इसे गंभीरता से नहीं लिया। 'लोगों ने इस बात का यक़ीन नहीं किया।' उन्होंने कहा, 'क्या बकवास है! वह इतनी ख़ूबसूरत और ख़ुश है। वह अचानक क्यों चली जाएगी?'

सद्गुरु और विजी दोनों विजी के माता-पिता से मिलने गए और फिर सद्गुरु के परिवार से मिलने मैसूर भी गए। उनकी माँ की बरसी उसी महीने अठारह तारीख़ को थी। 'मैंने दोनों पक्ष के परिवारों से हल्का-सा जिक्र किया कि विजी जाने की बात करती रही है और वह बहुत समय तक इस दुनिया में नहीं रहेगी।' सद्गुरु कहते हैं, 'मेरे पिता ने इसे बकवास कहकर ख़ारिज कर दिया, जबकि दूसरे लोग थोड़ा चकरा गए।'

बाईस जनवरी 1997 का दिन भारती को अच्छी तरह याद है। तब तक वह विशाखापत्तनम से लौट आई थी। रात को दरवाज़े की घंटी बजी।

दरवाज़े पर विजी थी। उसने कहा कि वह एक सत्संग का संचालन करने के लिए कोयम्बतूर आई थी और उसने अचानक भारती से मिलने का फ़ैसला किया था। भारती ने उसे अंदर बुलाकर भोजन कराया। विजी ने बेंगलुरु से लाया पोंगल का प्रसाद भी उसे दिया। भारती कहती है, 'मुझे याद है, उस शाम वे बहुत अच्छी लग रही थीं और मैंने उन्हें यह बताया भी। वे बहुत मृदु और तनावमुक्त लग रही थीं। वे काफ़ी सहज भी लगीं।'

तेईस जनवरी पूर्णिमा का दिन था। सद्गुरु ने उन्हें बताया था कि वे ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा इसी दिन या अगली पूर्णिमा को संपूर्ण करना चाहते थे। लेकिन उस दिन भारती को अपनी बेटी के स्कूल में नाटक का प्रोग्राम देखने जाना था। हालाँकि उसने इस बात का उल्लेख सद्गुरु या विजी से नहीं किया था, लेकिन उसे शक था कि उस दिन वह आश्रम पहुँच पाएगी या नहीं। 'विजी ने मुझसे यह नहीं पूछा कि मैं पूर्णिमा को आ रही थी या नहीं, और मैंने भी उसे अपनी बेटी के स्कूल प्रोग्राम में जाने के बारे में नहीं बताया था। बाद में मुझे इस बात का पछतावा हुआ। अगर मैं उस दिन आश्रम चली गई होती, तो हो सकता है कि हालात कुछ और होते।'

हालाँकि उस वक़्त उनमें से किसी को नहीं मालूम था कि तेईस तारीख़ को क्या होने वाला था। शायद उस इंसान को भी नहीं, जिसने घटनाओं के इस नाटकीय मोड़ को दिशा दी थी। विजी के लिए यह तब भी एक योजना ही थी - शायद एक प्रचंड और सब कुछ स्वाहा कर देने की योजना। लेकिन वह भी जानती थी, और बाक़ी लोग भी जानते थे कि योजनाएँ भरोसे के लायक़ नहीं होतीं।

उस दिन की शुरुआत भी सामान्य तरीक़े से हुई। माँ गंभीरी को याद है कि उस दिन सुबह-सुबह विजी ने उसे एक डायरी दी और उसमें सद्गुरु के कार्यक्रमों को लिखने को कहा। इससे उसे थोड़ा अजीब लगा क्योंकि हमेशा विजी ही उनके दिन के कार्यक्रमों का ब्यौरा रखती थी और पहले कभी ऐसी किसी डायरी की ज़रूरत नहीं पड़ी थी। लेकिन इस बात को दिमाग़ से निकालकर वह रसोई के अपने कामों में लग गई।

सद्‌गुरु ने ग़ौर किया था कि विजी ने उस सुबह जल्दी उठकर अपनी साधना कर ली। कुछ घंटों के बाद उसने स्नान किया और फिर साधना की। इस प्रक्रिया को उसने कई बार दोहराया। दस बजे उन्होंने उसके साथ दिन का भोजन किया। वह शिक्षकों से मिलने का दिन भी था, जो महीने में एक बार होता था। इसमें हिस्सा लेने वालों को याद है कि विजी ने ऐसे कुछ शिक्षकों का पक्ष लिया, जिनकी आलोचना की गई थी। इसमें कोई ख़ास बात नहीं थी। विजी अक्सर आश्रम के स्वयंसेवियों और शिक्षकों की तरफ़दारी किया करती थी। राजा कहते हैं, 'मुझे याद है कि किसी बात पर मैं सद्‌गुरु का साथ दे रहा था और वे इसका कड़ा विरोध कर रही थीं।'

उस दिन दोपहर बाद साढ़े चार बजे वह अपने घर चली गई। पूर्णिमा का विशेष ध्यान-सत्र शाम को शुरू हुआ। स्वामी देवसत्वा कहते हैं, 'कुछ महीनों से यह विजी की साधना का हिस्सा था कि वे पूर्णिमा वाले दिन भोजन तैयार करें और ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारिणियों को अपने हाथों से परोसें। हम सद्‌गुरु के घर के मंदिर में इकट्ठे हो जाते और वे दोनों हमें थोड़ा सा बिसी-बेले-भात परोसते थे। उसके बाद दही और चावल परोसा जाता था। लेकिन पहले ध्यान किया जाता था।'

सद्‌गुरु को याद है कि विजी ध्यान के दौरान अचानक उठकर चली गई थी। उन्हें हैरानी हुई, क्योंकि किसी का भी इस तरह ध्यान के बीच में उठना सामान्य नहीं था।

वे बताते हैं, 'मेरी आँखें बंद थीं लेकिन मुझे पता चल गया था कि वह कब खड़ी हुई और चली गई। मुझे थोड़ी खीज भी हुई। कोई भी ध्यान के बीच में उठकर जाने की हिम्मत नहीं करता। एक बार बैठ गए, तो बस बैठे रहना है। वह आठ-दस मिनट के भीतर ही उठकर चली गई और पाँच मिनट में आकर फिर बैठ गई। उसने बाथरूम में जाकर अपने पैर के बिछुए से लेकर नाक की लौंग तक सभी गहने उतारकर वहीं रख दिए थे। ये ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें भारत में महिलाएँ आमतौर पर कभी नहीं उतारती हैं। ये ऐसी चीज़ें हैं जिनके बारे में बताया या लिखा नहीं जाता, लेकिन अगर आपके शरीर के कुछ ख़ास हिस्सों पर कोई धातु है, तो आप अपना शरीर अचानक नहीं छोड़ सकते। इसलिए जब कभी कोई आश्रम आता है और हम उससे कोई गहन साधना कराते हैं, तो सबसे पहले हम उसे एक तांबे

की सादी-सी अँगूठी पहनने के लिए देते हैं। सब कुछ समाप्त होने के काफ़ी बाद जब मैं बाथरूम गया, तो मैंने विजी के सारे गहनों को वाश बेसिन के पास पड़ा देखा। ध्यान के बीच में वह उन्हें उतारने गई थी और फिर आकर बैठ गई थी। जब वह पहले ध्यान के लिए बैठी थी, तो उसने महसूस किया होगा कि धातु के गहनों के कारण उसके रास्ते में रुकावट आ रही है। ऊर्जा का अचानक विस्फोट हुआ था। लौटने के सात मिनट के अंदर वह चली गई।'

स्वामी देवसत्वा को वह दृश्य बिलकुल साफ़ याद है, 'वे सद्गुरु की कुर्सी पर बैठी हुई थीं। वे हम सभी के साथ मंत्र का जाप कर रही थीं। अगले ही क्षण वे एक ओर लुढ़क गईं। मुझे याद है कि उनके चेहरे पर मुस्कान थी।'

अचानक हड़बड़ी मच गई। किसी ने सद्गुरु को सूचना दी कि विजी उठ नहीं रही थीं। पलभर में वे उसके पास थे। वे काफ़ी देर तक उसके चक्रों को ठीक करने की कोशिश करते रहे, जबकि दूसरे लोग बिना कुछ समझे कि क्या हो रहा है, देखते रहे। यह पूरी तरह से असामान्य नहीं था। पहले भी ध्यान में लोग अपने शरीर से जुदा हुए थे, लेकिन आम तौर पर वे लौट आए थे। एक घंटे बाद सद्गुरु ने ऊपर देखा। उनकी आँखें गीली थीं। उन्होंने कहा, 'वह जा चुकी है। वह अपने अनाहत चक्र से चली गई।'

जब भारती स्कूल के प्रोग्राम में थी, तभी उसे यह ख़बर मिली। 'ज्यों ही मैंने यह सुना तो मेरे मन में पहला विचार यही आया, हे भगवान, इस महिला ने ये कर डाला! मेरे अंदर उसके लिए सराहना जगी, थोड़ी हिचक के साथ। फिर गुस्सा आया : उसे यह काम अभी क्यों करना था? हम प्रक्रिया कैसे पूरी करेंगे?'

सद्गुरु की बेटी जो उस समय सात साल की थी, इस घटना का जिक्र काफ़ी असरदार स्पष्टता से करती है। उसके बोर्डिंग स्कूल में यह संदेश पहुँचा कि उसकी माँ अस्वस्थ है। उसके आश्रम पहुँचने तक उसे मालूम हो गया कि कुछ गड़बड़ है। 'जब मैं अंदर आई, लोग ज़ोर-ज़ोर से रो रहे थे। मैंने पिताजी को रोते देखा। मेरी माँ फूलों की सेज पर लेटी हुई थीं। सुबह के तीन बजे थे। मैं थकी हुई थी। मैं अपने पिता से लिपट गई। मुझे याद है कि मैंने कहा था कि मुझे नींद आ रही है।'

वह कहती है कि उसे एहसास हो गया था कि क्या हुआ है, लेकिन उसके अपने कोई सवाल नहीं थे। वह सहजता से कहती है, 'मेरे माता-पिता के आसपास हमेशा अजीब चीज़ें होती रहती थीं। मैं इनकी आदी हो चुकी थी।' होलनेस कार्यक्रम और कई भाव-स्पंदन कार्यक्रमों के दौरान अपने पिता के पास मंच पर बैठकर, वह लोगों को बदली हुई चेतना में उन्हें रोते, लड़खड़ाते और तमाम दूसरी अवस्थाओं में देखने की आदी हो चुकी थी। वह कहती है, 'अगले दिन मैंने देखा कि लोग चिता से राख़ निकाल रहे थे। तब मुझे ताज्जुब हो रहा था कि उन्हें हड्डियों और लकड़ी के टुकड़ों में अंतर कैसे मालूम है?'

किसी स्तर पर उसकी माँ ने उसे इस दिन के लिए तैयार कर दिया था। इस घटना से बस कुछ दिन पहले जब वे दोनों उसे ऊटी के उसके बोर्डिंग स्कूल छोड़ने जा रहे थे, तो विजी ने उससे कहा था कि मार्च में उसके जन्मदिन पर वह उसके साथ नहीं होगी। बेटी चुपचाप सुन रही थी। उसे याद है कि सद्‌गुरु विजी को डाँट रहे थे कि वह बेकार में बेटी को परेशान कर रही थी। तब विजी ने जवाब दिया था कि वह अपने शरीर को दो पूर्णिमा से ज़्यादा समय तक क़ायम नहीं रख सकेगी। सद्‌गुरु को भी यह बातचीत याद है। 'वह बेटी को बता रही थी कि वह मार्च से पहले ही चली जाएगी, इसलिए उसकी जगह मैं आकर उससे मिलूँगा। वे दोनों काफ़ी गंभीरता से बातें कर रही थीं। मैंने कहा, "तुम बच्ची से ऐसी बातें क्यों कर रही हो? उसे रहने दो। तुम नहीं जानतीं कि तुम जाओगी या नहीं।" लेकिन उसने कहा, "नहीं-नहीं, मुझे उसे बताना होगा। मैं शर्तिया चली जाऊँगी।" उसने लगभग आठ महीने पहले ही घोषणा कर दी थी कि किसी पूर्णिमा की शाम को वह चली जाएगी, और उसने इसके लिए कोशिश करना भी शुरू कर दिया था। उसे इसमें कोई शक नहीं था। हम इक्कीस की शाम को ऊटी से लौट आए। तेईस की शाम को वह चली गई। यह सब किसी परी-कथा सा लगता है। लेकिन यही सच है।'

सद्‌गुरु की बेटी को याद है कि विजी एक सामान्य माँ से कुछ ज़्यादा थी। उसे अपनी माँ की वह छवि याद है, जो उसके बालों को मदार की पत्तियों और सफ़ेद फूलों से सजाती थी, जो अपने बाएँ हाथ से उसका छुट्टियों का होमवर्क कर देती थी ('ताकि कोई जान न सके कि उन्होंने इसे मेरे लिए किया है'), जो पेरेंट्स मीटिंग वाले दिन उसके लिए घर से खाना

बनाकर लाती थी। वह कहती है, 'मुझे सचमुच मालूम नहीं था कि वे कौन थीं, मगर मुझे अब भी महसूस होता है कि मैं एक तरह से उन्हें जानती हूँ। मैं अपने अंतर्बोध से जानती हूँ कि उन्हें क्या पसंद होता और क्या नापसंद।'

हाल ही में विजी की दसवीं पुण्यतिथि पर उसकी माँ के व्यक्तित्व का एक और पहलू उसके सामने आया। 'उनके बारे में लोगों की बातें सुनते वक़्त मैंने सोचा, हे भगवान! शायद वे बस मेरी माँ या मेरे पिता की पत्नी ही नहीं थीं, मुझे अचानक एहसास हुआ कि वे इससे कहीं ज़्यादा थीं।'

बहुत कम लोगों को यह एहसास था कि विजी में और भी बहुत कुछ था। उसकी महासमाधि से यह चीज़ साफ़ तौर पर सामने आई। एक संन्यासी का कहना है, 'उनकी भावनाओं के पीछे एक ऐसी तीव्रता छिपी थी, जिसका अनुमान हममें से कोई भी नहीं लगा सका। मैंने हमेशा उन्हें एक विचारशील और दूसरों का ख़याल रखने वाले इंसान के रूप में जाना था। मुझे याद है कि उन्होंने मुझे सद्गुरु की एक ऊनी कमीज़ दी थी, क्योंकि मैं बिना गरम कपड़ों के आश्रम आ गया था। मुझे याद है कि वे हमेशा मुझे 'लिटिल-हार्ट्स' बिस्किट के पैकेट सद्गुरु के हाथों (हर बार जब वे बेंगलुरु से लौटते थे) भेजा करती थीं। लेकिन उनका स्वभाव बहुत अस्थिर भी था। हम में से कई लोग सोचते थे कि अपने पति के लिए उनका प्रेम उनके आध्यात्मिक विकास में सबसे बड़ी रुकावट था। लेकिन प्राण-प्रतिष्ठा का काम शुरू होने के बाद उनके अंदर बदलाव आया। अंत में उन्होंने वह हासिल कर लिया, जो वे चाहती थीं - इससे पहले कि हममें से कोई और ऐसा कर पाता।'

दूसरे लोगों को उनकी गर्मजोशी और अपार स्नेह की याद आती है। श्रीनिवास कहते हैं, 'जब कभी सद्गुरु मुझे डाँटते थे - और ऐसा अक्सर होता था - विजी मेरे बचाव के लिए तुरंत बीच में कूद पड़तीं।' राजा बताते हैं, 'उन्होंने बस एक हफ़्ते पहले मुझसे महासमाधि के बारे में बात की थी। हम अक्सर इस बारे में बातें करते थे। मैं स्वामी निर्मलानंद के आश्रम भी गया था, और उस मुलाक़ात से मैं अभिभूत हो गया था। मैं उन्हें बताया करता था कि मैं भी यही हासिल करना चाहता हूँ।' जबकि राजा ने कभी सोचा नहीं था कि वे इतनी जल्दी चली जाएँगीं, फिर भी उन्हें बहुत अचम्भा नहीं हुआ। 'उन दिनों का माहौल अलग तरह का था। सद्गुरु कहीं ज़्यादा प्रचंड और तीव्र लगते थे। हम कम उम्र थे; अप्रत्याशित घटनाओं से हमें

आश्चर्य नहीं होता था। हम सभी आत्मविश्वास और उम्मीद से भरे हुए थे। सब कुछ संभव लगता था।'

विजी के अंत्येष्टि संस्कार में लगभग एक हज़ार लोग शामिल हुए। इसके बाद सद्‌गुरु लगभग दस दिनों तक अपने घर में रहे। आश्रम के निवासियों को याद है कि वे बरामदे में तेज़ी से आगे-पीछे टहलते रहते थे और उनके चेहरे पर दुख झलकता था। ग्यारहवें दिन उन्होंने एक विशेष आराधना व स्मृति सभा रखी। लगभग तीन हज़ार लोग इसमें शामिल हुए।

'लोगों को यह बताना मेरे लिए हमेशा मुश्किल रहा है कि मेरे लिए विजी क्या है?' उन्होंने एक संक्षिप्त और मर्मस्पर्शी संबोधन में कहा, 'जब मैं "विजी" कहता हूँ तो उसका आशय न तो मेरी पत्नी से है, और न ही एक औरत से है, बल्कि बस एक प्राणी से है। एक प्राणी के रूप में वह मेरे अनुभव में हमेशा ही अद्‌भुत रही है। लेकिन जैसा कि आपमें से कई लोग जानते हैं, वह बहुत तीव्र भावनाओं वाली इंसान थी। अपने भोलेपन के चलते वह बिलकुल नहीं जानती थी कि लोगों के सामने क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं। उसके भीतर जो भी भावनाएँ होतीं, वह हालात की परवाह किए बिना उन्हें व्यक्त कर देती थी।'

यह एक पति के नुक़सान और गुरु के गर्व के बीच लड़ाई थी। 'यह बच्चों का खेल नहीं है,' उन्होंने सभा को याद दिलाया, 'एक सिद्ध योगी को भी इसे हासिल करने के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। जैसा कि आप में से कुछ लोग जानते हैं, स्वामी निर्मलानंद को, जिन्होंने अपना सारा जीवन आध्यात्मिक साधना में लगा दिया था, अपनी महासमाधि से कुछ दिन पहले तक शक था कि यह उनके लिए संभव होगा या नहीं। जब हम उनसे आख़िरी बार मिलने गए थे, तब उन्होंने मुझसे यही बात कही थी। दैवी कृपा से उन्होंने महासमाधि प्राप्त की। एक ज्ञानी को भी, जिसने अपना सारा जीवन आध्यात्मिक साधना में बिताया था, इसे पाने के लिए संघर्ष करना पड़ा। शरीर को बिना कोई चोट पहुँचाए इस जीवन को शरीर से बाहर निकालने में किसी और चीज़ की ज़रूरत होती है। इसके लिए ऊर्जा की प्रचंड मात्रा पैदा करनी पड़ती है, जिसके लिए तीव्र साधना की ज़रूरत होती है। विजी को इसे हासिल करने के तरीक़े पता थे। लेकिन वैसे हालात में हमने कभी कल्पना नहीं की थी कि बिना मेरी सहायता के वह ज़रूरी ऊर्जा पैदा कर पाएगी। जिस शीघ्रता

से उसने यह हासिल किया है, वह सिर्फ़ उसके प्रेम से संभव हुआ। शायद यही एक चीज़ वह जानती थी। जब मैं घटनाओं की सारी कड़ियों पर नज़र डालता हूँ, तो यह बिलकुल साफ़ हो जाता है कि इसमें दैवी शक्ति का सीधा हस्तक्षेप था। ऐसा लगता है कि 'शम्भो,' जिनके लिए उसका हृदय तड़प रहा था, उसका हाथ पकड़कर अपने साथ ले गए। सिर्फ़ विशुद्ध प्रेम द्वारा ही उसने यह संभव कर दिखाया।'

उनकी पीड़ा साफ़ दिख रही थी। लेकिन वे यह बताने से नहीं चूके कि विजी की महासमाधि सिर्फ़ किसी एक इंसान की जीत नहीं थी, बल्कि कई लोगों के लिए प्रेरणा थी। 'सभी आध्यात्मिक साधकों के लिए महासमाधि चरम लक्ष्य है – उनकी साधना की पराकाष्ठा, चैतन्य में विलीन होने का एक मौक़ा। जब कभी भी आपको मौक़ा मिले, तो आप लोगों को बताएँ कि इस तरह का मौक़ा इंसान के लिए उपलब्ध है, कि जन्म और मृत्यु की प्रक्रिया को अपने हाथों में लेना भी संभव है। आमतौर पर लोग मानते हैं कि ये चीज़ें प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों के साथ ख़त्म हो गईं। लेकिन आध्यात्मिकता अपनी उच्चतम संभावना में अब भी जीवित है। ज़्यादातर लोग इस नतीजे पर पहुँच चुके हैं कि सच्चे संतों का युग समाप्त हो गया है। लेकिन यहाँ हुई यह घटना इस बात की गवाह है कि वह युग अभी ख़त्म नहीं हुआ है और कभी ख़त्म होगा भी नहीं। मेरी यह इच्छा नहीं थी कि प्राण-प्रतिष्ठा के इस चरण में कोई भी शरीर छोड़ कर जाए। लेकिन वह इसके लिए लालायित थी और वह महामंत्र 'शम्भो' में विलीन हो गई। मेरा या किसी दूसरे का यह पूछना उचित नहीं होगा कि यह सही था या ग़लत।' उन्होंने धीरे से कहा, 'मैं इतना बड़ा नहीं हूँ कि 'उनसे' सवाल कर सकूँ।'

अक्सर उन्होंने भक्ति को किसी साधक के लिए शीघ्रतम और सबसे ज़्यादा बुद्धिमानी भरा रास्ता बताया है। 'भक्त लोग बाक़ी दुनिया को अक्सर मूर्ख नज़र आते हैं, लेकिन सबसे बुद्धिमान लोग हमेशा भक्त होते हैं। यह एक अलग तरह की बुद्धि है, जिसे तार्किक बुद्धि कभी समझ नहीं सकती।'

यह बात साफ़ थी कि जहाँ एक तरफ़ सद्गुरु को मालूम था कि विजी अपना शरीर छोड़ने वाली थी, वहीं दूसरी तरफ़ उन्हें यह अंदेशा नहीं था कि ऐसा इतनी जल्दी होगा। वे कहते हैं, 'उसने जाने का पक्का इरादा

कर लिया था। मैं अक्सर उससे कहता था कि बारह वर्षों बाद आख़िरकार हमारा अपना घर था, एक बड़ी होती हुई बच्ची थी, हमारे जीवन में अब कुछ स्थिरता थी। लेकिन वह अड़ी हुई थी। और मैं जानता था कि मैं उसके इरादे को रोक नहीं सकता था। पिछले कुछ महीनों में तो उसकी साँसें ही 'शम्भो' हो गई थीं। लेकिन मैंने सोचा शायद वह एक महीने बाद जाएगी। मुझे विश्वास था कि तब तक प्राण-प्रतिष्ठा हो चुकी होगी।'

उन्हें याद है कि उसकी महासमाधि से दो दिन पहले जब वे ऊटी से लौट रहे थे, विजी जो हमेशा की तरह 'शम्भो' जप रही थी, अचानक रोने लगी। उसने उनका हाथ पकड़ लिया और कार रोकने के लिए कहा। जब उन्होंने कार रोकी तो उसने कहा कि उसके जीवन में वही एक शम्भो थे जिन्हें वह जानती थी। उसने अपने सपने को सच करने में उनसे मदद की भीख माँगी। सद्गुरु ने बिना गंभीर हुए जवाब दिया कि अगर वह शम्भो को नहीं भी जानती थी, तो भी शम्भो उसे पक्के तौर पर जानते थे। 'तुम जो कर रही हो, अगर तुम उसके प्रति ईमानदार रहो, तो तुम 'उन्हें' ज़रूर अनुभव करोगी और मेरे भौतिक रूप के परे 'उन्हें' जान पाओगी।' उन्होंने उससे कहा कि कोई भी उसे उसके लक्ष्य से वंचित नहीं कर सकता। इससे उसे राहत मिली। ऊटी से आने के बाद वह और भी जोश से अपने अभ्यास में लग गई।

लेकिन विजी के महासमाधि लेने के फ़ैसले के पीछे शायद एक वजह और थी - अपने पति से ज़्यादा जीवित रहने का डर। भारती कहती है, 'वह इस बात से डरी हुई थी कि वे बयालीस साल की उम्र में मरने वाले थे। मैंने उसे यह कहते हुए सुना था कि वह उनके बाद जीना नहीं चाहती थी।'

कोई भी आश्चर्य करेगा कि सद्गुरु जैसा सिद्ध-योगी विजी का प्रस्थान इतने पास होने से कैसे अनजान हो सकता था। वे कहते हैं, 'मुझे रुकावट आने की आशंका तो थी, लेकिन मैंने सोचा कि यह सामाजिक होगी।' वे ध्यान दिलाते हैं कि सदियों से सामाजिक क़ायदे-क़ानून ध्यानलिंग की स्थापना में पारंपरिक रुकावट रहे हैं। 'इसलिए मैंने अपने आसपास के सभी लोगों को कहीं भी किसी तरह के झंझट में न पड़ने के लिए पूरी तरह सावधान रहने, और किसी के साथ कोई विरोध न मोल लेने का निर्देश दे रखा था,

क्योंकि मैं जानता था कि किसी तरह की बाधा आने वाली है। मैं सोचता था कि मैं अपने आसपास के हालात को ठीक कर लूँगा... हालाँकि अपने मन में कहीं न कहीं मैं जानता था कि कोई रुकावट आने वाली है। लेकिन अपने आसपास के हालात और उस वक़्त मुझसे जो उम्मीद की जाती थी, उससे मेरा ध्यान बँट गया था।'

साथ ही वे कहते हैं, 'विजी कोई सिद्ध योगी नहीं थी और उसका प्रस्थान उतना पूर्व-नियोजित नहीं था, जितना यह लगता था। हालाँकि जाने का फ़ैसला उसने अपनी इच्छा से लिया था, लेकिन जीवन-ऊर्जा पर उसका पल-पल का नियंत्रण नहीं था। लेकिन अपने जाने के आख़िरी कुछ मिनटों में वह पूरी तरह जागरूक थी और गहनों के रूप में पहनी सभी धातुओं को शरीर से उतारकर उसने अपने विसर्जन को संभव बनाया। जब चैतन्य बरसता है, तो आप बस उसमें लीन हो जाते हैं।'

भले ही उसके पति को आने वाली घटनाओं की भनक न हो, लेकिन ऐसा लगता है कि ईश्वर ने विजी की एकमात्र इच्छा से साठगाँठ कर ली थी। सद्‌गुरु समझाते हैं, 'उस दिन ऊर्जाएँ जिस तरह से इस ग्रह पर कार्य कर रहीं थीं, उस नज़रिए से यह एक बहुत ख़ास दिन था। उस दिन ग्रहों का बड़ा दुर्लभ और उचित समायोजन था। वह स्थिति आकाश में एक पूर्ण षट्‌कोण के आकार के तारे की तरह बन गई थी। यह संरचना ठीक उस दिन आती है, जब तीन बाहरी ग्रह, बृहस्पति, यूरेनस और नेप्च्यून एक दूसरे से जुड़ते हैं। ऐसा संयोग दो सौ साल में एक बार आता है। तेईस जनवरी को ग्रहों का यह समूह कुम्भ की पहली डिग्री पर बना, जिसमें सूर्य भी शामिल हो गया और पूर्ण चंद्र उन सब की विपरीत दिशा में मौजूद था। ग्रह-नक्षत्रों की इस संरचना को "कुंभ के युग" के उदय का संकेत माना जा सकता है। यह "थाइपूसम" का दिन भी था, एक ऐसा दिन, जिसे प्राचीन काल के बहुत से साधु-संतों ने अपनी महासमाधि के लिए चुना था।'

सद्‌गुरु की वाणी में अपने शिष्य की उपलब्धि के लिए ख़ुशी का भाव साफ़ झलकता है, 'बतौर पति मुझे धक्का लगा था और गहरा दुख पहुँचा था। बारह वर्षों तक वह मेरी परछाईं बन कर रही। एक पल भी ऐसा नहीं था, जब वह पास नहीं होती थी। लेकिन बतौर गुरु मुझे गर्व था। उसने अपनी भावनाओं की तीव्रता से अपने लक्ष्य को हासिल कर लिया था। वह

बस अपने प्रेम में ही विसर्जित हो गई और अपने शरीर को कोई नुक़सान पहुँचाए बिना चली गई। उसने अपना शरीर बड़ी सहजता से एक पुरानी पोशाक की तरह छोड़ दिया। जब कोई इंसान पूर्ण जागरूकता में शरीर को कोई चोट या नुक़सान पहुँचाए बिना चला जाता है, तो उसका अस्तित्व सही मायने में समाप्त हो जाता है। अब एक जीवन या प्राणी के रूप में विजी का अस्तित्व नहीं बचा है। इसका मतलब है कि वह बस अनन्त में विलीन हो गई है। खेल ख़त्म हो गया है – पूरी तरह।' एक ख़ास महत्त्व की बात यह थी कि विजी ने अपने जाने से पहले कोई व्रत या तपस्या नहीं की थी। सद्गुरु स्वीकार करते हैं, 'अगर मुझे भी अपना शरीर छोड़ना होता, तो मैं इसके लिए तैयारी करता। कम से कम चौबीस घंटे पहले मैं खाना छोड़ देता। लेकिन उसने यह काम सहज ही, बिना किसी तैयारी के कर लिया। मैंने उसे साधना की बड़ी सरल प्रक्रिया बताई थी, लेकिन वह उसे चरम ऊँचाइयों तक ले गई। बिरले ही ऐसा कर पाते हैं।'

तैंतीस साल की एक पूरी तरह स्वस्थ स्त्री का बिना किसी कोशिश के शरीर छोड़ना बहुतों के लिए हैरानी की बात थी। लेकिन वहाँ सचमुच दुख व्याप्त था। अल्पभाषी श्रीनिवास विजी को एक संक्षिप्त श्रद्धांजलि देते हुए कहते हैं, 'विजी एक साधारण महिला थीं जिनमें असाधारण प्रेम करने की क्षमता थी।' वे भी विजी की कमी महसूस करने वाले तमाम लोगों में से हैं। माँ कर्पूरी कहती हैं, 'वे एक बहुत ही स्वाभाविक और सहज महिला थीं। शुरू में उनके चले जाने पर मुझे गुस्सा आया। मुझे ताज्जुब हुआ था कि सद्गुरु ने उन्हें किसी भी तरह रोका क्यों नहीं? अब मुझे एहसास होता है कि शायद उनकी महासमाधि सबसे अच्छे वक़्त पर हुई। आगे उन्हें कठिन समय का सामना करना पड़ सकता था, जब सद्गुरु की गतिविधियाँ और उनका महत्त्व ज़्यादा बड़े पैमाने पर फैल जाता। लेकिन हम सबके लिए उनके जाने का मतलब एक ख़ालीपन था।' राजा शांत भाव से कहते हैं, 'अब मुझे लगता है कि मैं एक महान संस्था का हिस्सा हूँ। लेकिन वे मुझे एक परिवार का हिस्सा महसूस कराती थीं।'

विजी की अस्थियाँ उनके घर से सटे एक पवित्र स्थान में दफ़ना दी गईं। कई साधक अब भी इस छोटी और सादी जगह पर मौन में बैठकर समय बिताना पसंद करते हैं। आश्रम की एक निवासी होडा का कहना है,

'उस जगह में कुछ ख़ास बात है। मैं विजी को नहीं जानती थी, लेकिन जब मैं वहाँ बैठती हूँ तो मुझे महसूस होता है कि मैं उन्हें जानती हूँ। वहाँ एक सौम्यता है, कोई कोमल चीज़, शांति का एक भव्य भाव।'

इस बात की पुष्टि खुद सद्गुरु ने की। वे बताते हैं कि हालाँकि महासमाधि के सिद्धांत का वाक़ई मतलब है कि मनुष्य का कोई अंश नहीं बचा है, लेकिन किसी इंसान की सुगंध को मिटाया नहीं जा सकता। 'इस जीव के लिए अब शरीर का बंधन नहीं रहा। उसका नाम विजया कुमारी है, जिसका मतलब है 'विजय की बेटी' – किसी भी जीव के लिए जो सबसे बड़ी विजय हो सकती है, वही विजय उसकी हुई। लेकिन अगर फूल न भी रहे, तो भी उसकी सुगंध बरकरार रह सकती है। और इस फूल की सुगंध हमेशा-हमेशा के लिए है। यह कभी ख़त्म नहीं होगी... भौतिक सुगंध ख़त्म हो सकती है, लेकिन ऊर्जा की सुगंध, जिसकी हम बात कर रहे हैं, उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। आश्रम का वह कोना एक बिलकुल अलग तरह की ऊर्जा पोषित करता है। यह बहुत सौम्य, बहुत सूक्ष्म, बहुत सुखद और ख़ूबसूरत है। अगर आप कुछ देर के लिए वहाँ बैठें, तो यह आपको एक तरह की शरीर हीनता का अनुभव दे सकती है। यह जगह बुनियादी तौर पर "अनाहत" है। यह विसर्जक की तरह है। यह आपको धीरे-धीरे पिघला सकती है।'

एक और मौक़े पर जब हम उनके घर के आसपास बने बगीचे में घूम रहे थे, तब उन्होंने कहा, 'उस स्त्री को आध्यात्मिक जीवन के बारे में कुछ भी पता नहीं था। उसके पास महान सिद्धियाँ भी नहीं थीं। वह ज़रूरत से ज़्यादा साधारण थी। जीवन भर वह समर्पण और उलझन, उलझन और समर्पण के बीच झूलती रही। पर जब वह काफ़ी लंबे समय तक समर्पण का दौर क़ायम रख पाई, तो उसने महासमाधि प्राप्त कर ली – बड़ी सहजता से।'

उन्होंने फूल की एक पंखुड़ी को यूँ ही उनकी समाधि की ओर उछाल दिया। 'उसने मेरा घर सूना कर दिया, पर हमारे दिल भर दिए।'

7

# बीती अंधेरी रात, दिखा भोर का उजाला

## सनसनी, संकट, समाधान

विजी की महासमाधि एक अनोखी विडंबना थी – यह उनके पति के लिए एक त्रासदी थी और उनके गुरु के लिए जीत। बेशक, भाग्य का खेल ऐसा कि गुरु और जीवन साथी एक ही इंसान था। गुरु के लिए भी यह एक खालिस जीत नहीं थी। क्योंकि जहाँ एक ओर विजी एक आदर्श शिष्य की तरह चली गई थीं, तो दूसरी ओर इस घटना के घटने का वक़्त इससे ज़्यादा असुविधाजनक नहीं हो सकता था। उनके निजी सपने का पूरा होना एक बड़े लक्ष्य के लिए रुकावट बन गया। ध्यानलिंग की स्थापना में अड़चन आ गई थी, जो जोश या इरादे की कमी की वजह से नहीं, बल्कि इसके ज़्यादा हो जाने से आई थी। यह सामाजिक अपरिपक्वता के कारण नहीं, बल्कि आध्यात्मिक परिपक्वता की अधिकता की वजह से आई। एक फल उम्मीद से पहले ही पक गया था और उसके पास गिरने के अलावा दूसरा कोई चारा न था।

सद्गुरु के लिए इसका मतलब था, निजी नुक़सान की गहरी चोट को किनारे रखकर, कई जन्मों के मिशन को पाने के लिए फिर से नए सिरे से जुटना। उन्होंने कहा, 'विजी के महासमाधि लेते ही हम फिर वहीं आ गए, जहाँ से हमने शुरुआत की थी। पंचानवे प्रतिशत काम पूरा हो चुका था। एक हफ़्ते में थोड़ा और काम करके हम प्राण-प्रतिष्ठा पूरी कर लेते। लेकिन अब हम अटक गए थे।' एक और वजह थी, जिसने इस झटके को और भी

गंभीर बना दिया था। समय निकलता जा रहा था। उनतालीस वर्ष के सद्गुरु को मालूम था कि उनकी ज़िंदगी अब ज़्यादा नहीं बची थी।

*उनके शिष्यों के लिए यह तनावपूर्ण व कठिन दौर था। वे जानते थे कि कोई महान चीज़ करने की कोशिश हो रही थी, लेकिन उन्हें यह भी मालूम था कि उनका अब अपने गुरु के साथ बहुत कम समय बचा है।*

उन्होंने इस संभावना के लिए अपनी बेटी को पहले ही तैयार करना शुरू कर दिया था। उन्हें याद है कि उसके द्वारा इस बात को शांति से स्वीकार कर लेने और उसकी समझ का असाधारण स्तर देखकर वे हैरान रह गए थे। 'उसकी माँ अभी गुज़री ही थी। मैं उसे घर वापस ले आया और कुछ दिनों तक अपने साथ रखा। तीन या चार दिनों बाद जब मैं उसे अपने साथ वापस स्कूल ले जा रहा था, तो मैंने देखा कि वह सहज थी। मैंने सोचा कि जो कुछ हुआ, शायद वह नहीं समझ पाई थी। शायद उसे इस बात का बोध नहीं था। तो मैंने उससे पूछा कि विजी चली गई, क्या यह ठीक है?'

उसने कहा, "मैं जानती हूँ कि वे चली गईं हैं। उन्होंने मुझे बताया था कि वे चली जाएँगी।"

मैंने कहा, "क्या तुम जानती हो कि तुम उन्हें अब कभी नहीं देख पाओगी?"

उसने कहा, "जग्गी, क्या मरे हुए लोग वापस आते हैं? मैं जानती हूँ कि वे वापस नहीं आएँगी।"

तब मैंने पूछा, "क्या तुम ठीक हो?"

उसने कहा, "उन्होंने इस बारे में मुझसे बात की थी। मैं ठीक हूँ।"

मैंने कहा, "अगर मैं भी चला जाऊँ तो क्या ठीक होगा?"

उसने कहा, "मेरे बड़े होने तक रुक जाओ, फिर चले जाना।"

तब मैंने सोचा, अरे, मेरे पास वाक़ई एक ख़ूबसूरत इंसान है।'

अगले डेढ़ साल के दौरान भारती ने अपने गुरु को बड़े मुश्किल दौर से गुज़रते देखा। वह कहती है, 'जिस संघर्ष से वे गुज़रे, वह मैं कभी नहीं भूलूँगी।' सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह खोजना थी कि विजी की जगह पर किसको लें। सद्‌गुरु ने कई साधकों के साथ प्रयोग किए, लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। भारती याद करती है, 'उन्होंने कई लोगों को आजमाया लेकिन उसके जैसा कोई न था। मैं भी यह जानती थी। मैं इसे महसूस कर सकती थी।'

तब सद्‌गुरु को एक कठोर फ़ैसला लेना पड़ा। जिन तैयारियों से विजी गुज़री थी, किसी तीसरे इंसान से वही तैयारियाँ करवाने का वक़्त नहीं था। उनके पास ख़ुद इस भूमिका को निभाने के अलावा कोई और चारा नहीं था। वे कहते हैं, 'वक़्त कम था। मेरे आसपास बहुत से लोग उच्च ऊर्जा की अवस्था में थे, लेकिन उस ऊर्जा के साथ-साथ पर्याप्त मानसिक परिपक्वता नहीं थी। प्राण-प्रतिष्ठा के लिए हमें तरल ऊर्जा की ज़रूरत थी; इससे "आप कौन हैं," इसकी तय सीमाएँ ढीली पड़ जाती हैं। यदि आप किसी इंसान की ऊर्जा को तरल बना सकते हैं, तो वह न्यूक्लियर बम हो जाता है। लेकिन जैसे ही आप यह करते हैं, लोग बचकानी चीज़ें करने लगते हैं। वे अपनी निजता के प्रति रक्षात्मक होने लगते हैं। वे अपनी शख़्सियत के पहलुओं को बरकरार रखना चाहते हैं। अगर इसे कारगर करना है, तो आपको अपने और अपनी विचार प्रक्रिया के बीच कुछ दूरी बनाकर रखनी होती है। ऊर्जा की दृष्टि से मेरे साथ कई अच्छे लोग थे, लेकिन उनके दिमाग़ अभी तक काफ़ी परिपक्व नहीं थे। आज भी यही बात है।'

सद्‌गुरु ख़ुद विजी की भूमिका भी निभाएँ, इसका मतलब था कि वे अपनी ऊर्जा से उसके ऊर्जा-शरीर की फिर से रचना करें। यह पुनर्रचना इतनी विस्तृत और संपूर्ण थी कि बहुत से लोग आने वाले महीनों में आश्रम के आसपास विजी की स्पष्ट मौजूदगी महसूस करते रहे। भारती इस बात की पुष्टि करती है, 'कई बार मुझे ऐसा लगा कि मानो विजी फिर से हमारे साथ थी। हम उसके शरीर और ऊर्जा की जानी-पहचानी सुगंध महसूस कर सकते थे। लेकिन इसके लिए ज़बर्दस्त ऊर्जा की ज़रूरत थी, और ऐसा तब तक नहीं किया जाता था, जब तक बहुत ज़रूरी न हो। सद्‌गुरु के चरणों में बैठकर कुछ भी असंभव नहीं लगता था।'

लेकिन इस प्रक्रिया की क़ीमत चुकानी पड़ी। पाँच घंटों की प्राण-प्रतिष्ठा की प्रक्रिया के बाद सद्‌गुरु बिलकुल थके और निचुड़े हुए निकलते थे। एक इंसान की ऊर्जा से दो लोगों के शरीर को चलाने में उनकी शक्ति एकदम ख़ाली हो जाती थी। 'ग्यारह महीनों के समय में मैं अपनी उम्र से पच्चीस-तीस साल बड़ा हो गया।' वे कहते हैं, 'मैं बूढ़ा और बीमार हो गया। हर तरह की विचित्र बीमारियाँ मेरे शरीर में आ गईं थीं। जब अमेरिका में मेरा ख़ून जाँच के लिए लिया गया तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ... नतीजे ऐसे थे, मानो मेरे शरीर में भयंकर बीमारियाँ हों।'

जब भारती के गुरु इस प्रक्रिया को पूरी करने के लिए रुकावटों से आगे बढ़े, तो भारती को भी बड़ी कठिन निजी दिनचर्या से गुज़रना पड़ा। 'मैंने बहुत साधना की। हम नहीं चाहते थे कि हमने जो ऊर्जा तैयार की थी, वह बिखर जाए। साथ ही मैं देख रही थी कि उनकी सेहत गिरती जा रही थी। वे कमज़ोर और नाजुक हो गए थे। उनके गुर्दे जवाब दे रहे थे। उनका लिवर ख़राब हो गया था। उनके शरीर पर गाँठें निकल आईं थीं। उनका ख़ून बेकार हो चुका था।'

उस समय ली गई सद्‌गुरु की तसवीरों से यह साफ़ नज़र आता है कि वे अचानक बहुत बूढ़े हो गए थे। 'उन अठारह महीनों में मैंने अपने जीवन के लगभग बीस से पच्चीस साल खो दिए। आपको इस पर विश्वास नहीं होगा। किसी वक़्त मैं बिलकुल ठीक होता, लेकिन अगर आप मुझे एक घंटे बाद देखते तो मैं पूरी तरह से बीमार होता। सिर्फ़ थका हुआ ही नहीं, डॉक्टरी तौर पर बीमार। आप मेरे ख़ून का नमूना ले कर देख सकते थे कि सब कुछ गड़बड़ था। मुझे बताया जाता था कि मुझे कैंसर है। पंद्रह दिन बाद वे फिर जाँच करते और पाते कि सब कुछ ठीक ठाक है। जब मैं यहाँ किसी प्रक्रिया के लिए बैठता, तो मेरे शरीर पर बड़ी-बड़ी गाँठें निकल आतीं। उसके तीन घंटे बाद अगर आप देखते, तो वे ग़ायब हो चुकी होतीं। यह अविश्वसनीय था। मैं उम्मीद भी नहीं करता कि आप इस बात पर यक़ीन करेंगे।'

इन शारीरिक तूफ़ानों और विध्वंस के दौरान उन्हें सिर्फ़ यह विचार आगे बढ़ा रहा था कि प्राण-प्रतिष्ठा पूरी होते ही वे शरीर त्याग देंगे। उनके शिष्यों के लिए यह तनावपूर्ण व कठिन दौर था। वे जानते थे कि कोई महान

चीज़ करने की कोशिश हो रही थी, लेकिन उन्हें यह भी मालूम था कि उनका अब अपने गुरु के साथ बहुत कम समय बचा है। उनकी आँखों के सामने उनके गुरु की सेहत तेज़ी से बिगड़ती रही और वे बेबस होकर बस चुपचाप देखते रहे। भारती कहती है, 'स्वास्थ्य की गिरावट उनके रोज़मर्रा के कामकाज और पूरे शरीर पर साफ़ दिखती थी। कुछ सत्रों के बाद जब मैं उनको शारीरिक रूप से जर्जर हालत में पाती, तो मुझे कुछ नहीं सूझता था कि आख़िर क्या करूँ। उस समय बेबस होकर खड़े रहने के अलावा मेरे पास कोई चारा नहीं होता था। कभी-कभी बड़े कठिन क्षणों में मुझे लगता कि ध्यानलिंग को पूरा करने की कोशिश में ही कहीं सद्गुरु न चले जाएँ। लेकिन ऐसे विचार कभी बहुत देर तक नहीं टिके। मेरे अंदर कहीं से आवाज़ आती कि हमारे साथ सद्गुरु और ध्यानलिंग दोनों रहेंगे।'

लेकिन अगले अठारह महीनों में कुछ ज़्यादा दुर्भाग्यपूर्ण और अशांत करने वाली घटनाओं से आश्रम के निवासियों और कोयम्बतूर की जनता का ध्यान बँटा रहा - कुछ ऐसा जिसने उभरते हुए ईशा आंदोलन को जड़ से हिला दिया। विजी के जाने के पीछे-पीछे एक और संकट आया, जिसके इतने बड़े पैमाने पर होने की उम्मीद किसी को न थी। ऐसा सामाजिक विरोध सामने आने की उम्मीद पहले से थी, मगर यह कल्पना से कहीं ज़्यादा भीषण और बदले तथा द्वेष की भावना से प्रेरित था। महीनों पहले वेंकन्ना बाबू ने इस संभावना से आगाह किया था। सद्गुरु को भी इसका अंदाजा था। 'अंतर्बोध से मैं जानता था कि ऐसा होने वाला है। लेकिन मुझे मालूम नहीं था कि ऐसा कब और कहाँ से होगा?'

फिर भी, विजी की महासमाधि के समय उन्होंने उस तरफ़ इशारा किया था जहाँ से समस्या आ सकती थी। उन्होंने अपने साधकों को बताया था, 'यहाँ हम अलग वातावरण में रहते हैं। हमारे लिए यह स्थिति काफ़ी सहज है। लेकिन बाहर के समाज में इस सारी घटना पर तमाम शक-शुबहे खड़े किए जाएँगे।'

वे सही कह रहे थे। समस्या तब शुरू हुई, जब एक साधक के चाचा ने किराए के गुंडों को लेकर आश्रम पर धावा बोल दिया और उस युवक को ज़बर्दस्ती घर वापस ले गए। यह कहानी जानी-पहचानी सी थी : वह साधक आश्रम में रहना चाहता था लेकिन उसका परिवार इसके ख़िलाफ़ था। यह

अपने आप में कोई नई घटना नहीं थी। नए साधकों और दीक्षा लेने वालों के परिवार अक्सर इसके ख़िलाफ़ होते थे। कोयम्बतूर के समाज का एक हिस्सा सद्गुरु के शिष्यों की तेज़ी से बढ़ती संख्या को लेकर संदेह में था। सद्गुरु ने उस परिवार से आग्रह किया था कि वे साधक से विचार-विमर्श करके, उसकी सहमति होने पर ही, उसे घर ले जाएँ (वह बत्तीस साल का युवक कोई बच्चा न था जिसे फुसलाया गया हो) लेकिन जब दलीलों और धमकियों का असर नहीं हुआ, तो उस परिवार ने ताक़त का सहारा लेने का फ़ैसला कर लिया।

*शिक्षकों का समर्पण और प्रतिबद्धता आदरणीय थी। वे स्थानीय साधकों के परिवारों के साथ रहते और उनकी ईमानदारी व चरित्र उनके संपर्क में आने वालों को साफ़ दिखने लगा था। धीरे-धीरे यह बात फैल गई कि आप चाहे उनसे सहमत हों या न हों, ईशा साधकों की कथनी और करनी में अंतर नहीं है।*

बाद में उस साधक ने बताया कि कई महीनों तक उसे नशीली दवाएँ देकर रखा गया। उसे कुछ होश नहीं था कि उसके आसपास क्या हो रहा था। जब उस साधक का फिर से आश्रम जाने का इरादा टस-से-मस न हुआ, तो परिवार ने आक्रामक रवैया अपनाने का फ़ैसला कर लिया। उसके चाचा ने एक ऐसे परिवार को उकसा कर बदनामी फैलाने का अभियान शुरू कर दिया, जो उस समय नाज़ुक दौर से गुज़र रहा था। अपनी बेटी की अचानक मौत से हैरान और सदमे में डूबे विजी के माता-पिता उस आदमी के बहकावे में आ गए। घटनाएँ तेज़ी पकड़ती चली गईं। पुलिस में सद्गुरु के ख़िलाफ़ अपनी पत्नी की हत्या करने की शिकायत दर्ज कराई गई। (विडंबना की बात यह है कि विजी की मौत को आठ महीने बीत चुके थे।) दहेज प्रताड़ना के इल्ज़ाम खुलकर लगाए गए। अभियान तेज़ और बिलकुल निशाने पर था। इस लड़ाई में मीडिया भी कूद पड़ा, जिसका नेतृत्व एक तमिल पत्रिका ने किया।

इस हल्ले-गुल्ले के दौरान सद्‌गुरु विदेश में थे। लेकिन उन्हें ज़रा भी शक नहीं था कि ईशा के इतिहास का सबसे काला समय आ गया था। पिछले दशक की सावधानी से बनाई गई साख कुछ ही हफ़्तों में स्वाहा हो गई थी। वे कहते हैं कि निजी तौर पर उन्हें बदनामी की ज़रा भी चिंता नहीं थी। लेकिन फिर भी उनके जैसा बेहद स्वतंत्र इंसान, जिसने हाल ही में अपनी पत्नी खोई थी, दहेज और हत्या के आरोप से अशांत हुए बिना न रह सका। लेकिन उनको अपना ध्यान एक ही चीज़ पर केंद्रित रखना था। वे जानते थे कि ध्यानलिंग के लिए इससे ज़्यादा बुरा समय और नहीं हो सकता था। 'हमें मुसीबत के आने की आशंका तो थी, लेकिन यह हर तरीक़े से, हर दिशा से आई। हमने एक साल या अठारह महीने का समय रोज़ाना के संकट को सँभालने में बिताया। जब मैं संकट कहता हूँ, तो मेरा मतलब है कि इन लोगों ने ऐसे हालात बना दिए थे, जिससे हमारा अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ गया था।'

ज़रूरी क़दम उठाने का वक़्त आ गया था। सद्‌गुरु कहते हैं कि वे आश्रम लौट आए और उस काम में जुट गए जिसे करना वे आम तौर पर पसंद नहीं करते। वे बड़े रहस्यमय तरीक़े से कहते हैं, 'मैंने उन्हें ठीक कर दिया।' एक ऐसे योगी, जिनके काम करने के क्षेत्र में अदृश्य और गूढ़ दोनों शामिल हैं, के ऐसा कहने का मतलब निकालना मुश्किल है। लेकिन इस बात से एक इशारा ज़रूर मिलता है कि उन्होंने इस साजिश में इस तरह से हस्तक्षेप किया, जो वे आम हालात में कभी न करते। थोड़े ही समय में, गुस्सा और बदले की भावना भड़काने में लगे निहित स्वार्थ वालों ने ख़ुद को अपने ही निजी जीवन में अचानक तबाही का सामना करते हुए पाया। शिकायत वापस ले ली गई और यह अभियान अपनी सहज मौत मर गया। सद्‌गुरु अपनी आँखों में चमक लिए कहते हैं, 'और आज दस वर्षों से कम समय में हम तमिलनाडु की धड़कन बन गए हैं। हमारा कार्यक्षेत्र यही राज्य है, और निहित स्वार्थ शांत हो गए हैं।'

हालाँकि सद्‌गुरु को मनुष्य के मनोभावों का बड़ा गहरा ज्ञान है, फिर भी उन्हें मानव प्रजाति की कुछ ऐसी भावनाओं पर हैरानी होती है, जिनसे वह मजबूर होता है। वे कहते हैं कि ईर्ष्या एक ऐसी भावना है, जिसे वे कभी समझ नहीं सके। यह एक ऐसी भावना है, जिसका उन्हें पिछले कई जन्मों में काफ़ी ज़्यादा सामना करना पड़ा है। इसमें कोई शक नहीं है कि उनका

आत्मविश्वास और दूसरों की राय की परवाह न करने के उनके रुख से ही लोगों के अंदर डर और नाराज़गी पैदा हुई। लेकिन काफ़ी पास से इस भावना का सामना करने के बावजूद वे कहते हैं कि उनके लिए इसके कोई मायने नहीं है। 'ईर्ष्या से मेरा कोई वास्ता नहीं है। मैं कभी नहीं समझ पाया कि लोग ईर्ष्या को अपने जीवन में इतनी बड़ी जगह कैसे दे सकते हैं कि इसकी वजह से किसी का विनाश करने पर उतारू हो जाएँ।'

और साथ ही, ईशा में आध्यात्मिक प्रक्रिया अपने विशुद्ध रूप में अर्पित की जाती है, और सद्गुरु जानते हैं कि यह उन लोगों को भयानक लग सकती है, जो छुट्टीयों में मौज़-मस्ती वाली आध्यात्मिकता पसंद करते हैं। वे स्वीकार करते हैं, 'मैं दिलासा देने वाले धंधे से नहीं जुड़ा हूँ, जिसे दुनिया में हमेशा सराहा जाएगा। जब आप जीवन में बुनियादी रूपांतरण की बात करते हैं, तो आपको दुनिया में ज़बर्दस्त विरोध का सामना करना पड़ेगा। अगर आप असली आध्यात्मिकता के रास्ते पर चलना चाहते हैं तो यह बहुत मुश्किल है, क्योंकि यह इंसान में ज़बर्दस्त रूपांतरण की माँग करता है। यह आध्यात्मिकता ऐसे लोगों के लिए नहीं है, जो सिर्फ़ अच्छा महसूस करना चाहते हैं; यह उन लोगों के लिए है जो वाक़ई जीवन के एक आयाम से दूसरे आयाम में जाना चाहते हैं। तो आमतौर पर यह कभी लोकप्रिय नहीं होती। बहुत से महान गुरुओं ने बड़े आंदोलन इसलिए शुरू नहीं किए, क्योंकि जब आप एक विशाल आंदोलन शुरू करते हैं, तो आपको समझौता करना पड़ता है। जब शिव यहाँ थे, या जब अगस्त्य मुनि यहाँ थे, तो इस तरह का आध्यात्मिक रूपांतरण बड़े पैमाने पर हुआ था। लेकिन पिछले कुछ हज़ार वर्षों में इस तरह की गहन अध्यात्मिक प्रक्रिया ने गति नहीं पकड़ी। पूरी लगन, थोड़ी चालाकी और भरपूर कृपा से किसी तरह हमने यह सब हासिल किया है। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है।'

ईशा के स्वयं सेवियों के लिए यह ख़ासतौर पर इम्तहान का वक़्त था। उनमें से कई ने तो माता-पिता की इच्छाओं को अनसुना करके इस आंदोलन से पूरे समय के लिए जुड़ने के लिए पारिवारिक ज़िम्मेदारियों से भी मुँह मोड़ लिया था। लेकिन स्वयंसेवी जीवन के उनके चुनाव को अब जनता की तीखी आलोचना का सामना करना पड़ रहा था। पंथवाद, भ्रष्ट व स्वच्छंद जीवन शैली और मतिभ्रम पैदा करने वाली नशीली चीज़ों के खाने में मिलाए जाने के आरोप गर्म थे। राजा को याद है, 'तब हमने आक्रामक होने का फ़ैसला

किया। अब तक हमने साधना और व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास पर ध्यान केंद्रित किया था। अब हमने लोगों तक पहुँचने और हमारे पास क्या है, यह साझा करने के लिए संगठित रूप से कोशिश करने का फ़ैसला लिया। हम लोगों से संपर्क बनाना चाहते थे, जिससे उन्हें पता चले कि हम क्या हैं, हमारे पास उनको देने के लिए क्या है, हम क्या करने में सक्षम हैं। दूसरा विकल्प था कि हम अपना सफ़ाया हो जाने दें।'

राजा और दूसरे ईशा शिक्षकों के लिए यह नई दिनचर्या पहले के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा थकाने वाली थी। एक अकेला शिक्षक तीन घंटे प्रति कक्षा की दर से हर दिन तीन कक्षाएँ लेता था। पूरे तमिलनाडु में हर साठ किलोमीटर पर एक कक्षा चलाई जाती थी। हर कार्यक्रम तेरह दिनों का होता था। 'कुछ रातों को हमें सिर्फ़ दो से तीन घंटे ही सोने को मिलता था। और जब कभी एक के बाद एक कई कार्यक्रम लगातार होते थे, तो मैं दो महीने तक घर नहीं जा पाता था।'

कार्यक्रम में भाग लेने वालों की शंकाओं का सामना करना आसान नहीं था। राजा को याद है कि पचास लोगों की कक्षा में सवाल उठाने वाले दो लोग हमेशा हुआ करते थे। ये सभी सवाल गुरु की विश्वसनीयता और नशीली दवाओं व सेक्स की अफ़वाहों को लेकर होते थे। ऐसे सवालों की उम्मीद भी थी। यह बड़ी पेचीदा चीज़ थी। वे कहते हैं, 'रुकावट डालने वाले दो प्रतिभागियों का मतलब यह था कि आपको बाक़ी अड़तालीस को भी खोना पड़ सकता था। लेकिन शिक्षकों ने शांत रहने की ठान रखी थी और हर सवाल का जवाब वे सहजता और ईमानदारी के साथ देते थे।'

शिक्षकों का समर्पण और प्रतिबद्धता आदरणीय थी। वे स्थानीय साधकों के परिवारों के साथ रहते और उनकी ईमानदारी व चरित्र उनके संपर्क में आने वालों को साफ़ दिखने लगा था। धीरे-धीरे यह बात फैल गई कि आप चाहे उनसे सहमत हों या न हों, ईशा साधकों की कथनी और करनी में अंतर नहीं है। राजा कहते हैं, 'इसमें हमें तीन से चार साल लगे, लेकिन हमारे लिए लोगों की राय बदल ज़रूर गई।'

वे बताते हैं कि रुख़ में नाटकीय बदलाव के कारण कैसे ईशा पर 'स्टिंग-ऑपरेशन' में शामिल एक तमिल पत्रकार ने, कई वर्षों बाद योग कार्यक्रम में हिस्सा लिया। यह वाकया 2001 में चेन्नई में हुआ। 'मुझे बताया

गया कि वह भाग लेने वालों में शामिल था। हालाँकि मुझे उसकी मौजूदगी का पता था, लेकिन मैंने उस पर कोई ख़ास ध्यान नहीं दिया। तेरह दिन के कार्यक्रम के बाद जब मैं वापस लौटने के लिए चेन्नई से ट्रेन में सवार होने जा रहा था, वह मेरे पास आया, बहुत माफ़ी माँगी और रो पड़ा। मेरी आँखों में भी आँसू आ गए। उस घटना के बरसों बाद आज हम वाक़ई अच्छे दोस्त हैं।'

इन्हीं दिनों सद्गुरु दो सौ साधकों के साथ कडप्पा के सोमेश्वर मंदिर पहुँचे। उस ग्रुप को मालूम था कि उस मंदिर का उनके गुरु से ख़ास संबंध था। श्री पलनी स्वामी वहाँ आए थे। सद्गुरु श्री ब्रह्मा ने अपने जीवन के आख़िरी कुछ महीने वहीं बिताए थे। ज़ाहिर है कि इस यात्रा का गहरा महत्त्व था। उनमें से कई लोगों ने अनुमान लगाया कि इसका उद्देश्य उनकी आध्यात्मिक यात्रा में आई कुछ रुकावटों को विसर्जित करने में मदद करना भी था। माँ कर्पूरी बताती हैं, 'मंदिर में शिवलिंग को अर्पित करने के लिए सद्गुरु एक सोने का सर्प ले गए थे।' वे बताती हैं कि कडप्पा में वहाँ के लोगों ने उनका बहुत गर्मजोशी और उदारता से स्वागत किया था और सद्गुरु के प्रति बहुत सम्मान का भाव देखने को मिला।

*तीन जन्मों की उनकी ख़ुद की संगठित कोशिश के अलावा, एक नाटकीय कहानी उस दूसरे ध्यानलिंग की है, जो लगभग एक हज़ार साल पहले स्थापित होने के बिलकुल पास पहुँच गया था। यह मध्यप्रदेश राज्य के भोपाल शहर के क़रीब स्थित भोजपुर की बात है।*

लेकिन अब एक और चुनौती आ खड़ी हुई। जब सद्गुरु मंदिर के गर्भ-गृह में जाने लगे, तो वहाँ के पुजारी अचानक उनके ख़िलाफ़ हो गए। तमाम एतराज जताए गए। 'उन लोगों ने कहा, मैं ब्राह्मण नहीं था। वे अचानक जाति, गोत्र, कुल आदि के बारे में बातें करने लगे और कहा कि अगर मैंने भीतर प्रवेश किया तो लिंग बेकार हो जाएगा।' सद्गुरु कहते हैं, 'मंदिर के ट्रस्टी ने उन्हें समझाने की कोशिश की। उसने कहा, "देखिए, यह

आदमी एक चढ़ावा लेकर आया है। इसका इस मंदिर से पुराना नाता है, इसे अंदर जाने दें।" उसने यह भी कहा कि मेरा गोत्र 'शिव' है! लेकिन ब्राह्मण अड़े हुए थे। तो वहाँ यह भारी बहस चल रही थी। मैं होंठों पर मुस्कान लिए यह सब देख रहा था। एक तरफ़ यह मंदिर और मेरे लिए इसकी अहमियत थी, और दूसरी तरफ़ ये लोग थे, जो तनख़्वाह पर काम करते थे और मुझे बता रहे थे कि मुझे अंदर जाने का अधिकार नहीं था। मैं बस वहाँ खड़ा यह तमाशा देख रहा था। लेकिन मैं उनकी बात मानने को तैयार भी नहीं था। तभी अचानक भारती ग़ुस्से से पागल हो गई और उन लोगों की भीड़ को चीरती हुई अंदर पहुँच गई।'

माँ कर्पूरी को वह दृश्य बड़ी अच्छी तरह याद है। 'मैंने भारती के वैसे तेवर पहले कभी नहीं देखे थे। उसने पुजारियों से कहा कि अगर सद्गुरु को नहीं आने दिया गया, तो उन्हें इसका नतीजा भुगतना पड़ेगा। असल में वह कह रही थी कि तुम लोग उन्हें आने दो वरना... सभी पुजारी भाग खड़े हुए। अब यह किसी को नहीं मालूम कि वे डरकर भागे या किसी और वजह से। यह ऊर्जा से सराबोर मंदिर सद्गुरु और उनके साधकों को तीन दिनों के लिए उपलब्ध रहा।' सद्गुरु कहते हैं, 'हमने अपनी तरह से शिव की पूजा की। स्थिति बिलकुल विस्फोटक थी। वे दिन कुछ अलग ही थे। मैंने फिर कभी उस तरह से किसी स्थिति को विस्फोटक नहीं बनाया।'

आख़िरकार, नाराज़ पुजारियों को ट्रस्टी और कलेक्टर ने मनाया और समझा-बुझाकर मंदिर के भीतर लाए। उन्हें आश्वासन दिया गया कि 'अशुद्ध' हो गए लिंग के शुद्धिकरण की रस्म के ख़र्च की भरपाई की जाएगी। जबकि साधकों के ग्रुप को याद है कि उस दिन भारती के भड़कने से घटनाओं का रुख़ बदल गया था, वहीं सद्गुरु को वह पल किसी और वजह से भी याद है। वे कहते हैं, 'वह एक बहुत बड़ा मज़ाक था, क्योंकि एक जन्म पहले भी बिलकुल ऐसा ही हुआ था, जब सद्गुरु श्री ब्रह्मा और विभूति ने मंदिर में प्रवेश किया था। तब भी ब्राह्मणों को एतराज हुआ था। लेकिन जब इन दो आदमियों ने – जो उस समय ऊर्जा के तेज से जल रहे थे – मुड़कर उनकी तरफ़ देखा तो वे भाग खड़े हुए। भारती फिर से वही सब कर रही थी। मैं ख़ूब खुलकर हँसा। वही स्थिति फिर से दोहराई जा रही थी।'

कोई भी पक्के तौर पर नहीं कह सकता था कि ऐसा सोमेश्वर मंदिर जाने के कारण हुआ था। लेकिन माँ कर्पूरी कहती हैं कि ध्यानलिंग के रास्ते में आने वाली बाधाएँ काफ़ी हद तक ख़त्म हो गईं। 'निजी स्तर पर भी हमारी आध्यात्मिक यात्रा आसान होने लगी। स्थितियाँ सामान्य होने लगीं।'

ईशा आंदोलन के पहले व्यस्त दशक को याद करते हुए सद्‌गुरु कहते हैं, 'हमारे अस्तित्व के पहले दस वर्षों में लोगों ने हम पर पत्थर फेंके। लेकिन लोग पत्थर इसलिए फेंकते हैं क्योंकि कहीं अचेतन में वे जानते हैं कि आपके फल क़ीमती हैं।' वे आगे कहते हैं, 'फलों से लदा होना पत्थर मारे जाने से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि फल पक्षियों, जानवरों और लोगों को भी आकर्षित करते हैं, सिर्फ़ पत्थरों को नहीं। साथ ही, जो लोग पत्थर फेंकते हैं, वे आपको काट नहीं डालते। वे वही करते हैं, जो काम सबसे अच्छा जानते हैं – पत्थर फेंकना।' कुछ रुककर वे कहते हैं, 'और अगर आप अपने फल स्वेच्छा से गिरा देते हैं, तो पत्थरों को कम किया जा सकता है।'

शायद इसी बात से फ़र्क़ पड़ा। आत्म रूपांतरण के फल को सबके लिए उपलब्ध कराने के लक्ष्य वाले सपने को टाला तो जा सकता था, लेकिन नष्ट नहीं किया जा सकता था। सदियों से इसके फलीभूत होने का इंतज़ार कर चुकने के बाद इसे अब और टाला नहीं जा सकता था। पत्थर तो सफ़र का एक हिस्सा थे। लेकिन जो पेड़ अपने फल बाँटना चाहता था, उसके लिए इन पत्थरों के कोई मायने नहीं थे। किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाना था। हर कोई आमंत्रित था, हर कोई चुना गया था। ऐसा लग रहा था कि ध्यानलिंग के साकार होने का समय आ गया है।

जिन्होंने इस प्रक्रिया को देखा, वे जान गए कि वे फिर कभी पहले जैसे नहीं रहेंगे। एक ब्रह्मचारिणी कहती है, 'वह बहुत आनंददायक पल था।' उसकी आँखें उस पल को याद करते हुए चमक उठती हैं। 'ऊर्जा का स्तर ज़बर्दस्त और कल्पना से परे था। हमें मालूम नहीं था कि हो क्या रहा है, लेकिन हम जानते थे कि हम किसी बहुत महान काम में हिस्सा ले रहे हैं।'

इस उपलब्धि की विशालता शायद तभी समझ आती है, जब हम सद्‌गुरु को इससे पहले के प्रयासों के बारे में बताते हुए सुनते हैं, जो बेकार गए और मुसीबतें भी लेकर आए। तीन जन्मों की उनकी ख़ुद की संगठित कोशिश के अलावा, एक नाटकीय कहानी उस दूसरे ध्यानलिंग की है, जो

लगभग एक हज़ार साल पहले स्थापित होने के बिलकुल पास पहुँच गया था। यह मध्यप्रदेश राज्य के भोपाल शहर के क़रीब स्थित भोजपुर की बात है। सात स्त्रियों और सात पुरुषों सहित चौदह लोगों को इस महत्त्वाकांक्षी योजना के लिए कई वर्षों की मेहनत के बाद तैयार किया गया था। लेकिन प्राण-प्रतिष्ठा के अंतिम चरणों में, इसके पूरा होने की पिछली शाम को, उनमें से एक स्त्री ने ठीक उसी तरह अपना शरीर त्याग दिया था, जैसे शताब्दियों बाद विजी ने महासमाधि ले ली थी। सद्‌गुरु ने बताया, 'शरीर छोड़ने का प्रलोभन बहुत ज़्यादा होता है, क्योंकि यहाँ आपके पास एक ऐसा मौक़ा होता है, जिसमें शरीर के साथ संबंध इतना कम हो जाता है कि ज़रा-सी कोशिश से आप शरीर छोड़ सकते हैं। यह संपूर्ण विसर्जन है।' शायद कार्य के अंत को पास देखने का उत्साह भी था। उस स्त्री की कोशिश ढीली पड़ गई, अंतिम क्षणों में उसकी एकाग्रता डगमगा गई और लक्ष्य चूक गया।

इस प्रक्रिया का नेतृत्व करने वाले योगी निराश हो गए, लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी। सद्‌गुरु कहते हैं, 'उन्होंने अपनी इड़ा और पिंगला नाड़ी को काम में लेते हुए पुरुष और स्त्री, दोनों की भूमिका ख़ुद निभाने की सोची, जो शरीर पर भारी दबाव डालता है। उन्होंने यह भूमिका निभाई और यह प्रक्रिया पूरी भी कर ली होती, क्योंकि ज़रा-सा काम ही बचा था। यहाँ की स्थिति में भी ईशा जैसी विचित्र समानता थी। लक्ष्य लगभग नज़र आ रहा था और तभी एक स्थानीय हमला हुआ। जो लड़ाई छिड़ी, उसमें उस योगी का बायाँ पैर कटकर अलग हो गया। अब उनकी इड़ा नाड़ी बेकार हो चुकी थी और सारी प्रक्रिया एक बार फिर ठप्प हो गई।'

स्थिति बड़ी निराशाजनक थी। इस काम के लिए दूसरी स्त्री को जल्दी से प्रशिक्षित किया गया। अब यह तय किया गया कि वह योगी और स्त्री अपने-अपने शरीर त्याग कर लिंग में विलीन हो जाएँ, इसके अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं था। चक्रों के ऊर्जान्वित हो जाने पर उन्हें बंद करने का काम एक शिष्य को सौंपा गया। यह बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य था, चक्रों को बंद किए बिना उनकी ऊर्जा बिखर जाती।

इसका पूरा इंतज़ाम कर लिया गया। भाग लेने वाले पूरी तरह से तैयार थे। लेकिन तभी फिर एक चूक हो गई। जिस शिष्य पर चक्र बंद करने की ज़िम्मेदारी थी, वह उस हालात से अभिभूत और व्यग्र हो उठा। अपने प्रिय

गुरु को शरीर छोड़ते देखकर स्थिर और सतर्क बने रहना आसान न था। सद्‌गुरु कहते हैं, 'यह स्थिति बहुत ज़्यादा अभिभूत करने वाली थी। आपके गुरु, आपके स्वामी, आपके जीवन और साँस ने अपना शरीर छोड़ दिया, और आप यहाँ बैठे हुए वह देख रहे हैं। यह अति हो गई थी। वह सहन न कर सका।'

*कुछ ध्यान प्रक्रियाओं के बाद सद्‌गुरु लिंग के आधार पर चढ़ गए। उन्होंने वहाँ मौजूद सभी लोगों को आँखें बंद कर लेने को कहा। सबने दम साध कर आदेश का पालन किया। थोड़ी देर बाद उन्हें कुछ गिरने की आवाज़ सुनाई पड़ी।*

तो शिष्य हिचकिचा गया, चक्रों को वक़्त पर बंद नहीं किया गया और दुखद रूप से लिंग विकृत रह गया, उसकी प्राण-प्रतिष्ठा अधूरी रह गई। सद्‌गुरु कहते हैं, 'लिंग में अचानक एक खड़ी दरार पड़ गई... पूरी योजना को वहीं छोड़ देना पड़ा। प्रक्रिया पिचानवे प्रतिशत पूरी हो चुकी थी, लेकिन अब यह एक दुखद रूप है। दो लोगों ने अपनी जानें गँवा दीं। उन्होंने इसके लिए बहुत ज़्यादा मेहनत की थी, लेकिन यह काम पूरा न हो सका... वह लिंग उसी तरह बना हुआ है, बहुत शक्तिशाली, लेकिन थोड़ा विकृत। इसकी ऊर्जा कम नहीं हो रही है। अगर इसकी प्राण-प्रतिष्ठा मंत्रों द्वारा की गई होती, तो यह कम हो गई होती। एक हज़ार साल का समय बहुत होता है, लेकिन यह कम नहीं हुई है। लिंग अभी भी वहाँ खड़ा है, अधूरा और खंडित।'

ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा के दिनों में सद्‌गुरु भारती के साथ भोजपुर गए। उन्होंने बताया कि जब वे उस मंदिर से लगभग आठ किलोमीटर दूर थे, तो उनकी रीढ़ की हड्डी में भयंकर दर्द महसूस हुआ। जब वे मंदिर पहुँचे तो उनका बायाँ पैर अचानक सुन्न हो गया, जिससे उन्हें कार से बाहर निकलने में मुश्किल हुई। भारती के लिए वह लिंग इतना ज़बर्दस्त अनुभव बन गया कि वह लगभग अपना शरीर ही छोड़ चुकी थी। उसे लगा कि वह कुछ ही मिनटों से ध्यान में बैठी है, पर पौन घंटा बीत चुका था। उसे

वापस लाने के लिए सद्‌गुरु को उसके आज्ञा चक्र पर काफ़ी देर तक कोशिश करनी पड़ी। दोनों ने अपने-अपने तरीक़ों से इस खंडित और अधूरे लिंग के दुखद इतिहास को अनुभव किया।

सद्‌गुरु ने बताया कि भोजपुर के लिंग को ठीक करना, एक नए लिंग को तैयार करने से ज़्यादा चुनौती भरा होता। इसके अलावा, वह मंदिर पुरातत्व विभाग के अधीन था और इसमें किसी तरह की छेड़छाड़ पर भारी एतराज हो सकता था। वहाँ से लौटते वक़्त सद्‌गुरु और भारती को यह एहसास बेचैन कर रहा था कि भोजपुर के विकृत लिंग की कहानी फिर से दोहराई जा सकती है। ऐसा क़रीब-क़रीब हो ही गया था।

इस बेहद गूढ़ योगिक प्रक्रिया के लिखित इतिहास में सद्‌गुरु द्वारा ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा का वर्णन ही सबसे ज़्यादा स्पष्ट है।

वे बताते हैं कि इसका उद्देश्य एक ऊर्जा-रूप की रचना करना था, जिसमें सातों चक्र अपनी उच्चतम अवस्था में काम कर रहे हों। एक इंसान में ये चक्र कर्म-तत्व से अपनी जगहों पर क़ायम रहते हैं। लेकिन वे स्पष्ट रूप से जानते थे कि ध्यानलिंग के लिए किसी भी कर्म-तत्व का इस्तेमाल नहीं किया जाना था। फिर भी, बिना इसकी सहायता के चक्र बंद नहीं किए जा सकते थे। इसका मतलब यह होता कि सारी रचना बिखर जाती। इसलिए चुनौती यह थी कि चक्रों को तीनों प्रतिभागियों से प्राण-तत्व लेकर बंद किया जाए, हालाँकि इसमें कर्म-तत्व जैसी दृढ़ता नहीं होती है।

उन्होंने बाद में बताया, 'अगर प्राण-प्रतिष्ठा में शामिल बाक़ी दो लोग मेरे साथ होते, तो मैंने इसे बड़ी आसानी से बंद कर दिया होता। चूंकि एक इंसान कम था, इसलिए तीन अलग शरीरों से कर्म-तत्व का इस्तेमाल किए बिना, प्राण-तत्व के तीन धागे बनाकर उन्हें बुनना और एक ख़ास तरीक़े से बाँधना एक मुश्किल काम था... असल में ये तीन धागे नाड़ियाँ थीं, एक भारती की, एक मेरी और एक तीसरी, जो मेरी थी लेकिन विजी जैसी तैयार की गई थी। किसी के शरीर से नाड़ी लेना नुक़सानदेह हो सकता था। इसे बड़े ध्यान से किया जाना था और नुक़सान को सीमित रखने के लिए व्यापक सावधानियाँ बरती गईं थीं।'

चूँकि इसमें ख़ुद उनकी 'कई भूमिकाएँ' थीं, नुक़सान से पूरी तरह से बचना आसान न था। नतीजा यह हुआ कि उनका शरीर बहुत सी छोटी-बड़ी बीमारियों से ग्रस्त हो गया। वे कहते हैं, 'मैं ख़ुद इसमें शामिल नहीं होना चाहता था। शुरू में मैं सोचता था कि इसमें चौदह लोग भाग लेंगे और मैं संचालन करूँगा। लेकिन यहाँ तो मुझे ख़ुद ही इस प्रक्रिया का हिस्सा बनना पड़ा। विजी के जाने के बाद तो मुझे दोहरी भूमिका निभानी पड़ी, एक साथ दो वाद्ययंत्र बजाने जैसा था यह।'

ऊर्जाओं को बाँधने के असली काम, जिसमें थोड़े-बहुत कर्म की ज़रूरत थी, के अलावा ध्यानलिंग में किसी दूसरे निजी कर्म का इस्तेमाल नहीं किया गया। हरेक चक्र को स्थापित करके उसे बंद किया गया - क्रम से, ऊपर से नीचे की तरफ़ बढ़ते हुए। हालाँकि ऊपर के चक्रों को बंद करने की प्रक्रिया ज़्यादा सूक्ष्म थी, लेकिन नीचे के चक्र शारीरिक तौर पर ज़्यादा बोझ डालने वाले थे। सद्गुरु ने बताया, 'मुख्य चुनौती वाले नीचले चक्र - स्वाधिष्ठान और मूलाधार - थे। चूँकि एक इंसान कम था, इसलिए इस प्रक्रिया ने मेरे शरीर पर बहुत बुरा असर डाला और मेरे स्वाधिष्ठान और मूलाधार कमज़ोर हो गए। ऐसा लगता था कि मैं किसी भी समय शरीर छोड़ सकता था।'

*ध्यानलिंग लगभग शिव को पकड़ कर उन्हें वहीं क़ैद कर देने जैसा है। वे आसानी से धरती पर नहीं उतरते, वे इसकी क़ीमत माँगते हैं, अपने ही तरीक़े से। यह बहुत गहन विज्ञान है।*

राजा उनके साथ चेन्नई गए जहाँ उन्होंने एक ख़ास तरह के पत्थर को लिंग के लिए चुना। वैसे असली प्राण-प्रतिष्ठा का ज़्यादातर काम तांबे की छड़ से किया गया, जो सद्गुरु ने अपने घर में रखी हुई थी। राजा कहते हैं, 'वहाँ खड़े हम सब लोगों को मालूम नहीं था कि क्या हो रहा था! हम वहीं बैठकर उन्हें पत्थर के लिंग की स्थापना का निरीक्षण करते हुए देखते थे। लेकिन जब प्रक्रिया शुरू होती थी - जो आमतौर पर देर रात में शुरू होती थी - तो हम तुरंत जान जाते थे। उस वक़्त ऊर्जा बहुत ज़्यादा होती थी।' वे बताते हैं कि उस वक़्त ख़ुद उनकी भूमिका एक सिपाही की होती

थी, एक विश्वासपात्र लेफ़्टिनेंट, जिसे ख़ुद पक्के तौर पर पता नहीं था कि क्या हो रहा था, लेकिन वह दुनिया के विरोध से अपने गुरु के मिशन की रक्षा के लिए जान लड़ा देने को तैयार था।

इस प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल भारती को भी इसकी बारीकियों का भान नहीं था। वह बस इतना देख सकती थी कि वह एक साहसी संचालक की निगरानी में थी। 'मुझे याद है कि पारे से भरी और सातों चक्रों के गुणों से ऊर्जान्वित तांबे की नली 'लिंगदंड' को लिंगम में प्रवेश कराकर प्राण-प्रतिष्ठा पूरी होने से पहले बंद किया जाना था। यह एक बड़ा क़दम था। हरेक चक्र को कई-कई दिनों तक चलने वाली गहन साधना से ऊर्जान्वित किया जाता था। जब इस तरह की अवर्णनीय ऊर्जा स्थितियाँ होती थीं, तो हमें रात और दिन की सुध नहीं रहती थी। ऊर्जाएँ मेरे चक्रों और नाड़ियों में उछलती और नाचती थीं, जिससे मेरा शरीर फटा जाता था। हरेक चक्र को ऊर्जान्वित करने के बाद सद्‌गुरु उस प्रक्रिया के बारे में ब्रह्मचारियों और आश्रमवासियों को बताते थे। इन सत्संगों में हम परमानन्द की अवस्था में होते थे। वे उन्हें कई दिनों की साधना के बारे में संक्षेप में बताते थे।'

जिन लोगों ने इस प्रक्रिया को देखा, उनके लिए शायद *विशुद्धि* चक्र (जो शक्ति का स्थान माना जाता है) को बंद करने की प्रक्रिया सबसे हैरान करने वाली थी। सद्‌गुरु ने बताया कि विशुद्धि-ध्यान को बहुत कम बढ़ावा दिया जाता है, क्योंकि यह लोगों को अनावश्यक रूप से शक्तिशाली बना सकता है। अक्सर लोगों में उस शक्ति को सँभालने के लिए ज़रूरी ज़िम्मेदारी और संतुलन की कमी होती है। चूँकि समय कम था और विशुद्धि को ऊर्जान्वित किए जाने की ज़रूरत थी, तो सद्‌गुरु ने इस प्रक्रिया के लिए आखिरकार एक ऐसे प्राणी का इस्तेमाल करने का फ़ैसला किया, जो किसी समय में योगी था। उन्होंने बाद में बताया, 'वह एक शरीरहीन प्राणी था और मुक्ति की तलाश में था। यह अमावस्या की देर रात का समय था और पाँच-छह सौ से अधिक लोग इस प्रक्रिया को देख रहे थे... हमने इस प्राणी को पकड़ने के लिए एक ख़ास तरीक़े से नारियल का इस्तेमाल किया और फिर ज़रूरी चीज़ें कीं। वह अनिच्छा से नहीं, बल्कि ख़ुद अपनी इच्छा से इसमें फँस रहा था। एक बार जब उसे यह एहसास हो गया कि उसका इस्तेमाल कैसे किया जाएगा, तो वह इस प्रक्रिया के लिए और ज़्यादा इच्छुक हो गया। ...तो हमने उस योगी को वाक़ई में पकड़ लिया और फिर उसे

शुद्ध ऊर्जा बनाकर विशुद्धि चक्र में रख दिया। वह ध्यानलिंग का एक हिस्सा बन गया।'

एक ब्रह्मचारी को याद आता है कि जब उस नारियल को एक तय जगह पर रखा गया, तो उसी वक़्त एक छोटा-सा साँप रेंगता हुआ उसके पास पहुँचा। सद्गुरु ने बाद में बताया कि साँप हमेशा एक ख़ास तरह की ऊर्जा की तरफ़ खिंचते हैं। इसमें कोई हैरत की बात नहीं थी। उस ब्रह्मचारी ने बताया कि उस रात ऊर्जा बहुत प्रचंड थी।

जब शरीरहीन प्राणी को क़ैद करने की नैतिकता के बारे में सवाल किया गया, तो उनका करारा जवाब था, 'जब तक किसी चीज़ के जरिए लोगों को मुक्ति दिलाने का उद्देश्य पूरा होता है, मेरे लिए सब कुछ उचित है। मेरे लिए कुछ भी उचित है। मैं कोई ऐसा इंसान नहीं हूँ जो किसी मान्यता, या आचार-संहिता या नैतिकताओं से सरोकार रखता हो। जो मैं कह रहा हूँ, वह आपको ख़तरनाक लग सकता है, लेकिन जो भी इस मार्ग पर चलता है, वह इसी तरह का होता है।'

उन्होंने यह भी कहा कि किसी भी आध्यात्मिक चाह वाले व्यक्ति के लिए साधना की प्रक्रिया भी यही है - शारीरिक, मानसिक और सांस्कृतिक तौर पर सीमित पहचानों से दूर जाना। व्यक्तिगत विसर्जन की इस प्रक्रिया का लक्ष्य 'अलग अस्तित्व के भाव' को पूरी तरह से ख़त्म करना है। 'जब हमने उसे पकड़ा, तब उसमें "मैं" मौजूद था, लेकिन जब हमने उसे वहाँ रख दिया, जब विशुद्धि की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी गई, तब उसमें "मैं" नहीं बचा था। यह कुछ ऐसा है, जैसे कोई एक मिट्टी का बर्तन बना रहा हो। यह बर्तन बन चुका, लेकिन अभी पकाया नहीं गया। मैंने इसे लिया, फिर से इसे मिट्टी बना दिया और फिर इससे लिंग बना दिया। यह सब कुछ इसी तरह से हुआ। आप शायद सोच रहे हैं, "ओह, वह इंसान, क्या वह वहाँ बंद है? उसका क्या होगा? उसके विकास का क्या होगा?" अब वहाँ कोई "वह" नहीं है। मैंने उसे ध्यानलिंग का रूप दे दिया है। हमने बस उस ऊर्जा को इस्तेमाल कर लिया, जो एक मूर्ख की तरह, व्यक्तिगत तौर पर इधर-उधर भटक रही थी। मैंने उसकी व्यक्तिगत पहचान को नष्ट करके उसे ध्यानलिंग में शामिल कर लिया है। तो असल में अब "वह" नहीं है, और भाषा का इस्तेमाल करके बस इतना ही कह सकते हैं।' इस शरीर हीन प्राणी के कर्मों

का क्या हुआ? उसने उनसे कैसे छुटकारा पाया? क्या उन्होंने उसके कर्म अपने ऊपर ले लिए? सद्गुरु ने छोटा सा जवाब दिया, 'इसे और कहाँ ले जाया जा सकता था?'

प्राण-प्रतिष्ठा की सबसे बड़ी ख़ासियत यह थी कि इसमें किसी रीति-रिवाज या मंत्रों की ज़रूरत नहीं थी। सद्गुरु ने अक्सर इस ओर इशारा किया है कि यह अगस्त्य मुनि से जुड़ी योग की दक्षिण भारतीय परंपरा की ख़ासियत है। 'इसमें सब कुछ शुद्ध ऊर्जा से किया जाता है। हम मंत्रों के इस्तेमाल की परवाह नहीं करते। हम बस ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं। बस विशुद्ध शक्ति, जैसी कि यह है। यह बिलकुल अलग मार्ग और नज़रिया है। यह एक बिलकुल ही अलग आयाम है।'

ध्यानलिंग की सारी प्रक्रिया देखने वालों को सद्गुरु की स्पष्टता ने सबसे ज़्यादा प्रभावित किया। लगातर बदलते हालात में भी वे न तो हताश हुए और न ही उत्तेजित हुए। अत्यंत जटिल और विस्तृत प्रक्रियाओं के दौरान भी उनमें न कोई संदेह दिखा और न ही कोई हिचक। ज़ाहिर है कि यह ज्ञान उन्हें दो जन्म पहले मिला था, जब उनके गुरु ने अपने दंड से उनके माथे को छुआ था। वे कहते हैं, 'जब कभी भी जीवन के किसी आयाम को जानने की ज़रूरत पड़ती है, उस वक़्त उसका जवाब हमेशा मेरे भीतर ही मिल जाता है। मेरे लिए जीवन हमेशा ऐसा ही रहा है।' जैसा कि उन्होंने हाल ही में एक सत्संग में कहा, 'एक चीज़ जिसमें मैं वाक़ई माहिर हूँ, वह है, अपने आसपास की हवा को ऊर्जा से सराबोर कर देना। आप जानते ही हैं कि मैं कोई महान शिक्षक नहीं हूँ। मैं बोलता इसलिए रहता हूँ, क्योंकि हर वक़्त बकबक किए बिना दुनिया में काम नहीं चलता।' उस वक़्त जो लोग वहाँ मौजूद थे, वे पुष्टि करते हैं कि उन्होंने जो कुछ देखा, उससे वाक़ई ऐसा लग रहा था जैसे उनको वायुमंडल की गहरी समझ हो। ऊर्जा का उफान वहाँ बिलकुल साफ़ मौजूद था।

दूसरा नाटकीय क्षण वह था, जब सद्गुरु ने हाथ से एक साधारण ताली बजाकर पत्थर के लिंग में एक बारीक दरार पैदा कर दी। वहाँ मौजूद देखने वाले हैरान रह गए। उन सबको अच्छी तरह पता था कि लिंग एशिया के सबसे ज़्यादा घनत्व वाले ग्रेनाइट से बना था। (चार हज़ार दो सौ से ज़्यादा यूनिट वाला) लेकिन अब ऐसे चमत्कार गुरु की मौजूदगी में आम बात लगते थे। सद्गुरु ने बाद में यह प्रक्रिया उन्हें समझाई, 'प्राण-प्रतिष्ठा

की प्रक्रिया के दौरान अगर संयोग से मेरा शरीर छूट जाता, तो हम जानते थे कि ऊर्जा को बंद करना एक बड़ी समस्या बन जाती। हम नहीं चाहते थे कि ऐसी कोई मुश्किल आए... इसलिए मैंने इसे एक संभावना के तौर पर हमेशा रखा था कि अगर प्राण-प्रतिष्ठा योजना के मुताबिक़ नहीं हो पाई, तो मेरे लिए इसमें समा जाने का ही रास्ता बचता और किसी दूसरे को ऊर्जाओं को बंद करना पड़ता। इसकी काफ़ी संभावना थी कि ऊर्जाओं को धारण न कर पाने के कारण लिंग टूट जाता। इसलिए एहतियात के तौर पर मैंने लिंग में एक बारीक सी खड़ी दरार पैदा कर दी।'

कुछ लोगों को याद है कि स्वाधिष्ठान बंद करने की विशाल चुनौती को सम्पन्न करने के बाद सद्‌गुरु किस तरह गिर पड़े थे। ऐसा लगा जैसे वाक़ई उनका अंत आ गया था। भारती कहती है, 'हरेक चक्र के बंद होने पर मैंने इसे अपने ऊर्जा-शरीर में साफ़ तौर पर महसूस किया। जब इस प्रक्रिया के सबसे मुश्किल हिस्से स्वाधिष्ठान की बारी आई, तो सद्‌गुरु को ज़बर्दस्त शारीरिक पीड़ा हुई, क्योंकि उनका भौतिक शरीर काफ़ी अस्थिर था।'

इससे जुड़े ख़तरों से सद्‌गुरु अनजान नहीं थे। 'इस बात की पूरी संभावना थी कि उस वक़्त मैं अपना शरीर खो बैठता। मैंने सब कुछ तैयार कर रखा था, यहाँ तक कि अपनी बेटी को क़ानूनन गोद देने का इंतज़ाम, आश्रम की देखभाल के तौर-तरीक़ों का ब्यौरा, सब कुछ लिखा गया था। मैंने समाधि तैयार करा रखी थी और एक वाहन भी बाहर खड़ा रखने को कह रखा था। अगर मैं पूरी तरह शरीर खो देता तो कोई चिंता की बात नहीं थी, लोगों को मालूम था कि इस हालात को कैसे सँभालना था। लेकिन मान लीजिए, अगर मैं असहाय हो जाता और मुझे अंदर लाए जाने की ज़रूरत होती, तो इसके लिए एक पुरानी टाटा सिएरा वहाँ मौजूद थी।'

*जब आप एक जीवित गुरु के सामने बैठते हैं, तो आपको कई दिक्क़तें आती हैं, क्योंकि आप उनकी शख़्सियत पर ध्यान दिए बग़ैर नहीं रह सकते... ध्यानलिंग के साथ आपको ये समस्याएँ नहीं हैं, क्योंकि उसमें कोई भौतिक-शरीर या मानसिक-शरीर नहीं है।*

राजा बताते हैं कि ब्रह्मचारियों को लिंग की तरफ़ मुँह करके बैठने के लिए कहा गया था, जबकि गृहस्थ साधकों को इसकी तरफ़ पीठ करके बैठना था। कुछ ध्यान प्रक्रियाओं के बाद सद्गुरु लिंग के आधार पर चढ़ गए। उन्होंने वहाँ मौजूद सभी लोगों को आँखें बंद कर लेने को कहा। सबने दम साध कर आदेश का पालन किया। थोड़ी देर बाद उन्हें कुछ गिरने की आवाज़ सुनाई पड़ी। जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तो देखा कि सद्गुरु गिरे पड़े थे। प्राण-प्रतिष्ठा पूरी हो चुकी थी। लेकिन ऐसा लगा कि सद्गुरु ने इसकी क़ीमत चुका दी थी।

आश्रम निवासियों ने ब्रह्मचारियों के एक दल को उनके निष्क्रिय शरीर को बाहर कार की तरफ़ ले जाते हुए देखा। वे जीवित लग रहे थे, लेकिन नाम-मात्र के लिए। लोगों को मालूम था कि उनकी हालत बड़ी नाजुक थी। तीन दिन तक तो वे खड़े भी नहीं हो पा रहे थे। वे अपनी आवाज़ तक खो चुके थे और सिर्फ़ लिखकर बात करते थे। वे कहते हैं, 'मेरा शरीर इतनी बुरी तरह टूट चुका था कि इसकी मरम्मत भी नहीं की जा सकती थी। डॉक्टरी तरीक़े से इसे ठीक करना निश्चित रूप से संभव नहीं था। इसे फिर से चालू करना लगभग एक नए जीवन की रचना करने जैसा था।'

भारती ने उनके छिन्न-भिन्न सिस्टम को बहाल करने की पूरी कोशिश की, लेकिन कोई उम्मीद नहीं लगती थी। वे ख़ामोश, कमज़ोर और भाव शून्य रहने लगे थे। फिर किसी दिन उसने मज़ाक के तौर पर उनसे पूछा, 'क्या हम कहीं घूमने चलें?' यह अंधेरे में तीर चलाने जैसा था। अगर ऐसी कोई चीज़ थी जो उनमें जीवन के प्रति उत्साह लौटा लाती, तो वह था, उनका घूमने का शौक़। 'तभी उनकी आँखों में चमक लौट आई,' वे मुस्कराहट के साथ याद करती हैं।

वह आदमी, जो पिछले सत्रह वर्षों से बयालीस साल की उम्र में इस दुनिया से जाने के लिए तैयार था, अचानक उसने संसार में रुकने की क्यों सोची? वे मज़ाक के लहजे में कहते हैं, 'इसलिए नहीं कि मैं ज़िंदा रहने के लिए तड़प रहा था। स्थिति जितनी गंभीर होती है, मैं उसे उतना ही मज़ाक की तरह लेता हूँ। जब भारती ने मुझसे यह सवाल पूछा तो मैंने सोचा, 'ठीक है, बस खेल के लिए ही सही, चलो कोशिश करके देखते हैं कि मैं अपने शरीर को फिर से ठीक कर पाता हूँ कि नहीं। बाद में यह एक चुनौती बन गई।'

इसको एक खेल की तरह लेने के अलावा, अपने शरीर को फिर से दुरुस्त करने का उनका फ़ैसला बेशक़ इस बात से प्रेरित था कि अब उनके पास ढेरों ऐसे शिष्य थे, जिनके लिए सद्गुरु उनकी ज़िंदगी की साँसों की तरह थे। शायद उनको यह भी एहसास था कि उनकी मौजूदगी से ध्यानलिंग की सामाजिक स्वीकृति ज़्यादा आसान हो जाएगी। वे मानते हैं, 'इसमें सामाजिक कारण भी था। लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि मेरे आसपास कई लोग थे, जो ऐसे मुक़ाम पर थे, जहाँ मुझे उनका मार्गदर्शन करना था और उन्हें आगे बढ़ाना था। इन लोगों ने दूसरों की कल्पना से अधिक मेरा साथ निभाया था। वे चट्टान की तरह मेरे लिए अडिग रहे। कई ऐसे लोग हैं जो भावनात्मक रूप से मेरे साथ खड़े होने को तत्पर रहे हैं। मैं इसे कम नहीं आँक रहा हूँ। पर आप सिर्फ़ भावना को लेकर मृत्यु के साथ दख़लंदाजी नहीं करते। पर ये अलग तरह के लोग थे। ये मेरे लिए जीने या मरने को तैयार थे। ऊर्जा के स्तर पर वे मुझसे इतने ज़्यादा जुड़ गए थे कि उनको मुझमें और ख़ुद में अंतर का कोई ज्ञान नहीं रहा। वे मेरी जीवन प्रक्रिया के साथ घुल-मिल गए हैं। मेरा यहाँ रुक जाना उनके लिए था, ताकि मैं सुनिश्चित कर सकूँ कि वे अंत में पार हो जाएँ।'

अब उनका स्वास्थ्य काफ़ी ठीक है, मगर वे कहते हैं कि वे अब भी 'लाइफ़ सपोर्ट' पर हैं। 'मैंने प्राण-प्रतिष्ठा प्रक्रिया में अपनी इतनी ज़्यादा ऊर्जा लगा दी कि इससे मेरे शरीर को गंभीर नुक़सान पहुँचा है। मेरा ऊर्जा-तंत्र बुरी तरह से छिन्न-भिन्न हो गया। तब से जीवित रहने के लिए मुझे कुछ लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। मैं अभी भी सौ फ़ीसदी ठीक नहीं हुआ हूँ। अभी इस वक़्त ऐसा लग सकता है कि मैं पूरी तरह स्वस्थ हूँ और अगले ही पल मैं गंभीर रूप से बीमार हो सकता हूँ - डॉक्टरी तौर पर। लेकिन काफ़ी हद तक मैं उस दौर से बाहर आ चुका हूँ।'

उनसे अक्सर उस तांबे के कड़े के बारे में पूछा जाता है, जो वे अपने दाहिने पैर के टखने पर पहनते हैं। वे बताते हैं, 'यह एक बेड़ी है जो मुझे शरीर से बांधे रखती है। इस शरीर की पुनर्रचना एक बड़ी चुनौती रहा है। कई लोगों ने सचमुच मुझे अपना जीवन दे दिया, ताकि मैं उनकी ऊर्जा का इस्तेमाल करके धीरे-धीरे इस शरीर की पुनर्रचना कर सकूँ। अब मैं लगभग अस्सी फ़ीसदी ठीक हो गया हूँ और बाक़ी भी मैं ठीक कर सकता हूँ, अगर मुझे एक महीने का समय मिल जाए। लेकिन मुझे वक़्त ही नहीं मिलता।

चूंकि मेरे स्वास्थ्य में उतार-चढ़ाव होता रहता है, इसलिए मेरे आसपास के लोग डरे रहते हैं कि मैं कहीं चला न जाऊँ। तो उन्होंने यह बेड़ी मुझे पहना दी। यह कड़ा मेरे शरीर को स्थिर बनाता है। यह मुझे शरीर से अचानक खिसकने से रोकता है।'

एक बार मैंने उनसे पूछा, 'लगातार "लाइफ़ सपोर्ट" पर रहना आपको कैसा लगता है?' वे दबी हँसी से बोले, 'इसका मतलब ज़बर्दस्त आज़ादी है। लेकिन इसका मतलब गुलामी भी है।' उन्होंने आगे कहा, 'जिस दिन मैं इसे हटा दूँगा, तब मेरे पास बहुत कम वक़्त रह जाएगा। चालीस दिनों के भीतर मैं चला जाऊँगा।'

चौबीस जून 1999 को ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा पूरी हो गई। यह मंदिर उसी साल नवम्बर में लोगों के लिए खोल दिया गया। सहस्राब्दी के आख़िरी साल को सद्गुरु के जीवन और ईशा के युवा इतिहास के सबसे काले अध्याय का अंत कहा जा सकता है। जहाँ एक तरफ़ ईशा में ख़ुशी का माहौल था, वहीं दूसरी तरफ दुनिया इस उपलब्धि के ऐतिहासिक महत्त्व से अनजान थी, और काफ़ी हद तक आज भी है। सद्गुरु अक्सर कहते हैं, 'मानवता के लिए ध्यानलिंग का क्या महत्त्व है, इसे ठीक से समझने में दुनिया को कुछ पीढ़ियाँ लग जाएँगी।'

ध्यानलिंग असल में है क्या? यह उनके लिए भी एक पहेली बनी हुई है, जिनके जीवन पर इसने गहराई से असर डाला है और उन्हें बदल दिया है। हर दर्शक को यहाँ सिर्फ़ एक काले पत्थर का भव्य लिंग दिखता है। लेकिन सद्गुरु ने अक्सर कहा है कि इस ढाँचे को पूरी तरह हटाया भी जा सकता है। वहाँ पर ढाँचे के होने की वजह सिर्फ़ यह है कि ज़्यादातर लोगों को ध्यान के लिए किसी भौतिक रूप की ज़रूरत होती है। असली लिंग तो पूरी तरह से सक्रिय एक सूक्ष्म शरीर है, जो अदृश्य है, और जिसके सातों चक्र अपने चरम पर कार्य कर रहे हैं। मुख्य रूप से इसकी प्रकृति इंसान को ध्यान की अवस्था ले जाने की है। देश में कई जगहों पर स्थापित मशहूर ज्योतिर्लिंग जहाँ स्वास्थ्य और भौतिक ख़ुशहाली पाने के लिए हैं, वहीं ध्यानलिंग एकमात्र लिंग है, जो सभी सातों चक्रों के गुणों को एक साथ

समाहित किए हुए है। इसके पास बैठना किसी जीवित गुरु की मौजूदगी में बैठने जैसा है, जो चुपचाप, खुले दिल से और बिना किसी पक्षपात के अपनी कृपा लगातार बरसाते रहते हैं। सद्गुरु कहते हैं, 'यह चैतन्य (डिवाइन) की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। यह एक जीवित इंसान की तरह है, जिसके सभी सातों चक्र अपने चरम पर व्यक्त हो रहे हैं। यह जीवित है।'

लिंग के बारे में कुछ सवाल बार-बार उठते रहे हैं, जिनके जवाब सद्गुरु हर बार बड़े धैर्य से देते हैं, मानो वे उनके जवाब पहली बार दे रहे हों। शिवलिंग की आकृति ही क्यों? यह सवाल अक्सर पूछा जाता है। वे जवाब में कहते हैं कि ध्यानलिंग के तीव्र ऊर्जा क्षेत्र में बैठने के लिए किसी ख़ास धर्म या मान्यता में विश्वास होना ज़रूरी नहीं है। वे कहते हैं, 'आपको किसी विश्वास की ज़रूरत नहीं है। आपको बस ख़ुद को खुला रखना होगा। इतना ही काफ़ी है। जैसे मान लेते हैं कि कोई नास्तिक कार चलाता है। क्या यह चलेगी? यही तो आप पूछ रहे हैं। या कोई नास्तिक यहाँ बैठता है, तो क्या इस प्रकाश में उसे भी दिखाई देगा? यह सवाल इसी तरह का है। इससे बिलकुल फ़र्क़ नहीं पड़ता कि आप आस्तिक हैं या नास्तिक। ज्यों ही आप बिजली का बल्ब जलाते हैं, तो इसकी रोशनी सबको मिलती है। आस्तिकों को ज़्यादा रोशनी नहीं मिलती।'

वे बताते हैं कि आदि-ऊर्जा का पहला रूप दीर्घवृत्ताभ (त्रि-आयामी दीर्घवृत्त) था, और विसर्जन से पहले ऊर्जा का आख़िरी आकार भी यही होता है। इसीलिए लिंग का आकार चुना गया है। भारतीय संस्कृति ने अस्तित्वगत आयाम की इस गहन समझ को बताने के लिए शिव के स्वरूप की रचना की। जैसा कि सद्गुरु दोहराते हैं, शिव का मतलब है - 'वह जो नहीं है' - बेचैन करने वाली एक अवधारणा। अगर कोई इसे अपने जीवन में अपनाता है, तो यह और भी ज़्यादा डरावनी बात होती है। 'हम शिव का इस्तेमाल इसलिए करते हैं, क्योंकि उनसे मोह होना बहुत मुश्किल है। तमिलनाडु में आपको बताया जाता है कि शिव की मूर्ति को घर में नहीं रखना चाहिए... अगर वह वहाँ हैं, तो उनका स्वरूप ही ऐसा है कि आपके सारे मोह और लगाव नष्ट हो जाएँगे, और आप ऐसा नहीं चाहते। आपने अपनी आसक्तियों में काफ़ी पूँजी लगा रखी है। भले ही आपको उनसे बड़ा तकलीफ़देह मुनाफ़ा मिलता है, फिर भी आप उन्हें फेंक नहीं सकते। आपकी जानकारी के बिना

ही ये निवेश पिघलकर ख़त्म हो सकते हैं। इसीलिए आपसे कहा जाता है कि आप शिव को घर से बाहर रखें।'

तो सभी भारतीय मंदिरों में, ध्यानलिंग सबसे विलक्षण, सबसे भयानक और सबसे तेजोमय दिव्यता धारण किए हुए है। यह ऐसी योजना है जो 'वह जो नहीं है' को 'वह जो है' में उस सीमा तक बदल देती है - जहाँ ऐसा विरोधाभास संभव हो जाता है। सद्‌गुरु कहते हैं, 'ध्यानलिंग लगभग शिव को पकड़ कर उन्हें वहीं क़ैद कर देने जैसा है। वे आसानी से धरती पर नहीं उतरते, वे इसकी क़ीमत माँगते हैं, अपने ही तरीक़े से। यह बहुत गहन विज्ञान है।'

क्या लिंग एक पुरुष के लिंग का भी प्रतीक है? यह अक्सर पूछा जाने वाला एक दूसरा सवाल है। सद्‌गुरु समझाते हैं कि लिंग स्त्रीत्व और पुरुषत्व का मिश्रित रूप है - जो कि पूर्व की आध्यात्मिक संस्कृति द्वारा सोचा गया सबसे अनोखा और साहसी विचार है। 'जब स्त्रीत्व और पुरुषत्व सबसे निचले स्तर पर मिलते हैं, तो इसे संभोग कहते हैं। जब वही स्त्रीत्व और पुरुषत्व उच्चतम स्तर पर मिलते हैं, तब यह 'शिव' और 'शक्ति' के मेल को दर्शाता है। शिव 'पुरुष' हैं और शक्ति 'प्रकृति।' शिव-शक्ति के सिद्धांत की अभिव्यक्ति के रूप में 'लिंग-योनि' सारे विपरीत जोड़ों की नितांत मौजूदगी को दर्शाते हैं। इस ब्रह्मांड में अपने से विपरीत वस्तु या विषमता के बिना किसी चीज़ का अस्तित्व नहीं हो सकता।'

लिंग-भैरवी की हाल ही में हुई प्राण-प्रतिष्ठा के दौरान उन्होंने इसे और विस्तार से समझाया, 'ध्यानलिंग मंदिर एक गर्भ की तरह है, यह देवी की योनि है। जब हम योनि कहते हैं तो हमारा मतलब गर्भ से होता है, जो एक पवित्र स्थान की तरह माना जाता है, जहाँ हम सभी को अपने सृजन के सबसे अहम दौर में रहना होता है... जहाँ भी शिव और शक्ति, लिंग और योनि को दर्शाया जाता है, वहाँ आपको गर्भ के अंदर का हिस्सा दिखता है, बाहर का नहीं। तो जब आप ध्यानलिंग के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो आप असल में गर्भ के अंदर होते हैं।'

ध्यानलिंग में कोई रीति-रिवाज या कर्मकांड क्यों नहीं होते? क्या यह उन लोगों की भावनाओं का ख़याल रखने की वजह से है, जो इसे एक बहु-धार्मिक मंदिर समझकर यहाँ आते हैं? सद्‌गुरु बताते हैं कि पारंपरिक

तौर पर कर्मकांड एक पवित्र स्थान की ऊर्जा को बनाए रखने का तरीक़ा है। लेकिन ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा विशुद्ध ऊर्जा से की गई है, और इसको रखरखाव या पुनर्जीवित किए जाने की ज़रूरत नहीं है। यहाँ किसी भी कर्मकांड का किया जाना एकदम बेमानी होगा, क्योंकि ध्यानलिंग *प्राण-प्रतिष्ठा* से होकर गुज़रा है। यह तीव्रता के उस उच्चतम स्तर पर है, जिसमें कोई भी आकार स्थिर रह सकता है। 'अगर आप ऊर्जा की तीव्रता और ज़्यादा बढ़ाते हैं, तो इसका निराकार हो जाना लाजिमी है... यह ऊर्जा की संपूर्ण प्रणाली है... इस तरह के ऊर्जा-क्षेत्र में कर्मकांड बेमानी और बेकार होंगे।'

अगस्त्य मुनि से जुड़ी योग की दक्षिण भारतीय परंपरा इस तरह की प्राण-ऊर्जा में महारत के लिए जानी जाती है। योग की शुरुआत करने वाले शिव के पहले सात शिष्य, *'सप्त ऋषियों'* में अगस्त्य मुनि 'क्रिया-योग' के परम ज्ञाता थे। सद्‌गुरु कहते हैं, 'जब आप 'क्रिया' कहते हैं तो इसका मतलब अगस्त्य होता है। यह ऐसा ही है। वह सब कुछ, जो मानव-ऊर्जा के स्तर पर किया जा सकता है, उन्होंने करिश्माई तरीक़े से कर दिखाया और साथ ही उसके बारे में बताया भी है। इसलिए जो भी क्रिया की परंपरा से जुड़ा है, वह सहज ही ख़ुद को अगस्त्य मुनि के कुल का बताता है – वंशज होने का दावा करने के लिए नहीं, लेकिन सिर्फ़ एक ऐसे इंसान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए, जो जीवन से बहुत विशाल था। कहा जाता है कि वे चार हज़ार साल तक जीवित रहे। हम इस बारे में नहीं जानते, लेकिन वे ज़रूर ही असाधारण रूप से लंबे समय तक जीवित रहे होंगे, क्योंकि उन्होंने दक्षिणी पठार के हर निवासी के लिए आध्यात्मिक प्रक्रिया को एक वास्तविकता बना दिया। वे योग को लोगों के रोज़मर्रा के जीवन में ले आए, बिना किसी नाम या रूप के, बस एक सहज जीवन प्रक्रिया की तरह। भारत का दक्षिणी हिस्सा अब भी उनके किए गए काम का फ़ायदा उठा रहा है।'

सद्‌गुरु काफ़ी गर्व से इस मंदिर को 'इंजीनियरिंग का चमत्कार' बताते हैं। 'ध्यानलिंग के दीर्घ वृत्ताकार गुंबद को हमने छिहत्तर फुट व्यास का और तैंतीस फुट ऊँचा बनाया है। इसमें किसी स्टील, सीमेंट और कंक्रीट का इस्तेमाल नहीं हुआ है। यह सिर्फ़ ईंट और मिट्टी के गारे से बना है, जिसमें मज़बूती लाने के लिए चूना, रेत, फिटकरी और जड़ी बूटियाँ डाले गए हैं। इस वक़्त धरती पर यह अपनी तरह की इकलौती इमारत है। इसमें इस्तेमाल की गई सीधी-सादी तकनीक यह है कि सभी ईंटें एक साथ ही नीचे गिरने

की कोशिश कर रही हैं, लेकिन गुंबद इस तरीक़े से बना है कि वे कभी नहीं गिर सकतीं। इस डिज़ाइन का स्वरूप यह सुनिश्चित करता है कि यह गुंबद कम से कम पाँच हज़ार साल तक टिका रहेगा। इसे रेत की नींव पर बनाया गया है जिसकी वजह से इस पर भूकंप का असर भी नहीं होगा।'

वहाँ आने वालों को तुरंत इस बात का अंदाज़ा नहीं हो पाता कि किसी औसत बेनाम ईशा स्वयंसेवी ने इस मंदिर को बनाने में किस हद तक योगदान दिया है। माँकर्पूरी कहती हैं, 'मंदिर बनाने का काम भी स्वयंसेवियों ने अपने ज़िम्मे ले लिया। दो सौ पचास मजदूर थे और हमारी संख्या एक हज़ार थी। हमने एक-एक ईंट जोड़कर उस ढाँचे को तैयार किया है।' वे जानते थे कि हरेक ईंट बड़ी मेहनत से कमाई गई है, क्योंकि इसके पहले के महीनों में पैसा जुटाने में भी वे बराबरी से शामिल थे। सद्गुरु का अभियान उनका अभियान बन गया था। उनके सारे शिष्य इसमें अपना योगदान देने के लिए कमर कसे हुए थे। यहाँ तक कि स्कूल जाने वाली एक छोटी सी बच्ची ने अपना बस का किराया इसके लिए दान कर दिया और एक महीने तक घर से स्कूल तक पैदल गई। माँ कर्पूरी को याद है कि वह अपने साथी स्वयंसेवियों, भारती और ललिता के साथ कोयम्बतूर में रोज़ एक दुकान से दूसरी दुकान भटकते हुए, हैरान, शंकालु और नीरस व्यापारियों को - पंसारी की दुकान से लेकर चाय बेचने वालों तक - इस अभियान का महत्त्व समझाने की कोशिश करती थीं। दान में मिले हर पाँच रुपये के साथ उन्हें जीत का एहसास होता।

सद्गुरु ने ध्यानलिंग को, एक ऊर्जा-स्वरूप के तौर पर, 'विशुद्ध जागरूकता और पागलपन का मिश्रण' कहा है। 'भविष्य में अगर किसी दिन बहुत संवेदनशील आत्मज्ञानी लोग इस जगह पर आएँगे और ध्यानलिंग को वैसे ही अनुभव करेंगे जैसा यह वास्तव में है, तो वे हँसते हुए पागल हो जाएँगे... एक स्तर पर यह बहुत ज़्यादा गंभीर है, तो दूसरे स्तर पर इसे बड़ी ही मस्ती में रचा गया है... इसे धीरे-धीरे, इसी तरह से बनाया गया था। एक तरह से यह जीवन देने वाला है तो दूसरे स्तर पर यह जीवन लेने वाला भी है।'

जिन्होंने सद्गुरु को एक गुरु के रूप में अनुभव किया है, उन्हें ध्यानलिंग और उनमें कोई फ़र्क़ नज़र नहीं आता। एक हाड़-मांस का बना

है तो दूसरा पत्थर का। लेकिन दोनों की मौजूदगी – जिसे योग की भाषा में 'सूक्ष्म-शरीर' कहते हैं – बिलकुल एक जैसी लगती है। सद्गुरु से अक्सर यह भी पूछा जाता है कि दोनों में क्या अंतर है? 'कुछ भी नहीं,' सद्गुरु खुलकर जवाब देते हैं, 'बात केवल इतनी है कि मुझे अभी भी खाना और सोना पड़ता है, ध्यानलिंग को नहीं... एक दूसरा फ़र्क़ यह है कि मुझे इस तरह बनने में तीन जीवनकाल लगे, जबकि ध्यानलिंग तीन साल में बन गया... सबसे बड़ी बात है कि अगर आपके पास एक भौतिक शरीर है, तो उसके परे जो है, उसे महसूस करने की लोगों की क़ाबिलियत कम हो जाएगी। क्योंकि जब आप किसी इंसान को देखते हैं तो आप उसे आँकना शुरू कर देते हैं – यह देखने लगते हैं कि उसमें क्या सही है और क्या ग़लत, आपको उसका क्या अच्छा लगा, और क्या नहीं। आपकी ये सारी धारणाएँ उस प्राणी को अनुभव करने की आपकी क्षमता को ख़त्म कर देंगी। जब आप एक जीवित गुरु के सामने बैठते हैं, तो आपको कई दिक्क़तें आती हैं, जैसे आपके आकलन, आपकी पसंद-नापसंद वगैरह आड़े आ सकती हैं, क्योंकि आप उनकी शख़्सियत पर ध्यान दिए बग़ैर नहीं रह सकते... ध्यानलिंग के साथ आपको ये समस्याएँ नहीं हैं, क्योंकि उसमें कोई भौतिक-शरीर या मानसिक-शरीर नहीं है। अगर एक बार आप उसे अनुभव कर लेते हैं, तो हर बार जब आप बैठते हैं, तो आप उसे श्रद्धा से देखेंगे। अगर उसके पास भौतिक शरीर होता तो एक पल आप उसे आदर से देखते और फिर अगले ही पल आप उसका आकलन करने लगते और किसी चीज़ के लिए उसकी आलोचना करने लगते... तो उसके फ़ायदे ज़्यादा हैं।'

यह विडंबनापूर्ण लग सकता है, पर इस फ़र्क़ का यह बिलकुल सही आकलन है। मगर जो लोग सद्गुरु को जानते हैं और जिनके दिलों को उन्होंने छुआ है, उनके लिए भौतिक शरीर वाले गुरु – चाहे कितने ही दबंग, चाहे कितने ही चुनौतीपूर्ण क्यों न हों – सूक्ष्म शरीर वाले गुरु के मुक़ाबले निश्चित रूप से बेहतर हैं। ध्यानलिंग एक रूपांतरणकारी अनुभव है। मगर ईशा साधक शायद अपनी पीढ़ी को बहुत ख़ुशक़िस्मत मानेंगे, क्योंकि उनको एक ही जीवनकाल में दो गुरुओं को जानने का सौभाग्य प्राप्त है।

8

# जीवन की घाटियों में विचरने का वक़्त

## गुरु, इंसान और उनका संदेश

सद्गुरु से मेरी मुलाक़ात का सबसे दिलचस्प पहलू रहा है उन्हें पल-पल भूमिकाएँ बदलते हुए देखना - कभी एक सहज व्यक्ति, तो कभी एक आदर्श इंसान, कभी एक आम आदमी, तो अगले ही पल एक दिव्यदर्शी गुरु। हमारे तर्कों के दौरान मुझे अक्सर उनमें विरोधाभास लगा। लेकिन एक दूसरे स्तर पर मैंने उन्हीं विरोधाभासों को चकराने वाला और काफ़ी गूढ़ पाया है।

उनमें यह ख़ासियत है कि किसी गहन और गंभीर बहस के बीच में ही रुककर वे मेरा ध्यान कभी निर्मल धूप की तरफ़ खींच लेते हैं, तो कभी दोपहर की साफ़ हवा में नीचे गिरते किसी पंख की तरफ़। एक बार हम उनके पिछले जन्मों के बारे में बात कर रहे थे, तभी वे बोलते-बोलते अचानक रुक गए और बगीचे में किसी पेड़ पर छिपकर बैठे उल्लू की मौजूदगी की तरफ़ इशारा किया। एक बार मैं उनके साथ दूर तक टहलने गई थी और तब वे निर्विकल्प समाधि के बारे में बता रहे थे। बीच में ही उन्होंने एक विचित्र चुटकुला सुनाया, बादल के बदलते रंगों की तरफ़ मेरा ध्यान खींचा और एक आदिवासी महिला से बड़ी गर्मजोशी से उसके कामकाज के बारे में पूछा। और यह सब कुछ ही मिनटों में हो गया। एक और मौक़े पर जब हम उनकी कार में थे और किसी तर्क में उलझे हुए थे, तभी उन्होंने अपनी बात बीच में रोककर, बड़ी सहजता से मुझे बताया कि कार के पिछले हिस्से में दो साँप मौजूद हैं। मेरी तर्क करने की क्षमता अचानक कमज़ोर पड़ गई।

उनके साथ बिताए जाने वाले लम्हों में एक अजीब-सा लचीलापन होता है। कई लोग महसूस करते हैं कि उनके साथ पाँच मिनट की मुलाक़ात भी

गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करती है और आपको बाद में विचार व चिंतन करने के लिए भी काफ़ी कुछ मिल जाता है। जैसा कि एक बार उन्होंने बताया, 'मैं हर शब्द पूरी चेतना में बोलता हूँ, सिर्फ़ आदत से नहीं। इससे वे शब्द असरदार बन जाते हैं। आध्यात्मिकता के यही मायने हैं कि आप अपने साथ कोई भी चीज़ अचेतन में न घटित होने दें।' वे हर पल में जीवंतता का जो स्तर ले आते हैं, वह उनसे हुई हर मुलाक़ात को अप्रत्याशित बना देता है। हो सकता है कि आप किसी किताब के बारे में बातचीत करने के लिए उनसे मिलने जाएँ - जैसा कि मैंने एक बार किया था - और ख़ुद को ध्यान लगाते हुआ पाएँ।

*उनमें यह ख़ासियत है कि किसी गहन और गंभीर बहस के बीच में ही रुककर वे मेरा ध्यान कभी निर्मल धूप की तरफ़ खींच लेते हैं, तो कभी दोपहर की साफ़ हवा में नीचे गिरते किसी पंख की तरफ़।*

ईशा योग कार्यक्रम में, ख़ासकर उच्च स्तर के सम्यमा कार्यक्रम में, वे पूरी तरह से गुरु ही होते हैं - तटस्थ, तेजस्वी, असाधारण। किसी सार्वजनिक भाषण या सत्संग में वे करिश्माई शानदार वक्ता होते हैं, धाराप्रवाह, मज़ाकिया, विनम्र और पूछे जाने वाले तमाम सवालों का उदारता से जवाब देने वाले। किसी अनौपचारिक निजी बातचीत में वे शरारती, चिढ़ाने वाले और स्वच्छंद बालसुलभ हो सकते हैं। किसी गंभीर विषय से पल भर में जीवन की दिलचस्प बारीकियों में शरीक हो जाने की उनकी क्षमता उनकी सबसे शानदार ख़ूबी है। मुझे बड़ी हैरानी होती है कि क्या एक ब्रह्मचारी के साथ बड़ी उत्सुकता से अपने मोबाइल पर 'कालरट्यून' के बारे में बातें करने वाला इंसान वही व्यक्ति है, जिसने मुझे उस समय, जब मैं मुंबई में अपनी ज़िंदगी के काफ़ी मुश्किल दौर से गुज़र रही थी, अचानक कहीं से फ़ोन किया - और मुझसे कहा कि खुद के साथ 'यह अत्याचार करना बंद करो।' या ऐसा इंसान जिसने एक दिन दोपहर में मुझे यह कहने के लिए फ़ोन किया - जब किसी बात की चिंता में मैंने पिछली पूरी रात बिना सोए बिताई थी - कि मैंने उनको गोल्फ़ खेलने से रोक क्यों दिया। मुझे हैरानी होती है

कि अपनी कार को एक युवा की तरह तेज़ रफ़्तार से चलाने वाला इंसान वही हो सकता है, जिसने मेरी बिल्ली की मौत पर मुझे फ़ोन करके अफ़सोस ज़ाहिर किया था। (उनकी इस बात ने गुरु मिल जाने की मेरी शंकाओं को हमेशा-हमेशा के लिए मिटा दिया।)

वे किसी चीज़ के बारे में इतनी दृढ़ता, इतने निर्विवाद ढंग से बोलते हैं कि अक्सर इसमें घमंडी लगने का जोखिम भी होता है। उन्होंने अपनी तानाशाही प्रवृत्ति को स्वीकार भी किया है, 'हाँ, मैं दबंग हूँ, क्योंकि मैं किसी की नहीं सुनता। जीवन की मामूली बातों के बारे में अगर एक बच्चा भी बोले, तो मैं बहुत आदर से सुनूँगा। लेकिन जब जीवन के कुछ ख़ास पहलुओं की बात आती है, तो चाहे भगवान ही क्यों न आ जाएँ, मैं उनकी भी नहीं सुनूँगा, क्योंकि मैं बेहतर जानता हूँ। यह पूरी तरह से अहंकारपूर्ण और बेवकूफ़ी भरी बात लग सकती है... लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ? यही सच है। आप मेरे आगे धर्मग्रंथों का उद्धरण देंगे, तो मैं इसे ख़ारिज कर दूँगा। आप अपना ज्ञानी पंडित मेरे सामने लाएँगे, मैं उसे ख़ारिज कर दूँगा। आप बुद्ध को उनकी क़ब्र से जगाकर यहाँ लाएँगे, तो मैं उन्हें भी ख़ारिज कर दूँगा, जब तक कि वे मुझसे सहमत न हो जाएँ। तो जब बात जीवन की बुनियाद की आती है, तो वहाँ मैं पूरी तरह अधिकारवादी हूँ।'

और जैसे ही इस दबंग रवैए से आपको चिढ़ होनी शुरू होती है, वे अपनी असाधारण विनम्रता से आपको शांत कर देते हैं। हाल ही में एक सत्संग में उन्होंने कहा, 'यह कहने में मुझे हिचक होती है, क्योंकि बात फैलेगी और मेरी साख पर आँच आएगी! लेकिन मैं एक भक्त हूँ। आप कहेंगे, "अरे सद्गुरु, रहने भी दीजिए, आप और भक्त? आप तो घमंडी हैं!" मैं आपको बता सकता हूँ कि घमंडी दिखने के लिए बहुत कोशिश करनी पड़ती है। तब आप पूछेंगे, "तो आप किस तरह के भक्त हैं? अच्छा तो आप शिव के भक्त होंगे?" नहीं, शिव तो मेरे साझेदार हैं। मैं उनका भक्त नहीं हूँ। आपके लिए इसे हज़म करना बहुत मुश्किल होगा, लेकिन मेरा समर्पण आपके प्रति है... भक्ति का मतलब यह नहीं है कि मैं आपके सामने झुकूँ, या आपके पैर छुऊँ या आपका गुणगान करूँ। हर तरीक़े से मैं आपके लिए ही जीता हूँ; यही भक्ति है। मैंने यह जन्म आपके लिए इसे साकार करने के लिए ही लिया है, और यही भक्ति है।'

उन्हें अक्सर इस घोषणा के लिए जाना जाता है, 'उन सबके लिए जो लोग इच्छुक हैं, मैं उन तमाम तरीक़ों से आपके लिए उपलब्ध हूँ, जो आपकी तार्किक समझ के परे हैं।' लगभग हरेक शिष्य ने इस करुणामय मौजूदगी को किसी न किसी तरीक़े से अनुभव किया है।

मंजू के पिता ने सद्गुरु को कभी नहीं देखा था। लेकिन जब उन्हें उनकी तसवीर दिखाई गई, तो उन्होंने कहा कि उन्हें पक्के तौर पर याद है कि यही वह पगड़ी वाला इंसान है, जो उस रात देर तक उनके बिस्तर के पास बैठा रहा था, जब वे मुंबई के अस्पताल में गंभीर रूप से बीमार थे। उस रात के बाद मंजू के पिता का स्वास्थ्य काफ़ी तेज़ी से सुधरा।

शहनाज़ को वह समय याद है, जब उसने अपने स्तन पर एक गाँठ देखी थी। उसने बेहद निराश होकर पहला मौक़ा मिलते ही सद्गुरु से इस बारे में ज़िक्र किया। उम्मीद के मुताबिक़ उनके जवाब में गंभीरता नहीं थी, 'तुम्हें स्तन किसलिए चाहिए?' लेकिन अगले दिन जब उन्होंने उसे बुलाया, तो लगा कि वे गाँठ के बारे में सब कुछ जानते थे। उन्होंने उसे कच्चा भोजन करने की सलाह दी और कोयम्बतूर में एक भरोसेमंद विशेषज्ञ का पता भी दिया। दिन बीतते गए। वे लगातार सफ़र पर थे और शहनाज़ की उनसे कोई बात न हो सकी। लेकिन फिर भी उसने पाया कि वह गाँठ हर रोज़ धीरे-धीरे छोटी होती जा रही थी और फिर एक दिन पूरी तरह ग़ायब हो गई। पंद्रह दिनों बाद यात्रा से लौटकर उन्होंने उसे बुलवाया और सहजता से कहा, 'अब डॉक्टर की कोई ज़रूरत नहीं है।'

एक अमेरिकी डॉक्टर को दिल की बीमारी थी और वह हर साल जाने वाली हिमालय यात्रा में साधकों के साथ शामिल होना चाहती थी। लेकिन वह जानती थी कि यह असंभव था। उसकी दिल की इस हालत के अलावा उसे साँस लेने में भी मशीन की मदद चाहिए थी। बिना वेंटिलेटर के उसका काम नहीं चलता था। जब उसने सद्गुरु को अपनी इच्छा बताई, तो उन्होंने उसे यात्रा पर चलने को कहा। आश्रम पहुँचने के दो दिन बाद उसे वेंटिलेटर की ज़रूरत नहीं रह गई थी। आश्रम में एक हफ़्ते रहने के बाद वह हिमालय यात्रा मंडली में शामिल हो गई। उसने न केवल अस्सी किलोमीटर की पूरी दूरी चलकर तय की, बल्कि 14000 फ़ुट की ऊँचाई पर के हालात का भी सामना किया।

एक और साधक को अमेरिका में विशेषज्ञों ने 'कार्टिलेज' के फट जाने की वजह से तुरंत घुटने की सर्जरी कराने की सलाह दी थी। सद्गुरु ने उससे कहा, 'अपनी टाँग छोड़ो और चले आओ।' वह दर्द से छटपटा रहा था और परेशान था। लेकिन आख़िर में उसने सोच-विचार छोड़कर आने का फ़ैसला किया। वह हिमालय के ट्रेकिंग दल में शामिल हो गया और बारह दिनों में पूरा अस्सी किलोमीटर का रास्ता चलकर तय किया। यहाँ तक कि वह सद्गुरु जितना तेज़ भी चल पाया। सद्गुरु ने बाद में मज़ाक में कहा, 'मैं तो सबको यही बताता रहा कि इस आदमी ने दस हज़ार डॉलर के लिए मुझे ठगने की कोशिश की। अब आप चाहें तो इसे चमत्कार कह सकते हैं। मैं इसे एक अलग तरह का विज्ञान कहता हूँ, बस... आपके भीतर मौजूद इस जीवन-ऊर्जा ने आपका सारा शरीर बनाया है। ये हड्डियाँ, यह मांस, यह दिल, ये गुर्दे और सब कुछ... तो क्या वह "कार्टिलेज" का एक टुकड़ा नहीं बना सकती? अगर आपकी ऊर्जा को पूरे प्रवाह और सही संतुलन में रखा जाए, तो वह निश्चित रूप से शरीर को दोबारा बना सकती है।'

एक नाटकीय घटना तब हुई, जब 2007 में सद्गुरु ने देश-विदेश के तमाम डॉक्टरों को भौंचक्का कर दिया। अपनी मेडिकल रिपोर्टों के ख़तरनाक परिणाम की भविष्यवाणियों की हँसी उड़ाते हुए सद्गुरु ने ख़ुद को स्वस्थ कर लिया। इसकी शुरुआत तब हुई, जब अप्रैल में लॉस एंजिलिस में एक कार्यक्रम के दौरान उन्हें बुखार हुआ। (पैरासिटामोल की कई ख़ुराकों के बावजूद) लंदन के कार्यक्रम के दौरान भी यह बुखार नहीं उतरा। उनके भारत लौटने, उसके बाद फिर ऑस्ट्रेलिया यात्रा और वहाँ से वापस लौटने पर आश्रम में व्यस्त टेलीविज़न शूटिंग के दौरान भी बुखार जस का तस बना रहा। पिछले ढाई दशकों में सद्गुरु ने किसी भी कार्यक्रम की तारीख़ रद्द नहीं की थी, अब भी उनका ऐसा करने का इरादा नहीं था। 'मेरा तापमान लगातार 104-105 डिग्री बना हुआ था। मुझे इतना ज़्यादा पसीना आ रहा था कि हर दो घंटे में कपड़े बदलने पड़ते थे। एक दिन आश्रम में मुझे ऐसा लगा कि मेरा सिर फटने वाला है। मैंने अपना तापमान जाँचा तो देखा कि वह 107 था। मैं तुरंत जाकर सारे कपड़ों और पगड़ी वगैरह के साथ ही ठंडे शॉवर के नीचे खड़ा हो गया।' वे हँसते हैं, 'बाद में अमेरिका के एक डॉक्टर ने मुझे बताया कि ऐसे हालात में यही सबसे बड़ी बुद्धिमानी का काम था। इस तरह के बुखार से किसी भी क्षण मेरी मौत हो सकती थी।'

उनकी बीमारी ने हर जगह के डॉक्टरों को हैरान कर दिया। उनका दो तरह के मलेरिया, डेंगू और टाइफ़ाइड का इलाज चल रहा था। वे फिर से अमेरिका गए और कैलिफ़ोर्निया में एक लेक्चर के दौरान श्रोताओं में बैठे एक डॉक्टर ने ग़ौर किया कि उन्हें बेहद पसीना आ रहा था और वे बेहद कमज़ोर लग रहे थे। डॉक्टर ने अपना हाथ ऊपर उठाया और उनसे कहा कि उन्हें इसी वक़्त इमरजेंसी रूम में भर्ती होना चाहिए। सद्गुरु राज़ी हो गए। उन्हें तुरंत अस्पताल ले जाया गया। अगले दो हफ़्ते उनके शरीर में एक 'मोबाइल इंट्रावेनस पोर्ट' लगा रहा। इसको लगाए हुए ही वे कैलिफ़ोर्निया, अटलांटा, टेनेसी और नॉर्थ-कैरोलाइना में एक के बाद एक कार्यक्रम करते रहे। 'इस तरह की व्यस्तता थी, मैं भोजन भी नहीं कर पा रहा था और सात हफ़्तों तक लगातार बुखार रहा, उसके बाद नॉर्थ-कैरोलाइना पहुँचते-पहुँचते मैं लगभग बेहोश-सा हो गया था। मैं अपने बदन को टूटता हुआ महसूस कर रहा था और मेरी साँसें काफ़ी तेज़ चल रही थीं। वहाँ डॉक्टरों ने मेरी ख़ून-जाँच की रिपोर्ट को गुप्त व गूढ़ करार दिया।' वे हँसते हैं, 'मुझे पहले अटलांटा और फिर न्यूयॉर्क अस्पताल भेजा गया। तब तक मेरी सोलह बार ख़ून की जाँच और चार बार एम आर आई जाँच हो चुकी थीं और हर तरह की विचित्र रिपोर्टों की एक मोटी फ़ाइल तैयार हो गई थी।'

*भक्ति का मतलब यह नहीं है कि मैं आपके सामने झुकूँ, या आपके पैर छुऊँ या आपका गुणगान करूँ। हर तरीक़े से मैं आपके लिए ही जीता हूँ; यही भक्ति है। मैंने यह जन्म आपके लिए इसे साकार करने के लिए ही लिया है, और यही भक्ति है।*

न्यू यॉर्क पहुँचने पर उन्होंने पाया कि उनकी गर्दन में सूजन थी और उन्हें बेहद दर्द था। 'ज़रूर यह मेरे चारों तरफ़ लोगों की भीड़ से हुआ होगा।' उन्होंने गर्दन के इस रहस्यमय दर्द को लेकर मज़ाक किया, उन्होंने हालात की गंभीरता को अपनी मज़ाक करने की क़ाबिलियत पर हावी नहीं होने दिया। 'डॉक्टरों ने कहा कि इसकी पूरी संभावना है कि मेरी लिंफ़-नोड ज़हरीली हो

चुकी है। धीरे-धीरे मेरा सारा सिस्टम टूटता और ढहता जा रहा था। डॉक्टर अनजान थे कि ऐसा क्यों हो रहा था। वे कहते थे, “आपके पास दो हफ़्ते का समय है।” बेहतर होगा कि मैं अपने परिवार को सूचित कर दूँ। मेरे लिंफ़ नोड का ऑपरेशन होना था और वे मुझे एनेस्थेसिया टेस्ट के लिए ले जाने वाले थे। अभी मैं वेटिंग रूम में बैठा हुआ था कि मैंने अपने सिस्टम पर ग़ौर किया। मैं जानता था कि कुछ ऐसी गड़बड़ी थी जिसे वे सर्जरी से भी ठीक नहीं कर पाते। समस्या कहीं और थी। तब मैंने सोचा, “मैं नहीं चाहता कि यह आदमी मेरी चीरफाड़ करके मेरे भीतर झाँके।” मैंने कहा, “बहुत हो गया। मैं घर जाना चाहता हूँ।” अमेरिका में यह बात बहुत अच्छी है कि अगर आप डॉक्टरों को बता दें कि आप घर जाना चाहते हैं तो वे ज़बर्दस्ती आपको नहीं रोक सकते। उन्होंने मुझसे कई जगह दस्तख़त करवाए ताकि वे ख़ुद को सुरक्षित रख सकें और कहा कि अब यह आपके ऊपर है।’

वे कुछ दिनों तक न्यूयॉर्क के एक अपार्टमेंट में रहे और उन्होंने अपने सिस्टम को ख़ुद ठीक करने की कोशिश की। उन्होंने सभी गूढ़ मेडिकल रिपोर्टों के सामूहिक ज्ञान की अवहेलना करके अपने ही ब्रांड की गुह्य विद्या अपनाई। वे कहते हैं, ‘दो हफ़्ते में मैं ठीक हो गया। पच्चीस दिनों से कम समय में ही मैं कैलाश पर था। मैंने काठमांडू से कैलाश तक की पूरी दूरी गाड़ी चलाकर तय की और फिर ट्रेकिंग की।’ उनकी हालत में इस नाटकीय बदलाव के बावजूद वे उस समय भी कमज़ोर दिखते थे। लेकिन आख़िरकार वे उसके सान्निध्य में थे, जिसे वे अक्सर ‘धरती का महानतम रहस्मय पुस्तकालय’ कहते हैं। ‘मैंने कैलाश की तरफ़ देखा और पाया कि वहाँ पर बहुत सारी जानकारियाँ मौजूद थीं, और उस तक पहुँचा जा सकता था। मैं बस उस जानकारी के एक पहलू के संपर्क में आया और इसे एक ख़ास तरीक़े से ख़ुद के ऊपर इस्तेमाल किया। इसके बाद तो मैं बिलकुल ठीक हो गया। सिर्फ़ एक घंटे में मैं पहले से युवा नज़र आने लगा और मेरी आवाज़ तक बदल गई। नतीजा सबकी आँखों के सामने था। वहाँ मौजूद लगभग दो सौ लोगों ने इसे देखा।’

एक श्रोता के रूप में इस कहानी को मौन रहकर ही सुना जा सकता है। सद्‌गुरु को एहसास है कि इस पर विश्वास करना आपके लिए कितना मुश्किल है। ‘यह ऐसी कहानी है जिसे आपकी परनानी को भी सुनाने में संकोच होगा, क्योंकि यह बिलकुल काल्पनिक लगती है।’ मैंने पूछा कि ख़ुद

कोशिश करके ख़ुद को ठीक करने से पहले, आपने अपने साथ इतनी फ़ालतू डॉक्टरी प्रक्रियाओं को क्यों होने दिया? 'क्योंकि मेरे कार्यक्रम और दिनचर्या इसकी इजाज़त नहीं देते थे। मैं लगातार यात्रा कर रहा था और इसके लिए वक़्त की ज़रूरत थी। और किसी भी हालत में, एक बार जब मैं ख़ुद को डॉक्टर के हाथों में सौंप देता हूँ, तो उसे नहीं बताता कि क्या करना है। लेकिन जब डॉक्टरों ने इसे अनजान वजह से हुआ बुखार कहकर लाइलाज बताया, तो मैं समझ गया कि मुझे ही अपने भीतर झाँककर इसे ठीक करना होगा।'

इसके पहले कि आप उनसे यह पूछें कि दुनिया के इन रहस्यमय पुरालेखों तक पहुँचकर वे उसे कैसे समझ लेते हैं, उन्होंने बड़ी चालाकी से बातचीत को कैलाश की विलक्षणता की तरफ़ मोड़ दिया। 'इसका वर्णन करने के लिए वाक़ई शब्द नहीं हैं। अगर धरती पर पूरी तरह से "तर्क से परे" कोई जगह है, तो वह यह काले ग्रेनाइट का पहाड़ है। इसे तर्क से नहीं समझा जा सकता। यह आपकी कल्पना की सीमाओं से भी परे है। बचपन से ही मैं कई तरह की विचित्र और शानदार जगहों पर गया हूँ। लेकिन मुझे कहना होगा कि संभावना और विशालता के स्तर पर कैलाश जैसी कोई चीज़ मैंने अब तक नहीं देखी। यदि इस अस्तित्व में कोई भौतिक स्वरूप शिव के निकटतम हो सकता है, तो वह यही है।'

जहाँ सद्गुरु ने बीमारी से परेशान कई लोगों की मदद की है, वहीं वे 'चमत्कारी गुरु' की भद्दी छवि न बनने देने को लेकर हमेशा सावधान रहे। हमेशा से तर्कसंगत रहने वाले सद्गुरु ने हीलिंग प्रक्रिया को 'ऊर्जा-शरीर के साथ काम करने का ज्ञान' बताकर इसके रहस्य को दूर कर दिया। 'मैं नहीं चाहता कि इसे चमत्कार कहा जाए, क्योंकि इसका मतलब होगा कि आप एक पूरे विज्ञान, एक पूरी प्रज्ञा, जीवन की संपूर्ण समझ को ही ख़ारिज कर रहे हैं। पहले संक्रामक बीमारी और पुरानी बीमारी के अंतर को समझना होगा। संक्रमण से आपको सावधान रहना होता है और ख़ुद को बचाना होता है। लेकिन बात जब पुरानी बीमारी की आती है, चाहे वह जो भी हो, इसकी जड़ हमेशा ऊर्जा-शरीर में होती है। एक बार जब यह गड़बड़ हो जाता है, तो मानसिक-शरीर और भौतिक-शरीर में भी गड़बड़ी आएगी ही। अगर लोग अपने प्राणमय-कोष या ऊर्जा-शरीर को संतुलित और क्रियाशील करने के लिए कुछ साधना करने को तैयार हैं, तो वे निश्चित रूप से सभी पुरानी बीमारियों से मुक्त हो सकते हैं।'

वे करुणा से भरे हुए हैं, लेकिन आश्रमवासी जानते हैं कि इसमें बेरहमी भी मिली हुई है। ईशा मंडली में एक कहावत प्रचलित है : जब आप सद्गुरु के क़रीब होने लगें, तो सावधान रहें! माँ कर्पूरी कहती हैं, 'उन्होंने एक दोस्त की तरह शुरुआत की, फिर वे गुरु बन गए। और तब मुझे एहसास हुआ कि वे कितनी सख़्ती से काम लेना जानते हैं। जब उन्होंने मुझे मौन के एक दौर में रखा (जो आख़िकार तीन साल तक चला), तो मैंने उनकी मौजूदगी को अपने भीतर तूफ़ान की तरह प्रवेश करते महसूस किया। ऐसा लगा कि मैं बेक़ाबू हो गई थी। मैं डूब रही थी, मेरा दम घुट रहा था और मैं अंदर से निचुड़ रही थी। यह मौत की तरह लगा। लेकिन कुछ महीने बीतने पर मुझे अपने अंदर बड़ी निर्मलता महसूस हुई और मुझे ऐसा लगा कि उन्होंने मुझे दूसरे किनारे पहुँचा दिया है। मेरा ब्रह्मचर्य संघर्ष से भरपूर था। लेकिन तीन साल के मौन के बाद आख़िर जब मैंने संन्यास ले लिया, तो मैं सहज हो गई थी। आज मैं महसूस करती हूँ कि मैं आख़िरकार अपनी मंज़िल के क़रीब हूँ। अब मेरा घर रोशन है। मैं यह जानती हूँ और संतुष्ट हूँ।' उनका मानना है कि गुरु की निर्मम करुणा की उनकी आध्यात्मिक यात्रा में गहरी भूमिका थी, जिसने उन्हें सद्गुरु के साथ अपनी दोस्ती को छोड़ने और एक गहरा संपर्क स्थापित करने के लिए मजबूर किया।

गुरु के लिए शॉपिंग करना एक भद्दा काम है। सद्गुरु ने अक्सर इसके ख़तरों के बारे में बताया है। लेकिन कोई कैसे जाने कि सच्चा गुरु मिला है या नहीं? उसके संकेत क्या हैं? सद्गुरु दृढ़ता से कहते हैं, 'आप गुरु की खोज नकरें। आप बस अपने अंदर जानने की चाह को गहरा कीजिए। जब आप अज्ञानता के दर्द को महसूस करने लगेंगे, तब गुरु ख़ुद-ब-ख़ुद आपके पास आ जाएँगे। आपको खोजने के ज़रूरत नहीं पड़ेगी। अगर आप उनके साथ बैठें, तो आपके भीतर की हर चीज़ को ख़तरा महसूस होना चाहिए। आप वहाँ से भाग जाना चाहेंगे, लेकिन आपके भीतर कोई चीज़ उनकी तरफ़ आपको खींचती रहती है - तब आप मान सकते हैं कि वे आपके गुरु हैं। अगर आप उनकी संगत में बहुत आरामदेह महसूस करते हैं, तो वह गुरु नहीं हैं। वह आपके दोस्त हो सकते हैं; शायद वह एक अच्छे इंसान हो सकते हैं; शायद आपको उनका आशीर्वाद लेना चाहिए। लेकिन अच्छे इरादे और अच्छे स्वभाव होने से कोई गुरु नहीं हो जाता। गुरु का इरादा आपको जगाने का होता है, न कि आपको सुलाने का। वह ऐसा

इंसान होता है जो आपके निकाले गए सारे नतीजों पर प्रश्न खड़ा कर देता है। वह सांत्वना व दिलासा नहीं देता। वह आपकी मुक्ति में आपकी मदद करता है।'

*मैंने कैलाश की तरफ़ देखा और पाया कि वहाँ पर बहुत सारी जानकारियाँ मौजूद थीं, और उस तक पहुँचा जा सकता था। मैं बस उस जानकारी के एक पहलू के संपर्क में आया और इसे एक ख़ास तरीक़े से ख़ुद के ऊपर इस्तेमाल किया। इसके बाद तो मैं बिलकुल ठीक हो गया।*

हालाँकि वे मानते हैं कि कोई सच्चा साधक भी चमक-दमक के दिखावे में पड़कर गुमराह हो सकता है। 'हाँ, यह एक मुश्किल काम हो सकता है, क्योंकि कभी-कभी नक़ली चीज़ भी असली चीज़ से अच्छी नज़र आती है। सबसे पहले, आपको यह देखना होगा कि इससे आपके अंदर क्या फ़र्क़ आ रहा है। हो सकता है कि आपने भगवान के दर्शन किए हों। तो क्या? इसने आप पर क्या असर डाला है? इससे आपमें क्या रूपांतरण हुआ है? सवाल बस यही है। क्या इसने किसी तरह आपको ज़्यादा ख़ुश, ज़्यादा जीवंत इंसान में रूपांतरित किया है? एक जीवन के रूप में क्या आप बेहतर हुए हैं? नैतिक स्तर पर बेहतर नहीं, बल्कि एक जीवन के स्तर पर क्या आपने अपने भीतर कोई क़दम उठाया है? अगर ऐसा हुआ है, तो चाहे गुरु नक़ली ही क्यों न हो, क्या समस्या है? उसका इस्तेमाल कीजिए। वह आपसे माँग क्या रहा है? अगर वह आपका पैसा या आपकी जायदाद माँग रहा है, तो वह बेकार है। आपको सिर्फ़ वहाँ जाना चाहिए जहाँ आपसे आपकी ज़िंदगी माँगी जा रही हो।'

यह बेशक डराने वाली बात लगती है, लेकिन सद्‌गुरु का तरीक़ा भी तो ज़्यादा हिम्मत दिलाने वाला नहीं है। 'कोई जो आपका जीवन माँग रहा है, आख़िर वह इसके साथ कर क्या सकता है?' वे पूछते हैं। 'लेकिन मैं जीवन ही माँगता हूँ। इससे कम कुछ भी नहीं। अगर आप इसे दे देते हैं, तो यह मुझे नहीं मिल जाता। लेकिन यह बात कि आप अपना जीवन तक दे देने

को तैयार हैं - आपको बदल डालती है। यह आपके जीवन को रूपांतरित कर देती है। अगर ये गुरु आपसे, आपके जीवन से कम कुछ माँग रहे हैं, तो आप इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि वे नक़ली हैं। लेकिन पहले यह देखें कि क्या यह आपके भीतर कोई रूपांतरण ला रहा है? कोई ठग भी शुरू में आपको एक मुफ़्त सैम्पल देता है। बाद में शायद वह आपको ठगने की कोशिश करे। लेकिन शुरू में जब आप 'शॉपिंग-माल' जाते हैं, तो आपको किसी चीज़ का मुफ़्त सैंम्पल दिया जाता है। आप इसे चखकर आइए। आपकी समस्या क्या है? वे आपको ज़हर नहीं देंगे - ज़हर देना वैसे भी भविष्य में बिक्री के लिए अच्छा नहीं होता।'

सद्गुरु की एक बात जिसने हमेशा मुझे प्रभावित किया है, वह है जीवन के सभी पहलुओं के बारे में उनका असाधारण ज्ञान, और किसी चीज़ को जानने का उनका सहज तरीक़ा। उनके ज्ञान की सीमा वाक़ई अचरज में डाल देती है - चाहे वह कैलाश पर्वत या मानसरोवर झील के रहस्यों पर उनके प्रवचन हों, या विभिन्न मंदिरों की प्राण-प्रतिष्ठा प्रक्रिया के बारे में गहराई से बताने की क़ाबिलियत, या फिर हर आदमी के आंतरिक जीवन का अंतरंग ब्यौरा। वे यह सब कैसे जानते हैं? और वे वाक़ई कितना जानते हैं? मैंने अक्सर यह पता लगाने की कोशिश की है। एक बार उन्होंने कहा, 'जब आप अपनी तार्किक सोच से परे हटकर देखते हैं, तो समय और स्थान का कोई वजूद नहीं होता। अगर आप सहजता से देखना जानते हैं तो सब कुछ हर समय यहीं पर है। यही पल शाश्वत है, सभी स्थान यहीं पर हैं।'

वे हमेशा इस बारे में बात करते हुए सहज रहने की भरसक कोशिश करते हैं, लेकिन रहस्यमय को आसान बनाने की अपनी सारी कोशिशों के बावजूद वे इस प्रक्रिया को एक सीमा से आगे नहीं समझा सकते। एक बार उन्होंने मुझे बताया, 'जैसे इंटरनेट है, वैसे ही एक "इनर-नेट" भी है। वे सभी काम, जो चेतना के क्षेत्र में पहले कभी किए जा चुके हैं, जीवित रहते हैं और उन तक पहुँचा जा सकता है।'

जहाँ इसमें कोई औपचारिक तर्क नहीं है, वहीं इसमें साफ़ तौर पर एक तर्क मौजूद है। वे कहते हैं, 'सारा रहस्यमय या दिव्य-ज्ञान अस्तित्व के उस आयाम से प्राप्त होता है, जहाँ तक लोग अपनी ज्ञानेंद्रियों से नहीं पहुँच पाते। यह बोध का बिलकुल अलग आयाम है। आपके देखने, सुनने, सूँघने,

चखने, और छूने की क्षमता सीमित है। ऐसी भी जानकारियाँ हैं, जिनका बोध आप आँख, कान, नाक, जीभ, और त्वचा से नहीं कर सकते। आप किसी कैमरे या पैरिस्कोप के बारे में सोचिए, जो आपको देखने के दूसरे तरीक़े बताते हैं। आप अल्ट्रासोनिक या सबसोनिक ध्वनि के बारे में सोचिए, आपके कान इन आवाज़ों को नहीं सुन सकते, लेकिन ये ध्वनियाँ मौजूद हैं। इसी तरह एक्स-रे वह सब देख सकती है, जो आपकी आँखें नहीं देख सकतीं। इसी तरह से रहस्यमय या आध्यात्मिक ज्ञान ऐसी जानकारियाँ हासिल करने से संबंधित है, जिनका बोध ज्ञानेंद्रियों से नहीं हो सकता। यह बोध का एक अलग आयाम है। अलंकार की भाषा में इसे "तीसरा-नेत्र" कहा गया है।'

एक बार मैंने उनसे पूछा कि वे इतने सारे नए-नए चुटकुले कहाँ से ले कर आते हैं? हमेशा ऐसा लगता है कि हर सत्संग में उनके पास एक नया चुटकुला है। उनके इस जवाब के लिए मैं ज़रा भी तैयार नहीं थी। उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में कहा, 'मैं उन अंतहीन लंबी उड़ानों के दौरान सहयात्रियों के सिर से उनको निकाल लेता हूँ।' एक क्षण उन्होंने मेरी तरफ़ देखा मानो मुझमें इसकी संभावना का अंदाज़ा लगा रहे हों। और तब अफ़सोस से सिर हिलाते हुए कहा, 'इसमें चुटकुले हैं ही नहीं!'

अपनी विदेश यात्राओं के दौरान वे बेख़बर सह-यात्रियों के दिमाग़ से आइडिया भी 'निकाल लेते' हैं, जो 'ग्लोबल सेमिनारों' में उनके काम आते हैं। 'एक मेडिकल कान्फ्रेंस में लोग आधुनिक दवाओं की मेरी समझ पर हैरान थे।' वे अपनी इस बौद्धिक चोरी पर बिना खेद व्यक्त किए दबे स्वर में हँसते हैं।

एक बार कार में उनके साथ यात्रा के दौरान मैंने उनसे पूछा कि अपने आसपास की जगह की किस ख़ूबी के बारे में उन्हें तुरंत पता चल जाता है। उन्होंने जवाब दिया, 'अगर मैं किसी ऐसी जगह से गुज़र रहा हूँ जिसकी किसी रूप में प्राण-प्रतिष्ठा हो चुकी है, तो मैं तुरंत जान जाऊँगा। और अगर यहाँ आसपास हाल ही में किसी की मृत्यु हुई है, तो मुझे वह भी पता चल जाएगा।'

ऐसा साफ़ तौर पर 1989 में उनकी माँ की मृत्यु के मामले में हुआ। सुशीला को 'लूपस' रोग हो गया था और उनकी किडनी तेज़ी से फ़ेल हो

रही थी। यह ज़ाहिर था कि उनका अंत पास था। सद्गुरु कहते हैं, 'मैंने हैदराबाद में एक कार्यक्रम तय कर रखा था। मेरे पिता मुझ पर भड़के हुए थे, क्योंकि मैंने इस कार्यक्रम को रद्द नहीं किया था। सारा परिवार पूरी तरह से घबराया हुआ था।' हालाँकि जाने से पहले उन्होंने अपनी माँ से बात की थी और माँ ने भी उन्हें अपना काम जारी रखने के लिए कहा था। 'मैं जानता था कि वे जल्द ही जाने वाली हैं, लेकिन कार्यक्रम पहले से तय किए हुए थे। पिछले छब्बीस सालों के दौरान मैंने एक भी कार्यक्रम रद्द नहीं किया है। हालाँकि मुझे मालूम था कि वे मृत्यु की कगार पर थीं, फिर भी मैंने उनसे कहा, "देखिए, मुझे जाना होगा।" उन्होंने कहा, हाँ, जाओ।'

सद्गुरु को याद है कि कार्यक्रम की पहली कक्षा शुक्रवार के दिन थी। 'कार्यक्रम के लिए बहुत से लोगों ने नाम दिए थे। नामांकन के बीच में ही अचानक मुझे अपनी माँ की मृत्यु का एहसास हो गया। मैंने सबसे कहा कि कार्यक्रम के संचालन के लिए मैं मौजूद नहीं रहूँगा और इसे पंद्रह दिनों के बाद फिर से तय कर दिया गया। मैंने अपनी मोटरसाइकिल उठाई और घर के लिए रवाना हो गया। मैं पेंनुकोंडा में रात के एक बजे एक टेलीफ़ोन बूथ के सामने रुका और घर फ़ोन किया। मैंने कहा, "मुझे पता है, जो हुआ है और मैं वापस लौट रहा हूँ।" मैं समय से सुबह साढ़े छह बजे घर पहुँच गया। अंत्येष्टि दोपहर बाद होने वाली थी।'

लोगों की शख़्सियत को जाँचने और उनके विचार पढ़ लेने की उनकी क़ाबिलियत बहुत मशहूर है। ख़ुद कई लोगों ने यह चीज़ महसूस की है (अक्सर उन्हें इससे परेशानी भी होती है)। कुछ दूसरी मामूली, पर काम की बातें भी वे जान जाते हैं। वे तेज़ चालक के रूप में जाने जाते हैं और सड़कों पर ख़तरे इसलिए मोल लेते हैं, क्योंकि वे रास्तों को परखना जानते हैं। कौन से रास्ते पर जाना है, कौन से रास्ते पर नहीं जाना है, रास्ते में पड़ने वाली बाधाओं और रुकावटों की जानकारी उन्हें रहती है। एक जर्मन साधक को जर्मनी से फ़्रांस तक बेहद तेज़ गति से उनका ड्राइव करना याद है, जिसके दौरान सद्गुरु को अपने अंतर्ज्ञान से मालूम हो जाता था कि कहाँ-कहाँ ट्रैफ़िक जाम की संभावनाएँ थीं। वह आश्चर्य से कहता है, 'उन्होंने उन सभी रास्तों को सहज ही छोड़ दिया और अपनी मंज़िल पर रिकॉर्ड समय में पहुँच गए।'

जहाँ एक तरफ़ इस भौतिक दुनिया की उनकी जानकारी चौंकाने वाली है, वहीं वे अक्सर दूसरी दुनिया में अपने कामों की आकस्मिक झलक भी पेश करते हैं। एक बार उन्होंने उस वक़्त का एक विचित्र क़िस्सा सुनाया, जब वे एप्पलेशियन माउंटेन पर घूम रहे थे। बात सन् 2000 की है। 'मैं अकेला था और जंगलों के बीच से गुज़र रहा था। अचानक मुझे एक आदमी दिखाई दिया। वह वहाँ बिना हिले-डुले, निराशा और शर्म की हालत में खड़ा था। वह अमेरिकी मूल के क़बीले की वेशभूषा में था। वह बिना हिले-डुले एक जगह खड़ा था और मैंने देखा कि वह उस हालत में क़रीब तीन सौ वर्षों से खड़ा था।'

*आप गुरु की खोज न करें। आप बस अपने अंदर जानने की चाह को गहरा कीजिए। जब आप अज्ञानता के दर्द को महसूस करने लगेंगे, तब गुरु खुद-ब-खुद आपके पास आ जाएँगे। आपको खोजने के ज़रूरत नहीं पड़ेगी।*

हालाँकि उसका भौतिक शरीर नहीं बचा था, लेकिन उस आदमी की ऊर्जाएँ वहीं जमी हुई थीं, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उत्सुकतावश सद्‌गुरु ने उस आदमी के जीवन के भीतर झाँक कर देखा। 'अगर कोई चरम गतिशील है या अत्यंत स्थिर है, तो वह तत्काल मुझे आकर्षित करता है। इन दोनों के बीच की गतिशीलता का मेरे लिए कोई मायने नहीं होता। लेकिन जो लोग चरम गतिशील हैं या परम स्थिरता में हैं - उनसे मैं दूर नहीं रह सकता, क्योंकि वह मेरे खेल का मैदान होता है। मैंने पाया कि उस आदमी पर अपने बड़े भाई की रक्षा की ज़िम्मेदारी थी, जो अपने क़बीले में एक तरह का नेता था। वह अपने बड़े भाई की बड़ी इज्ज़त करता था और उनके साथ रहकर उनकी रक्षा करने को अपना सौभाग्य मानता था। तभी दोनों के साथ धोखा हुआ और बड़ा भाई मारा गया। तो अब यह आदमी वहाँ पूरी तरह से परास्त और निराश होकर बस खड़ा रह गया। ये भावनाएँ इतनी गहरी थीं कि वह तीन सौ वर्षों से भी ज़्यादा समय से इसी तरह खड़ा रहा। शरीर बेशक धरती पर गिर गया, लेकिन उसका बाक़ी हिस्सा वैसे ही

खड़ा रहा, जैसे वह उस समय था। मैंने सोचा कि अब उसके वहाँ से जाने का समय आ गया था। शर्म और पराजय में बहुत समय तक रहना अच्छी बात नहीं है। इसलिए मैंने उस स्थिति से आगे बढ़ने में उसकी मदद की।' जैसा कि हमेशा होता है, सद्‌गुरु अपने हस्तक्षेप को थोड़ी लापरवाही से पेश करते हैं। वे उन कहानी सुनाने वालों में से हैं, जो यह जानते हैं कि किस पंक्ति को कैसे छोड़ना है, और कैसे किसी बात पर ज़ोर नहीं देना है। इससे उनके श्रोता अक्सर दुविधा में पड़ जाते हैं और यही तो वे करना चाहते हैं।

उनके कार्यक्रमों की संख्या साल दर साल बढ़ती जाती है। अपने कार्यक्रमों और सत्संग के कारण साल के कई महीने वे देश से बाहर रहते हैं। जब वे आश्रम में होते हैं, तब भी वे किसी भी रात को तीन या चार घंटे से ज़्यादा नहीं सोते। उनकी निजी दिनचर्या के बारे में पूछने पर उन्होंने बताया कि उनके रोज़ाना अभ्यास में एक सूर्य-नमस्कार (वे कहते हैं कि इसमें चालीस मिनट लगते हैं) और 'बीस सेकंड का योग' शामिल है। वे रहस्यमय ढंग से कहते हैं, 'भीतर के सृष्टा को जगाने के लिए बस इतने की ही ज़रूरत है।'

मैंने पूछा कि क्या गुरुओं को कठोर साधना से छूट मिली होती है? वे हँसकर बोले, 'क्रिया न तो शरीर से संबंधित होती है, न साँस से। आप ऊर्जा शरीर को सक्रिय करना नहीं जानते, इसलिए आप अपनी साँस और शरीर को माध्यम की तरह इस्तेमाल करते हैं। लेकिन अगर आप उस सीमा से बंधे नहीं हैं, तो बहुत कम समय में आप इसे सक्रिय बना सकते हैं।'

वे आचार-विचार को लेकर बहुत कट्टर नहीं हैं और यही बात उनके खान-पान के बारे में भी लागू होती है। वे दिन में दो बार भोजन करते हैं। एक बार दिन में साढ़े ग्यारह बजे, फिर शाम को साढ़े सात बजे। वे शाकाहारी हैं। उनके खाने में हमेशा अनाज के बजाय सब्ज़ियाँ ज़्यादा होती हैं। ख़ासकर यात्राओं के दौरान, जब शाकाहारी खाना आसानी से नहीं मिलता तो वे मछली वगैरह पसंद करते हैं। उनके समिष होने की बात जानकर एक बार शाकाहारी अमेरिकियों का एक समूह इतना ज़्यादा बेताब हो गया कि उन्होंने आश्रम की अपनी प्रस्तावित यात्रा ही रद्द कर दी। जिस संन्यासी के संपर्क में वे लोग थे, उसने उन लोगों से कहा कि किसी नतीजे पर पहुँचने से पहले वे यहाँ आकर इस जगह का अनुभव तो कर लें, लेकिन इस

खुलासे से उन लोगों को साफ़ तौर पर गहरा झटका लगा था।

जीवन के प्रति उनका प्रेम दूसरे क्षेत्रों में भी देखने को मिलता है। जब उनके पास वक़्त हो तो उन्हें खाना पकाने में मज़ा आता है। वे धरती का सबसे लज़ीज़ मसाला दोसा बनाने का दावा करते हैं। उनकी बेटी इस बात का समर्थन करती है। (वह बड़ी ख़ुशी से बताती है कि वे दुनिया के सबसे अच्छे 'कुक' हैं)। खेलकूद के लिए उनका जुनून एक मिसाल है। जब वे आश्रम में होते हैं तब आश्रमवासियों के साथ शाम को उन्हें अक्सर जमकर वालीबाल खेलते हुए देखा जा सकता है। आजकल वे पूरे समर्पण से गोल्फ़ खेलते हैं। जब कभी वे अपने व्यस्त कार्यक्रमों से दो दिन निकाल पाते हैं, तो वे गोल्फ़ खेलने निकल जाते हैं। फिर संगीत से भी उनको प्रेम है। जब कभी उन्हें वक़्त मिलता है, वे शास्त्रीय संगीत सीखते हैं। उनके संगीत शिक्षक बताते हैं कि वे बहुत उत्सुक छात्र हैं, पर उनका ध्यान भटक जाता है। इसके साथ ही कविता से उनका गहरा नाता है। वे अक्सर बड़े उत्साह से मुर्गी-पालन वाले दिनों की बात करते हैं, जब उनके पास कविताएँ लिखने के लिए काफ़ी समय हुआ करता था।

तेज़ कारों के लिए उनका शौक़ अब भी क़ायम है और इस जुनून के लिए वे प्रसिद्ध हैं। 'मैं लोगों के साथ सत्संग में परमानन्द में झूम सकता हूँ, रो सकता हूँ। अगले ही पल मैं अपनी कार में बैठ उसे अंधाधुंध दौड़ा सकता हूँ।' यह बात उन्होंने बड़े गर्व से तब बताई, जब वे यह समझा रहे थे कि एक योगी किस तरह से अपने भीतर इड़ा और पिंगला नाड़ियों को - चंद्र और सूर्य तत्वों को - नियंत्रित करता है।

'इस बार कैलाश की यात्रा पर मैं चीन में सबसे दुस्साहसी ड्राइवर था। तिब्बती ड्राइवर मानते हैं कि केवल वही उस इलाक़े में ड्राइव कर सकते हैं। लेकिन अधिकतर लोग जो दूरी तीन दिन में तय करते थे, मैंने एक दिन में कर दिखाई। जब मैं वहाँ पहुँचा और अपनी कार से उतरा, तिब्बती ड्राइवरों ने अपनी सिगरेट बुझाईं और मेरे सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। इसलिए नहीं कि मैं गुरु हूँ या कुछ और, बल्कि सिर्फ़ मेरी ड्राइविंग के प्रति सम्मान दिखाने के लिए! जब आप अपने भीतर दोनों पहलुओं को संतुलित करना जानते हैं, तो हालात का तकाजा जो भी हो, उसके मुताबिक़ आप ध्यानशील या जोश से भरपूर हो सकते हैं।'

हँसते हुए उन्होंने आगे कहा, 'शिव ने हर किसी के लिए दो लकीरें खींचीं हैं, लेकिन मेरे लिए सिर्फ़ एक लकीर।' मैंने पूछा, 'ऐसा पक्षपात क्यों?' 'अरे, क्योंकि वे मेरे साझेदार हैं, वे पक्षपात करते हैं।' वे हँसे और समझाने लगे : 'एक आत्मज्ञानी के लिए सूर्य और चंद्रमा का अलग अस्तित्व नहीं होता। उसके लिए द्वैत नहीं रह जाता। दोनों लकीरें मिलकर एक हो जाती हैं।'

ज़ाहिर है कि जो इंसान सूर्य और चंद्र तत्वों को संतुलन में संचालित कर सकता है, वह किसी भी हालात में जैसे चाहे, वैसे प्रतिक्रिया कर सकता है। 'कभी-कभार जब मेरे पास वक़्त होता है तो मैं रोता हूँ।' वे कहते हैं, 'मैं इसमें सक्षम हूँ। मैं सिर्फ़ एक पल में हँसी से आँसुओं में जा सकता हूँ। ऐसा इसलिए है क्योंकि जो कुछ मेरे भीतर हो रहा है, वह पूरी चेतना में हो रहा है। इस दुनिया में बहुत कुछ है जिसके लिए आँसू बहाए जा सकते हैं; और दुनिया में बहुत कुछ है जिसके लिए हँसा जा सकता है। ऐसा ही है न? अगर मैं चाहूँ तो एक फूल को देखकर रो सकता हूँ। मैं एक चिड़िया या बादल को देखकर रो सकता हूँ। मैं भावनात्मक रूप से अपाहिज नहीं हूँ। मेरे अंदर भावनाएँ हैं, लेकिन हालात से मजबूर न होना मेरे लिए संभव है।'

उनकी रूखी नपी-तुली बातों और तीखे मज़ाक के बावजूद सद्गुरु को जानने वाले उनके प्रबल भावनात्मक पक्ष पर शक नहीं कर सकते। ऐसी बात एक आश्रम निवासी बताते हैं, 'मेरा मानना है कि हम सभी ने उनकी कोमलता और संवेदनशीलता को किसी न किसी रूप में महसूस किया है, जो सद्गुरु की विशेषता है। वे सबसे नरम दिल इंसान हैं, जिन्हें हम जानते हैं। यही बात हमें मुश्किल पलों में आगे बढ़ने की ताक़त देती है।'

लगभग हर महासत्संग के आख़िर में उनकी आँखों में आँसू होते हैं। एक बार मैंने पूछा कि क्या ये आँसू प्रेम या करुणा के होते हैं? उनका जवाब सीधा और बेझिझक था, 'तीव्रता और समावेश के।'

लिंग भैरवी मंदिर की हाल में हुई प्राण-प्रतिष्ठा के दौरान सद्गुरु के आँसू खुलकर बहे। उन्होंने स्वीकार किया कि यह देवी की ऊर्जा के साथ-साथ पाँच हज़ार साधकों की ज़बर्दस्त भक्ति थी, जिसने उन्हें अभिभूत कर दिया। उन्होंने मज़ाक में कहा, 'मैं दोनों तरफ़ से दबा हुआ हूँ। देवी की शक्ति का

मेरे अंदर विस्फोट हो रहा है। तो अगर मैं इस तरफ़ देखता हूँ तो रोता हूँ, और अगर मैं दूसरी तरफ़ देखता हूँ तो भी रोता हूँ।'

वे मानते हैं कि जिन्होंने भी उन्हें सड़कों पर देखा होगा, वह उन्हें भावुक इंसान नहीं मानेंगे। 'पर जीवन को पूर्णता में जानने के लिए किसी इंसान को न तो सिर्फ़ मर्द होने की ज़रूरत है, और न ही सिर्फ़ औरत। अगर ज़रूरत हो तो एक संपूर्ण पुरुष बन जाना, अगर ज़रूरत हो तो एक संपूर्ण औरत बन जाना, अगर ज़रूरत हो तो एक बच्चा बन जाना, अगर ज़रूरत हो तो एक शैतान बन जाना, अगर ज़रूरत हो तो चैतन्य बन जाना - मानव चेतना में यह संभावना है। इस संभावना को हर इंसान को जानना चाहिए।'

लोगों और हालात के प्रति उनके खुलेपन की वजह से उनके जानने वाले उनके प्रति रक्षात्मक हो जाते हैं। कुछ दबी जबान में कहते हैं कि कभी-कभी सद्‌गुरु की बिना सोचे-समझे सबको शरीक कर लेने की प्रवृत्ति भोलेपन के कगार तक पहुँच जाती है। एक बार एक साधक ने मुझसे पूछा था, 'शिव को भोलेनाथ कहा जाता है न?' उसका इशारा साफ़ था : शायद सद्‌गुरु अपने भले की बिना परवाह किए लोगों पर कुछ ज़्यादा ही भरोसा कर लेते हैं।

*एक बार मैंने उनसे पूछा कि वे इतने सारे नए-नए चुटकुले कहाँ से ले कर आते हैं? उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में कहा, मैं उन अंतहीन लंबी उड़ानों के दौरान सहयात्रियों के सिर से उनको निकाल लेता हूँ।*

सद्‌गुरु ख़ुद भी अपने शुभचिंतक रक्षकों के प्रति बहुत स्नेहपूर्ण भाव रखते हैं। हाल ही में उन्होंने अपने जीवन के लापरवाह रवैए के बारे में अपना दिलचस्प नज़रिया पेश किया, 'मैं अपना जीवन पूरी तरह से बिना सुरक्षा के जीता हूँ। कोई भी मुझे धोखा दे सकता है। यह बड़ा आसान है। इसलिए नहीं कि मुझमें अपनी रक्षा करने की बुद्धि नहीं है, बल्कि इसलिए कि जो मेरे पास है, उसे चुराया नहीं जा सकता। अगर कोई इसे ले सकता, तो मुझे बहुत ख़ुशी होगी! बात बस इतनी है कि आप मुझे धोखा देकर ठीक

से रहने की कभी सोच नहीं सकते। ऐसा कभी नहीं होगा। यह कोई धमकी या श्राप नहीं है। जीवन का तरीक़ा ही यही है। आप आसमान की तरफ़ थूककर यह उम्मीद नहीं कर सकते कि उसका छींटा आप पर नहीं पड़ेगा।'

एक बार एक उत्साही पत्रकार ने उनसे पूछ ही दिया कि अगर उन्हें कभी कोई आतंकवादी मिल जाए, तो वे क्या करेंगे। इस पर उन्होंने जवाब दिया, 'सबसे पहली बात तो यह है कि मैं किसी को आतंकवादी की तरह नहीं देखता। मैं हर किसी में आतंकवादी होने की संभावना देखता हूँ। अगर आप ज़रूरत से ज़्यादा उन्हें उकसाते हैं, तो हर किसी का आतंकवादी बन जाना मुमकिन है। लेकिन अगर किसी आतंकी गतिविधि में शामिल रहा इंसान मेरे पास आता है, तो शायद मैं उसे गले से लगा लूँगा। यह तरीक़ा कारगर होता है, कभी नहीं चूकता - अगर वह अपने भीतर एक सुखद भाव महसूस करता है, अगर उसका गुस्सा और नफ़रत कुछ देर के लिए कम हो जाते हैं, तो वह किसी के लिए आतंकी नहीं रह जाता।' यहाँ तक तो यह एक गुरु की जबान से निकला हुआ वाजिब जवाब था। लेकिन फिर सद्गुरु तो सद्गुरु ही हैं, वे आगे कहने से नहीं चूके, 'लेकिन अगर मैं उस इंसान से उस समय मिलता हूँ, जब वह किसी आतंकी कारनामे में लगा हो, तब मैं उसे मार डालूँगा।' वह पत्रकार हक्का-बक्का रह गया। 'क्या आप उसे वाक़ई मार डालेंगे?' सद्गुरु ने पलटकर जवाब दिया, 'जब वह आदमी गोलियाँ बरसा रहा हो, तो आप मुझसे और क्या करने की उम्मीद रखते हैं? "असतो मा सद्गमय" कहने की?'

और यह जवाब बेशक सद्गुरु की शैली का है। उनके लिए कोई सिद्धांत नहीं है - अहिंसा भी नहीं। किसी ज़रूरतमंद के लिए वे स्वयं करुणा का रूप बन सकते हैं। अगले ही पल वे हालात की माँग के मुताबिक़ उतने ही बेरहम बन सकते हैं। 'आपको बस जागरूक रहना है और वही करना है, जो ज़रूरी है। यही प्रज्ञा है, यही चेतना है, और यही जीवन है। जब आप सचेतन होते हैं, तब आपको नैतिकता के ढाँचे की ज़रूरत नहीं पड़ती। यही हमेशा से इस संस्कृति की ताक़त रही है : जब भी कभी चेतना में कमी आई, सही तरह के लोगों का दुनिया में आगमन हुआ, उन्होंने इस पर काम किया और इसको ऊपर उठाया। अब दुर्भाग्य से हम एक ऐसी ख़तरनाक स्थिति पर पहुँच रहे हैं, जहाँ न तो नैतिकता है और न ही चेतना। अगर हम मनवीय-चेतना को ऊपर उठाने के लिए जल्दी ही कुछ नहीं करते, तो

नैतिकता के भयंकर जाल में फँस जाएँगे। अगर हम इनमें से कुछ भी नहीं करते हैं तो हम घोर अराजकता में डूब जाएँगे।'

पिछले कुछ वर्षों के दौरान उनमें साफ़ तौर पर काफ़ी बदलाव आया है। भारती कहती है कि सद्गुरु अब वो इंसान नहीं रहे, जिन्हें मैं कभी जानती थी। 'जब मैं पहली बार उनसे मिली थी तो वे आग के गोले की तरह थे। अब वे कहीं ज़्यादा नरम हो गए हैं। उनकी मौजूदगी की भौतिक प्रचंडता लगभग जा चुकी है।' माँ कर्पूरी भी इससे सहमत हैं, 'अब कभी-कभी वे इतने स्मार्ट, सभ्य और चतुर लगते हैं कि मुझे उन्हें उस सहज और तीव्र इंसान से, जिसे मैं कभी जानती थी, जोड़ने में मुश्किल होती है। लेकिन अब मैं उनसे सामाजिक तौर पर जुड़ी हुई नहीं हूँ - केवल आंतरिक संबंध बरकरार है - तो बर्ताव में बदलाव मुझ पर कम असर डालता है।'

सद्गुरु इसकी पुष्टि करते हैं कि उन्होंने ख़ुद में कुछ बदलाव होने दिए हैं। 'ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा के बाद मैंने एक कविता लिखी जिसमें मैंने कहा - "बहुत समय तक चोटियों पर रह चुका हूँ। अब जीवन की घाटियों में विचरने का वक़्त आ गया है..." अब मैं यही तो कर रहा हूँ - घाटियों में विचर रहा हूँ। पहले मैं एक आत्मघाती हमलावर की तरह था। सिर्फ़ एक ही चीज़ मायने रखती थी, मैं बस उसे ही करना चाहता था, और उसके बाद अगर शरीर टुकड़े-टुकड़े भी हो जाए तो मुझे उसकी कोई परवाह नहीं थी। मेरी ऊर्जाएँ एक ही मक़सद को पूरा करने में लगी थीं। अलग-अलग स्तर के प्रतिरोध, ग़लतफ़हमी और उलझाव वाले लोगों को एक ही दिशा में ले जाना था। इसके लिए कुछ ज़ोर-ज़बर्दस्ती की भी ज़रूरत थी। पर ध्यानलिंग के साकार होने के बाद मैंने ख़ुद को अपनी पूरी शख़्सियत बदलने की आज़ादी दे दी।'

कुछ वर्षों के दौरान बहुत से लोग उनकी भूमिका और बर्ताव में तेज़ी से आए बदलाव की वजह से परेशान रहे हैं, मगर सद्गुरु अपने एक उद्देश्य को लेकर अटल हैं - वह करना महत्त्वपूर्ण है, जिसे किए जाने की ज़रूरत है। उनके शिष्यों ने उन्हें ध्यानलिंग का निर्माण करने वाले संयमशील व तटस्थ योगी और लिंग भैरवी की प्राण-प्रतिष्ठा करने वाले परमानंदित भक्त के बीच भूमिकाएँ बदलते हुए देखा है। इसलिए समय-समय पर दर्दभरी आवाज़ें उठती रही हैं, जो जानना चाहती हैं कि सद्गुरु और 'ब्राण्ड ईशा'

आख़िरकार हैं क्या? 'मैं वाक़ई किसी ब्राण्ड की परवाह नहीं करता।' सद्‌गुरु इसे हँसी में उड़ा देते हैं, 'मेरा सरोकार सिर्फ़ इस बात से है कि आप कहाँ खड़े हैं? क्या आप किसी संभावना के सामने खड़े हैं या आपका रुख़ दूसरी तरफ है? मेरी कोशिश सिर्फ़ यह सुनिश्चित करना है कि आप द्वार की तरफ़ मुँह करके खड़े हैं। अगर आप अनजाने या बेख़बरी में भी सही दिशा की ओर रुख़ करके खड़े हैं तो ठीक है। भले ही आप नींद में चलें, तो भी ठीक है। तब भी आप पार हो जाएँगे। मुझे लगता है कि मुख्य ब्राण्ड हमेशा से कोई फ़ालतू चीज़ न करना रहा है - बस वही करना जो कारगर हो। मेरा ब्राण्ड यही है। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि यह धर्मग्रंथों में लिखा है या नहीं। जो कारगर हो - यही मेरा ब्राण्ड था, और अब भी यही ब्राण्ड है।' वे हँसते हुए यह स्वीकार करते हैं, 'शायद आजकल यह कुछ ज़्यादा पेचीदा होता जा रहा है...'

काम करने की शीघ्रता और तीव्र इच्छा अब भी है, लेकिन शायद वह थोड़ा दबी हुई है। इसमें कोई शक नहीं है कि अब वे ज़्यादा आसानी से उपलब्ध हैं और सामाजिक तौर पर ज़्यादा व्यावहारिक हैं। उनका कार्यक्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय है और वे इस बात से अनजान भी नहीं हैं कि अलग-अलग तरह के पेचीदा हालात से कैसे निपटना है। समाज कल्याण की कई परियोजनाओं को चलाने वाले एक योग केंद्र का संचालक होने के लिए निश्चित रूप से काफ़ी चतुराई, जुगाड़ूपन और सख़्ती चाहिए होती है, साथ ही साथ कारपोरेट दिग्गजों को आकर्षित करने की क्षमता, सरकारी अधिकारियों को संतुष्ट रखने, और कठिन राजनैतिक हालात से अपने संगठन को दूर रखने की क़ाबिलियत की ज़रूरत पड़ती है। ज़ाहिर है कि वे इस काम में माहिर हैं।

यह उनका एक ऐसा पहलू है, जिसे मैं अभी भी अपने भीतर समझने की कोशिश कर रही हूँ। मैं मानती हूँ कि इतने बड़े स्तर के आध्यात्मिक समुदाय को चलाने वाले इंसान को थोड़ी राजनैतिक जागरूकता की ज़रूरत होती है। मुझे यह भी एहसास है कि अगर वे समाज कल्याण से जुड़ी गतिविधियों में न लगे होते, तो बहुत से लोग - जिनमें मैं भी शामिल हूँ - उनके अस्तित्व से अनजान होते। लेकिन मेरे दिमाग़ में आध्यात्मिक गुरु की छवि एक आडंबरहीन साधारण इंसान की है, जो चर्चा में रहने से बचे, योग-ध्यान का शांतिपूर्ण जीवन जिए, थोड़े से समर्पित साधकों को उपलब्ध रहे, आध्यात्मिक मामलों पर अपनी सलाह दे, और दूसरे मुद्दों पर

टीका-टिप्पणी करने से बचे। लेकिन इसके बजाय ये निरंकुश और जोशीले इंसान मेरे गुरु बन गए। वे दक्षिण अफ्रीका में इंडियन प्रीमियर लीग मैचों के कभी मुख्य अतिथि होते हैं, तो कभी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक कॉन्फ्रेंसों की शोभा बढ़ाते हैं, बेहतरीन रेशमी शाल पहनते हैं और नारीवाद से लेकर समलैंगिता तक के सवालों पर टिप्पणी करते हैं।

*मैं अपना जीवन पूरी तरह से बिना सुरक्षा के जीता हूँ। कोई भी मुझे धोखा दे सकता है। यह बड़ा आसान है। इसलिए नहीं कि मुझमें अपनी रक्षा करने की बुद्धि नहीं है, बल्कि इसलिए कि जो मेरे पास है, उसे चुराया नहीं जा सकता।*

एक बार वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम के लिए उनके निकलने की पूर्व संध्या पर मैंने उनसे शायद ज़रा ढिठाई से पूछ लिया, 'क्या आप प्रतिष्ठानों के साथ समझौता कर रहे हैं?' उन्होंने इत्मीनान से जवाब दिया, 'यह सुलह या समझौता करने की बात नहीं है, यह अपने संसाधनों और ऊर्जा को वहाँ लगाने की बात है, जहाँ इससे सबसे ज़्यादा फ़ायदा मिले। आप अपने बीज पत्थरों में नहीं बोते, आप इन्हें उपजाऊ मिट्टी में बोते हैं। बात यह है कि अब तक आध्यात्मिक लोग अपनी ज़िम्मेदारियों से मुकरते रहे हैं। ज़िम्मेदारियों से भागने से कोई योगदान नहीं होता। जब आपका सरोकार लोगों से है, जब आपका सरोकार समाज से है, तो आपका सरोकार भ्रष्टाचार से भी है, तो आपका सरोकार वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम से भी है। इस देश में गुरु हमेशा राजाओं के पास जाया करते थे, इसलिए नहीं कि उन्हें पैसों की ज़रूरत होती थी, बल्कि इसलिए कि अगर आप उस शख़्स को कुछ सलाह देते हैं, तो लोग ख़ुशहाली से रहेंगे। अगर आप किसी गाँव में जाकर एकांत में काम करते हैं, तो राजा एक ही दिन में आपका काम मटियामेट कर सकता है। सिर्फ़ आध्यात्मिक काम करने के लिए मुझे किसी विज्ञापन या प्रचार की ज़रूरत नहीं है। पहले पंद्रह वर्षों में मैंने कभी प्रेस-कॉन्फ्रेंस नहीं की, कभी टेलीविज़न पर नहीं आया, कोई बैनर-पोस्टर नहीं लगवाए। लेकिन मैं हमेशा व्यस्त रहा। आध्यात्मिक कामों के लिए मुझे प्रचार की ज़रूरत नहीं है। लेकिन

अपने काम के सामाजिक पक्ष के लिए मुझे काफ़ी प्रचार की ज़रूरत है।'

मैंने अपनी बात जारी रखी। तो क्या लंगोटीधारी एकांतवासी ज्ञानियों के दिन लद गए? आज के ऊँचे उड़ने वाले गुरु, उच्च वर्ग के लिए ही होते हैं, जो बाज़ार की माँग की जानकारी रखते हैं। क्या इस बदलाव में कोई महत्त्वपूर्ण चीज़ खो नहीं गई? वे हँसे और पलटकर जवाब दिया, 'योगी हमेशा से ही ऊँचे उड़ने वाले रहे हैं! वे लोग हमेशा ठसकदार व आकर्षक रहे हैं। दिव्यदर्शी भी रंगीन होते थे। वे लोग जो वैसा बनने के लिए साधना कर रहे हैं, सिर्फ़ वे ही लंगोटीधारी होते हैं। साधना की वजह से वे लोग ऐसे हैं। मैं भी कभी लंगोटीधारी हुआ करता था। यह एहसास होने में थोड़ा वक़्त लगता है कि लंगोटी आपको आध्यात्मिक नहीं बनाएगी। लेकिन हर इंसान को यह जानने के लिए लंगोटी के दौर से गुज़रना होता है। जब आप अपने जीवन में लंगोटी के दौर से गुज़रते हैं, सिर्फ़ तभी आप इसे (उन्होंने अपने कपड़ों की तरफ इशारा किया) एक अलग रंग-ढंग में पहन पाते हैं। यह आपसे कभी चिपकता नहीं है, क्योंकि लंगोटी आपको अच्छी तरह से चिकना कर देती है।'

एक दूसरे मौक़े पर उन्होंने कहा, 'मान लेते हैं कि मैं जार्ज बुश (जो उस समय अमेरिका के राष्ट्रपति थे) से ध्यान करवा सकता था। तब वह जो फ़ैसले लेते, वे अलग क़िस्म के होते। अगर इराक पर हमला करने से पहले वह ध्यान करते, तो वह अलग तरह से पेश आते। मैं बुश को किसी भी तरह से एक आदिवासी औरत से ज़्यादा नहीं आँक रहा हूँ। इन दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं है। पहले तकलीफ़ें पैदा करके, फिर उनसे राहत दिलाने की कोशिश करने के बजाय, सामाजिक ज़िम्मेदारियों के ओहदों पर मौजूद लोगों तक पहुँचकर, हम तकलीफ़ों से बचने की कोशिश कर सकते हैं।'

चाहे वह कोई राजनीतिज्ञ हो या पॉप स्टार, किसी को भी योग सिखाने में उन्हें हिचक नहीं है। एक बार मैंने पूछा, 'लेकिन सबको शामिल करने' और 'भेदभाव न बरतने' के बीच क्या बारीक सा फ़र्क़ नहीं है? क्या इसके 'पेज-थ्री' क़िस्म के आध्यात्मिक जमावड़े में बदल जाने के ख़तरे भी हैं?' उन्होंने जवाब दिया, 'मैं जो कर रहा हूँ उसको लेकर मैं कोई समझौता नहीं करूँगा। लेकिन मैं किसी माइकल जैक्सन के लिए यह कार्यक्रम ज़रूर करूँगा, बशर्ते वह इसे हर किसी से करवाने को तैयार हो। इसके पीछे बहुत साधारण

तर्क है – मैं हर किसी को ध्यान सिखाना चाहता हूँ। अब सिर्फ़ इस बात से, कि कोई माइकल जैक्सन जैसा इंसान ध्यान कर रहा है, उसके करोड़ों फ़ैन अपनी आँखें बंद करके उसका अनुकरण करने लगेंगे। यह कोई बुरी बात नहीं है। वह मुझसे ज़्यादा असरदार होगा। इस बात से मुझे कोई दिक्क़त नहीं है। क्या यह आपको व्यावसायिक लगता है? मैं इसे बस समझदारी कहता हूँ।'

कई वर्षों से ईशा से जुड़े एक स्वयंसेवी बताते हैं कि उन्होंने भी ईशा फ़ाउंडेशन के साथ अपने सफ़र के दौरान 'इसमें रहने या इसे छोड़ने' की दुविधा का सामना किया है। लेकिन जिस बात ने उन्हें इस रास्ते पर कायम रखा, वह यह है कि यह बुनियादी तौर पर एक निष्पक्ष संगठन है। इसे हर तरह के ब्राह्मणवाद, सामंतशाही, भाई-भतीजावाद आदि से बहुत सावधानी से दूर रखा गया है। उनका कहना है, 'इस देश के दूसरे आध्यात्मिक संगठनों के विपरीत, इसे जाति, धर्म-संप्रदाय और परिवार जैसी चीज़ें नियंत्रित नहीं करती। अगर परिवार का कोई सदस्य इसमें कोई भूमिका निभाना चाहता है, तो उसे भी सभी दूसरे साधकों की तरह संगठन के साथ विकास करना होगा। उन्हें कोई वरीयता नहीं दी जाती। भारत के कई दूसरे आध्यात्मिक संगठनों में आध्यात्मिक प्रक्रिया तो समर्पित स्वयं सेवियों द्वारा सिखाई जाती है, लेकिन जब बात पैसे और संपत्ति की आती है, तो उस पर गुरु के परिवार वालों का एकछत्र अधिकार रहता है। यह चीज़ उन संगठनों के बारे में क्या बताती है?'

हालाँकि सद्‌गुरु को सार्वजनिक भूमिका निभाने में मज़ा आता है, लेकिन जैसा कि वे कहते हैं, उन्हें 'जानबूझ कर असभ्य' बने रहना ज़्यादा पसंद है। इसलिए जहाँ उनका आचरण सामाजिक तौर पर बहुत कम अनुचित होता है, वहीं दूसरी तरफ़ वे दुनिया के सबसे होशियार कूटनीतिज्ञ भी नहीं हैं। पहली बार जब उन्होंने वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम में हिस्सा लिया, तब उन्होंने अपने तीखे भाषण और स्पष्ट सोच से तमाम प्रतिभागियों को धराशायी कर दिया। लेकिन वे ख़ुद स्वीकार करते हैं कि फिर शाम को सबके साथ नाच में शामिल होकर और पूरे जोश से नाचकर उन्होंने उस छवि को ध्वस्त कर दिया। स्पष्ट है कि ऐसी हरकत एक संत पुरुष के लिए वाजिब नहीं मानी जाती है। इससे कुछ उद्योगपति और उनकी पत्नियाँ बिलकुल

आचंभित रह गए! वे बताते हैं, 'उन सब पर शराब का नशा चढ़ रहा था और वे नाचने में हिचक रहे थे। मैं तो वैसे भी हर समय नशे में ही रहता हूँ, इसलिए मैं बस गया और नाचना शुरू कर दिया। कुछ लोग इस नाचने वाले योगी पर मुग्ध हो गए, और कुछ लोग इसे बिलकुल नहीं पचा पाए।'

सद्गुरु ने एक बार कहा था, 'एक गुरु का काम "ट्रांसमिट करना" यानी दीक्षित करना होता है। दीक्षित करना, शिक्षा देने से कहीं ज़्यादा अहम है। शिक्षा देना तो बस दरवाज़े पर दस्तक देने का तरीक़ा है।'

वे ऐसे इंसान हैं जो विश्वास या आस्था को आत्मखोज के रास्ते की रुकावट मानते हैं। इसलिए कोई हैरानी नहीं कि ऐसी कोई सैद्धांतिक प्रणाली नहीं है, जिसे 'सद्गुरु की शिक्षा' कहा जा सके। वे अक्सर कहते हैं कि उनका मक़सद जमा किए गए सभी विश्वासों को ढहाना है, न कि पवित्र मान्यताओं के डगमगाते अंबार को और बढ़ाना। ईशा योग कार्यक्रमों में काफ़ी तर्क आधारित चीज़ें शामिल होती हैं, लेकिन जल्दी ही यह बात साफ़ हो जाती है कि इस कोर्स का मक़सद कुछ और है।

'आपके तर्क को मेरी बात पसंद आती है, क्योंकि यही तरीक़ा है जिससे मैं आपको अपने साथ बैठा सकता हूँ।' वे अक्सर कहते हैं, 'जैसे ही मैं तर्कसंगत लगना बंद कर दूँगा, आप उठ कर चले जाएँगे। इसीलिए मैं तर्कसंगत हूँ, लेकिन एक सीमा तक। अगर मैं आत्मज्ञान की बातें करूँ तो यह आपके लिए बस बड़ी-बड़ी बातें होंगी। अगर मैं अपने पूर्ण स्वरूप को ज़ाहिर कर दूँ, तो आप कल फिर नहीं आएँगे। एक तार्किक दिमाग़ की परिभाषा ही यह है कि यह हर चीज़ को कम-से-कम दो हिस्सों में बाँट देता है। लेकिन आत्मज्ञान का मतलब है - सिर्फ़ एक। तो आप आत्मज्ञान के बारे में बात नहीं कर सकते; आप सिर्फ़ इसके इर्द-गिर्द की बातें कर सकते हैं।' और वे इसके इर्द-गिर्द की बातें करने में बहुत माहिर हैं। इस बात का सबूत यह है कि उनके श्रोता उनके पास बार-बार लौटकर आते हैं। कुछ समय पहले मैंने पाया कि अगर आप सद्गुरु के तर्क में कमी निकालने की ठान लें, तो यह मुश्किल काम नहीं है। लेकिन ऐसा वही करेंगे जो अभेद्य तार्किकता खोज रहे हैं। पहले के बहुत से दूसरे रहस्यदर्शियों की तरह सद्गुरु

भी ज़िद्दी और विरोधाभासी हो सकते हैं, लेकिन इस वजह से उनकी तरफ़ खिंचाव कुछ कम नहीं होता।

एक बार मैंने उनसे पूछा, 'एक दिव्यदर्शी होने के मायने असल में क्या होते हैं?' उन्होंने जवाब दिया, 'दो गाएँ एक ब्रिटिश चरागाह में चर रही थीं। एक ने दूसरी से पूछा, 'मैड काउ बीमारी के बारे में तुम्हारी क्या राय है?' दूसरी ने कहा, 'मैं इन बातों की ज़रा भी परवाह नहीं करती। मैं तो हैलीकॉप्टर हूँ।'

'अगर एक गाय को एहसास हो जाए कि वह गाय है, तो वह बन जाती है एक सेलिब्रिटी - एक पवित्र गाय। यह इतनी सीधी-सी बात है। यह बस बोध होने का सवाल है। भारत में हमने दिव्यदर्शियों को 'आत्मज्ञानी' कहा है। यह किसी चीज़ को खोज निकालने या आविष्कार करने की बात नहीं है; इसके लिए बस इस बात का ज्ञान ज़रूरी है कि आप हैं कौन? अगर आप किसी चीज़ को नहीं समझ पाते हैं, तो वह आपके लिए रहस्य हो जाती है। जो इंसान, ऐसी चीज़ें जानता है जो दूसरे नहीं जानते, दिव्यदर्शी कहलाता है। लेकिन दिव्यदर्शी वह इंसान है जिसे उसका एहसास हो गया जो वास्तव में मैजूद है। दूसरे लोग यह नहीं समझ पाते, क्योंकि वे ख़ुद में इतने खोए हुए हैं कि जीवन पर ध्यान नहीं दे पाते।'

*मेरा सरोकार सिर्फ़ इस बात से है कि आप कहाँ खड़े हैं? क्या आप किसी संभावना के सामने खड़े हैं या आपका रुख़ दूसरी तरफ है? मेरी कोशिश सिर्फ़ यह सुनिश्चित करना है कि आप द्वार की तरफ़ मुँह करके खड़े हैं।*

फिर इस ज्ञान में इतना ख़ास क्या है? एक ऐसी गाय होना, जिसे अपने गाय होने का एहसास हो, इसमें ऐसी बड़ी बात क्या है? वे जवाब देते हैं, 'अगर आप जीवन को जान जाते हैं, अगर आप सत्य को जान जाते हैं, तब आप जान जाएँगे कि हर चीज़ किस तरह काम करती है। तब अगर आप प्रेम या आनंद या परमानंद चाहते हैं तो वह आपके पास होता है। मनुष्य की सबसे गहरी इच्छा आज़ादी की है। और यह भी उपलब्ध है। चामुण्डी

पर्वत पर मेरे उस अनुभव के बाद मेरे भीतर समय और स्थान उलट-पलट होने लगे। अचानक जो वहाँ था, वह यहाँ हो गया। जो तब था, वह अब हो गया। मैं हर किसी का भूत, वर्तमान और भविष्य, एक साथ देख सकता था। यह सब एक बड़ा गड़बड़झाला था। लेकिन यह बेहद ख़ूबसूरत भी था। तब जाकर मुझे एहसास हुआ कि इंसान के सारे अनुभव उसके ख़ुद के बनाए होते हैं। हालाँकि ज़्यादातर लोग यह विश्वास करते हैं कि उनके अनुभव उनके आसपास की घटनाओं द्वारा पैदा होते हैं। लेकिन मैंने एहसास किया कि ये सौ फ़ीसदी ख़ुद के बनाए होते हैं। आप अपने अनुभवों को जैसा चाहें वैसा रूप दे सकते हैं। अपने भीतर बस एक पल के सुख को महसूस करने के लिए एक इंसान को कितने अपमान से गुज़रना पड़ता है। बस, एक पल की पूर्णता को महसूस करने के लिए लोगों ने अपनी ज़िंदगी को कैसा सर्कस बना रखा है! और आप कुछ भी महसूस कर लें, वह कभी भी काफ़ी नहीं होगा। इंसान में हमेशा कुछ और पाने की लालसा बनी रहेगी। विवशता के परे जाने की यह विवशता ही इंसान की बुनियादी आवश्यकता है।'

सद्‌गुरु के एक चुटकुले से लगता है कि इंसानों के प्रति उनकी राय बहुत प्रशंसनीय नहीं है। 'दो मगरमच्छों की मुलाक़ात हुई। उनमें से एक ख़ूबसूरत और मोटा-ताज़ा दिख रहा था, जबकि दूसरा ऐसा लग रहा था जैसे वह एक वर्ष से सम्यमा कार्यक्रम कर रहा हो। (उनका इशारा सात दिन के उच्च स्तरीय ईशा कार्यक्रम की तरफ़ था, जिसमें भोजन को अल्पाहार कहना भी कम बयानी होगी)। जिस झील में वे रहते थे, वह किसी अदालत के बग़ल में थी।'

दुबले-पतले मगरमच्छ ने पूछा, 'अरे दोस्त, तुम इतने मोटे-ताज़े कैसे हो गए? हम दोनों तो एक जैसा ही भोजन कर रहे हैं। लेकिन तुम तो बड़े अच्छे दिखते हो। और मुझे देखो, मैं तो बस हड्डियों का ढाँचा हूँ।'

तो मोटे मगरमच्छ ने पूछा, 'तुम अपना शिकार कैसे पकड़ते हो?'

दुबले-पतले मगरमच्छ ने कहा, 'जहाँ वकील अपनी कारें खड़ी करते हैं, उस पार्किंग के पास जाकर, मैं इंतज़ार करता हूँ। जब वे अपनी कार का दरवाज़ा खोल रहे होते हैं, मैं कार के नीचे से जाकर उन्हें पकड़ लेता हूँ। कार के नीचे खींचने के बाद उन्हें हिला-हिलाकर सारी गंदगी बाहर निकाल देता हूँ और फिर उन्हें खा जाता हूँ।'

दूसरे मगरमच्छ ने कहा, 'यही तो ग़लती करते हो। अगर तुम सारी गंदगी हिलाकर बाहर निकाल दोगे, तो फिर सिर्फ़ ब्रीफ़केस ही बचेगा!'

'तो अगर हम आपको हिलाकर आपके सारे कर्म बाहर निकाल देते हैं,' सद्गुरु हँसकर कहते हैं, 'तो क्या बचता है? ज़्यादा कुछ नहीं।'

लेकिन फिर यही तो अहम विरोधाभास है। अगर इंसान गंदगी के ढेर - और एक ब्रीफ़केस - से ज़्यादा कुछ नहीं है, तो फिर ऐसा क्या है जो गुरु को इंसानी दशा पर ध्यान देने के लिए उकसाती है? इसका औचित्य क्या है? इसके पीछे कौन-सी प्रेरणा है? एक बार सद्गुरु ने मुझे बताया, 'यह बिलकुल ग़लत धारणा है कि आपको कुछ करने के लिए जोश से भरा होना ज़रूरी है।' मैंने पूछा था, 'बिना फल की चिंता किए पूरी लगन से कुछ करने का क्या मतलब है?' उन्होंने निष्काम-कर्म जैसी घिसी-पिटी बातों से सावधान करते हुए तुरंत जवाब दिया, 'क्या मैं तुम्हें उदासीन लगता हूँ? मैं हर चीज़ में बहुत गहराई से शामिल हूँ। लेकिन अगर मुझे सफलता नहीं मिलती है, तो मैं टूट नहीं जाऊँगा। हज़ारों लोगों के साथ मैं बहुत गहराई और उत्साह के साथ शामिल हूँ। अगर आप तकलीफ़ के डर से आज़ाद हैं, तो क्या आप ख़ुद को जीवन में मग्न करने से डरेंगे? अभी इस वक़्त आप सिर्फ़ तकलीफ़ और कष्ट के डर से हिचक रहे हैं। अगर तकलीफ़ का डर दूर कर दिया जाए, तो क्या आप अपने आसपास की चीज़ों के साथ खुलकर शामिल नहीं होंगे? क्या आप ख़ुद को जीवन में नहीं झोंक देंगे? क्या आप कम के बजाय ज़्यादा प्रेम नहीं करेंगे? यह आश्रम, ये इमारतें, जो कुछ भी हम कर रहे हैं - ये मेरे लिए निजी तौर पर कोई मायने नहीं रखते। ज्यों ही मैं यह बात कहता हूँ, तो लोगों को झटका लगता है। वे पूछते हैं, "अगर आपके लिए इस सबके कोई मायने नहीं हैं, तो फिर आप यह सब कर क्यों रहे हैं?" यही बात आपको समझने की ज़रूरत है। हालाँकि, निजी तौर पर, ये चीज़ें मेरे लिए कोई मायने नहीं रखतीं, फिर भी मैं बस यही करते हुए अपना जीवन बरबाद करने को तैयार हूँ। मैं यह सब इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि इसका मेरे लिए कोई ख़ास महत्त्व है। मैं यह इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि इसकी ज़रूरत है, बस।'

सद्गुरु के विचारों में जो चीज़ मुझे शुरू से ही अच्छी लगी, वह थी कि वे श्रद्धा और तर्क, आध्यात्मिकता और विज्ञान, लौकिक और अलौकिक

में कोई सीधा फ़र्क़ करने से इन्कार कर देते हैं। वे अक्सर इस बात को दोहराते हैं, 'आप मूल रूप से एक आध्यात्मिक प्राणी हैं जो सांसारिकता में उलझा हुआ है, हालाँकि आप सोचते इसका उल्टा हैं। मुक्ति कोई मेरा विचार नहीं है, यह तो जीवन के हर रूप के अंदर धड़क रही एक मौलिक चाहत है। हर इंसान के भीतर, सीमाओं में रहने की और विस्तार करने की, आत्मरक्षा की और असीम हो जाने की चाहत एक साथ मौजूद है। शरीर की चाहत और जीव की चाहत का खेल निरंतर जारी है। भौतिक प्रकृति ख़ुद को सुरक्षित रखने की कोशिश कर रही है, जबकि आध्यात्मिक प्रकृति विस्तृत होने की कोशिश कर रही है। लेकिन सुरक्षा की ज़रूरत सिर्फ़ शरीर को है। इसके आगे, सुरक्षा और संरक्षण की भावना ख़ुद में एक जेल बन जाती है। आध्यात्मिक लालसा जन्मजात होती है, लेकिन ज़रूरत से ज़्यादा शिक्षा देने की वजह से लोगों को लगता है कि यह बाहर से आ रही है। ख़ुद में सबको शामिल करने की चाहत को आप रोक नहीं सकते। इंसान के भीतर कुछ ऐसा है, जो सीमाएँ पसंद नहीं करता है। असीम होने की यह प्यास आपने पैदा नहीं की, यह तो जीवन की चाहत है, जीवन की तड़प है ख़ुद के लिए। आप चाहें तो इसे किश्तों में कर सकते हैं। लेकिन बुनियादी चाहत तो असीम को पाने की है। जब तक आप असीम को पा नहीं लेते, तब तक यह चाहत तृप्त नहीं होगी। अचेतन रूप से आध्यात्मिक होने के बजाय सचेतन रूप से आध्यात्मिक होने में समझदारी है।'

अपनी बात समझाने के लिए वे लार्वा से तितली निकलने की और बीज से पेड़ निकलने की पुरानी मिसालें देते हैं। इन प्रक्रियों में हर तरह की अनिरंतरता और फटने-फूटने जैसी चीज़ों के होने के बावजूद ये प्राकृतिक प्रक्रियाएँ हैं। 'अगर बीज न फटे तो एक नया अंकुर कभी नहीं निकलेगा। अगर आप बीज को बचाने के लिए इसके खोल को बरकरार रखने की कोशिश करेंगे, तो कोई नई संभावना कभी नहीं आएगी। पेड़ बनने की प्रक्रिया में बीज ख़ुद को खो देने का भारी संघर्ष करता है। यह अपनी सुरक्षा, अखंडता गँवाकर आसपास के हर बाहरी हालात के प्रति ख़ुद को उघाड़ता है। पर बिना ख़ुद को उघाड़े, बिना उस खोल को तोड़े जीवन अंकुरित नहीं होगा।'

जीवन को अंकुरित होने के लिए क्या चाहिए? ज़ाहिर है कि जैसे हालात हों, उनके मुताबिक़ ख़ुद को आगे बढ़ाना, न कि इस अटल प्रक्रिया

के ख़िलाफ़ संघर्ष करना। 'विकास तो वैसे भी होता ही है, आपके पास विकल्प सिर्फ़ यह है कि आप विकास अपनी इच्छा से करते हैं या अनिच्छा से। अगर आप इच्छुक हैं, तो यह प्रेम है। अगर आप इच्छुक नहीं हैं, तो यह बलात्कार है।'

*पहली बार जब उन्होंने वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम में हिस्सा लिया, तब उन्होंने अपने तीखे भाषण और स्पष्ट सोच से तमाम प्रतिभागियों को धराशायी कर दिया। लेकिन वे ख़ुद स्वीकार करते हैं कि फिर शाम को सबके साथ नाच में शामिल होकर और पूरे जोश से नाचकर उन्होंने उस छवि को ध्वस्त कर दिया।*

सद्‌गुरु के आकर्षक विचारों का एक और पहलू है : कर्म की किसी निश्चित परिभाषा पर ज़ोर देने से उनका इन्कार करना। वे अक्सर कहते हैं, 'अगर आप अपनी जीवन प्रक्रिया को सचेतन बनाने को तैयार हैं, तो आपके लिए भाग्य जैसी कोई चीज़ नहीं है। भाग्य सौ फ़ीसदी आपका ही सृजन है। अभी भी ऐसा ही है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि आप अभी इसे अचेतन अवस्था में, अनजाने में रच रहे हैं। लेकिन आप इसे सचेतन होकर भी रच सकते हैं। योग का मतलब यह है कि आप इस सीमा तक अपने भाग्य के विधाता बन जाएँ कि जीवन, मृत्यु और जन्म की प्रक्रिया आपके हाथों में हो। किस गर्भ से जन्म लेना है, यह चुनाव भी आप कर सकते हैं। जब जीवन की आपकी समझ और अनुभव में गहराई आ जाती है तो सब कुछ आपके नियंत्रण में आ जाता है।' वे अक्सर मज़ाक करते हैं कि ज़्यादातर लोग अपनी कामयाबी का श्रेय तो ख़ुद लेने को तैयार रहते हैं, लेकिन अपनी नाकामयाबी को अपने कर्म या दैवी इच्छा के मत्थे मढ़ देते हैं।

किसी धर्मग्रंथ, विचारधारा, मत, दर्शन, पूर्वाग्रह या विश्वास से गहरी पहचान बनाना इस यात्रा में रुकावट बन जाता है। सद्‌गुरु कहते हैं, 'जिस पल आप किसी चीज़ में विश्वास करते हैं, फिर उसके विरोधी सोच के साथ संघर्ष करना लाजिमी है। आप मामूली बातों से इसे कुछ देर के लिए टाल

सकते हैं। लेकिन अगर आप इंसान के दिमाग़ को दूषित न करें, तो उसके लिए खोज व तलाश करना बिलकुल स्वाभाविक है। किसी मत व विश्वास से जुड़ा इंसान यह सोचता है कि वह सब कुछ जानता है, इसके विपरीत, एक खोजी व जिज्ञासु की शुरुआत यहाँ से होती है, "मैं तो कुछ नहीं जानता।" ज्यों ही आप "मैं नहीं जानता" की अवस्था में आ जाते हैं, आपका जीवन बहुत भव्य तरीक़े से घटित होने लगता है।'

इस मार्ग में किसी भी तरह का दंभ ख़तरनाक फंदा साबित हो सकता है। सद्गुरु कहते हैं, 'अच्छाई भी एक तरह का पूर्वाग्रह है। माता-पिता के बाद स्कूल के शिक्षक अपने तमाम अच्छे इरादों के बावजूद, मानवता को शायद हिटलर से भी ज़्यादा नुक़सान पहुँचा रहे हैं। उसने तो बस लोगों को कष्ट पहुँचाने का इंतज़ाम किया था। अगर आप मुक्ति की खोज में हैं, तो आप बेहतर कर्म इकट्ठा करने की कोशिश नहीं करते। तब आप कर्म का बोझ पूरी तरह से गिरा देने की कोशिश करते हैं। कुछ ऐसे गुरु हैं जो शिक्षा देते हैं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा। और कुछ मेरी तरह हैं, जो दोनों को ही ध्वस्त करने की कोशिश करते हैं।'

वे अगर घिसे-पिटे मत व विश्वासों को संदेह की नज़र से देखते हैं, तो सतही नास्तिकता को भी पूरी तरह नकार देते हैं। एक बार उन्होंने यह सूक्ति वाक्य कहा, 'आस्था एक परिपक्व तर्क है, नास्तिकता अपरिपक्व तर्क है।' इस नज़रिए से आस्था का विश्वास से कोई लेना-देना नहीं है। आस्था सिर्फ़ ईंधन की तरह है जो साधक को अक्सर बंद गली जैसे लगने वाले रास्ते पर चलते रहने के लिए प्रेरित करती है। यह अज्ञात में निडर होकर गोता लगाने को प्रेरित करती है। वे मानते हैं कि आस्था की यात्रा में शंका एक अहम और अनिवार्य क़दम हो सकता है। लेकिन शक को वे 'एक बीमारी' का दर्जा देते हैं। वे अक्सर इस संदर्भ में एक बौद्ध कथा सुनाते हैं, जब एक समर्पित आस्थावान भक्त ने बुद्ध से ईश्वर के अस्तित्व के बारे में सवाल किया तो उस महान गुरु ने ईश्वर के अस्तित्व को नकार दिया। परजब एक पक्के नास्तिक ने बुद्ध से वही सवाल किया तो गुरु ने ईश्वर का अस्तित्व होने की हामी भरी। साफ़ तौर पर इस कहानी का मक़सद सवाल करने वालों को यह याद दिलाना है कि सत्य विश्वास और अविश्वास से परे है, और आध्यात्मिक यात्रा में साधकों और जिज्ञासुओं की ज़रूरत है, न कि विश्वास करने वालों की।

तो फिर सत्य असल में है क्या? बुद्ध की तरह सद्गुरु भी इस सवाल पर चुप रहते हैं। वे बस इतना ही कहते हैं कि यह कोई मंज़िल, कोई निष्कर्ष, या किसी दर्शन का सिद्धांत नहीं है, बल्कि एक 'जीता-जागता अनुभव' है। इसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसे सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है। लेकिन ऐसा नहीं है कि इसे कुछ ख़ास लोग ही अनुभव कर सकते हैं, वे दोहराते हैं। इसे अनुभव करने की संभावना सभी के लिए उपलब्ध है। बस उस अनुभव के लिए लोगों की तैयारी के स्तर अलग-अलग हो सकते हैं, पर तैयार सबको किया जा सकता है। 'यह शरीर मांस, ख़ून और हड्डियों का महज एक ढेर हो सकता है। या इस शरीर को एक शक्तिशाली यंत्र का भी रूप दिया जा सकता है। जब यह महज एक जैविक इकाई के रूप में होता है, तो इसमें सिर्फ़ आत्म-संरक्षण और प्रजनन की शक्तियाँ ही काम करती है। लेकिन अगर आप इस पर थोड़ी मेहनत करते हैं, तो आप मिट्टी के इस अंश को साक्षात चैतन्य व ईश्वर में भी बदल सकते हैं। आप इसे एक पूजनीय देवता बना सकते हैं। इंसानी प्रकृति की ख़ासियत यह है कि आपके पास यह फ़ैसला करने की आज़ादी है कि ईश्वर आपके भीतर किस तरह से काम करे।'

इस पर थोड़ी मेहनत करने को ही योग कहते हैं। योग भीतरी कीमियागीरी का रास्ता है, जिससे एक जैविक प्राणी अपना रूपांतरण एक आध्यात्मिक प्राणी में कर लेता है। यह अपने शरीर, मन, भावना और ऊर्जा को तालमेल में लाने का एक प्राचीन आंतरिक विज्ञान है, ताकि हम एक मनुष्य के रूप में अपनी गहनतम संभावना को पहचान सकें। सद्गुरु कहते हैं, 'जहाँ सिर्फ़ शिक्षा दी जाती है, वहाँ आराधना होगी, पूजा होगी। जहाँ साधन होगा, विधियाँ होंगी, वहीं रूपांतरण होगा।'

एक बातचीत के दौरान सद्गुरु ने योग की विधि के बारे में अद्भुत चीज़ बताई, 'योग में हम ऐसा नहीं मानते कि आत्मज्ञान अचानक होता है। हम आत्मज्ञान को एक प्रक्रिया बना देते हैं। ज़ेन पद्धति में, एक फूल के खिलने की तरह आत्मज्ञान के अचानक घटित होने का इंतज़ार किया जाता है। लेकिन योग में हम इसे धीरे-धीरे घटित होने देते हैं, क्योंकि अगर यह अचानक होता है, तो संभव है कि आपका शरीर छूट जाए। हम ऐसा नहीं होने देना चाहते। हम चाहते हैं कि आप चरणबद्ध तरीक़े से विकास करें। जब आप बोध के एक स्तर तक आ जाते हैं, तो आप अगले स्तर की

अनुभूति की दिशा में क़दम रखते हैं। इसमें कुछ भी अचानक नहीं होता। इसमें कोई झटका नहीं लगता।'

तो फिर क्या यह कम चमत्कारिक हो जाता है? कम रोमांचक हो जाता है? क्या यह कम भव्य हो जाता है? कम नाटकीय हो जाता है? वे मानते हैं, शायद ऐसा हो सकता है। 'शायद कुछ हद तक इसकी ख़ूबसूरती कम हो जाती है। जब कोई फूल अचानक खिलता है तो वह बहुत ख़ूबसूरत होता है। लेकिन यह एक धीमी प्रक्रिया है। फूल ज़रूर खिलेंगे, लेकिन योग में हम फूलों की चिंता नहीं करते। यहाँ तो हम माली की तरह होते हैं। यह काम नीरस-सा लगता है। हम बीज बोते हैं। हमारा काम सिर्फ़ मिट्टी के साथ होता है। हम पौधों के लिए परेशान नहीं होते। हमें फूलों या फलों की चिंता नहीं होती। हमारे हाथ हमेशा मिट्टी में ही रहते हैं। हम बागवानी से एक सिस्टम तैयार करते हैं। आप फूलों के खिलने से एकविज्ञान नहीं बना सकते, लेकिन आप बागवानी से एक विज्ञान तैयार कर सकते हैं। अगर आप बागवानी अच्छे तरीक़े से करते हैं, तब फूल तो खिलेंगे ही। योग का विज्ञान यही है। यह अब तक की सबसे गहरी समझ है। आप जब इस मार्ग पर आगे बढ़ते हैं तो एक के बाद दूसरी परतें उतरती जाती हैं, यह एक अंतहीन प्रक्रिया है। आप समझ की एक के बाद दूसरी परतें निकालते जाते हैं। मान लीजिए मैं एक लाख पेड़ लगाता हूँ और सिर्फ़ एक ही पेड़ में फूल आते हैं, तो क्या मैं ख़ुद को माली कह सकता हूँ? मैं नहीं भी होता, तो भी एक पेड़ ख़ुद-ब-ख़ुद निकल आता, है न? लेकिन अगर कम से कम पचास हज़ार पेड़ों पर फूल आएँ, तो मैं ख़ुद को माली कह सकता हूँ। बस यही फ़र्क़ है। यह सिस्टम मेरे जाने के बाद भी काम करेगा।'

और फिर भी, कीचड़-सनी उँगलियों वाले माली की नीरस उपमाओं के बावजूद, सद्गुरु जिस आध्यात्मिकता को पेश करते हैं, वह नीरसता से कोसों दूर है। हालाँकि इसमें लगन तो चाहिए ही, लेकिन यह कठोर तपस्या की तरह कम, बल्कि उत्सव की तरह ज़्यादा है। इसमें जीवन को नकारने जैसा कुछ नहीं है। असल में कई बार उनके वर्णन मदिरा-पान के उत्सव जैसे होते हैं। 'मैं सौ फ़ीसदी नशे के पक्ष में हूँ। मैं शराब नहीं पीता, न ही कोई बाहरी नशीली चीज़ लेता हूँ। लेकिन मैंने हर वक़्त, बिना किसी दाम के, नशे में होने का एक अलग तरीक़ा सीख लिया है - इसका न ही कोई हैंगओवर होता है, और साथ ही आप पूरी तरह संतुलित रह सकते हैं। यह

आपके स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा है। क्या पीने का यह बेहतर तरीक़ा नहीं है? इतना ज़बर्दस्त बदलाव है - वाइन (शराब) से डिवाइन (चैतन्य) तक।'

वे फिर कहते हैं, 'आप इस शरीर को इतना सुखद बना सकते हैं कि बस यहाँ बैठे बैठे साँस लेना ही, अभी तक आपने जो कुछ जाना है, उससे लाखों गुना आनन्दमय हो सकता है। साँसें तो चौबीसों घंटे चलती ही रहती हैं। यदि साँस लेना ही इतना सुखद बन जाए, तो आप भला कुछ और क्यों करना चाहेंगे?'

सद्गुरु का नज़रिया हमेशा से अलगाव की बजाय जुड़ाव पर, ख़ुद को समेटकर अपने खोल में बंद कर लेने की बजाय सहभागिता पर ज़ोर देने का रहा है। वे अक्सर कहते हैं, 'अगर आप जीवन के साथ शामिल नहीं हैं, उसके साथ पूरी तरह से जुड़े नहीं हैं तो आप मुर्दा हैं। चुनौती यह है कि जीवन में उलझे बिना इससे जुड़े कैसे रहें? हमारा जीवन सुंदर इसलिए नहीं बनता, क्योंकि हम पूर्ण हैं। हमारा जीवन सुंदर बनता है, क्योंकि हम जो करते हैं, उसे पूरे दिल से करते हैं। जब तक आप जीवन में गहराई से शामिल नहीं होते, आप जीवन की सुंदरता को कभी नहीं जान पाएँगे। अगर यह बारीक सा फ़र्क़ आप को समझ नहीं आता, तो आपको इस जीवन में कष्ट उठाना पड़ेगा।'

*मैं हर चीज़ में बहुत गहराई से शामिल हूँ। लेकिन अगर मुझे सफलता नहीं मिलती है, तो मैं टूट नहीं जाऊँगा। हज़ारों लोगों के साथ मैं बहुत गहराई और उत्साह के साथ शामिल हूँ। अगर आप तकलीफ़ के डर से आज़ाद हैं, तो क्या आप ख़ुद को जीवन में मग्न करने से डरेंगे?*

आध्यात्मिक जीवन की पारंपरिक वर्जनाओं - कामवासना और भोग विलास - को यहाँ किसी नैतिक डर की तरह नहीं लिया जाता। 'सेक्स और पैसा समस्याएँ नहीं हैं। शरीर में सेक्स ठीक है; जेब में पैसे भी ठीक हैं। ये समस्या तभी बनते हैं जब ये आपके दिमाग़ में घुस जाते हैं।' यह सच है कि उन्होंने ईशा में ब्रह्मचारियों और संन्यासियों को दीक्षित किया है, लेकिन

उनके लिए इसका कोई नैतिक औचित्य नहीं है। वे सहजता से कहते हैं, 'ब्रह्मचर्य का मतलब अपनी ऊर्जा को बस इस तरह से संयोजित करना है कि आपकी शांति और आपकी ख़ुशी, सब आपकी अपनी हों। यह अपनी निजी आकांक्षाओं व स्वार्थ को छोड़ने और विवशता से विकल्प की तरफ़ बढ़ने का तरीक़ा है। अगर आप इसे अनिच्छा से करते हैं तो यह पूरी तरह यातना होगी। लेकिन अगर आप इसे अपनी इच्छा से करते हैं, तो यह शानदार हो जाता है। दूसरी ओर, सेलीबेसी (सेक्स न करना) एक गंदा शब्द है, जिसका संबंध शरीर में और उससे कहीं ज़्यादा दिमाग़ में मौजूद एक कुदरती इच्छा को दबाने से है, उसके सिर्फ़ शारीरिक पहलू से है।'

आत्म-बोध की इस पूरी यात्रा में शांति कोई लक्ष्य नहीं, बल्कि संयोगवश मिला एक गौण-प्रभाव है। 'शांति जीवन की चरम उपलब्धि नहीं, बल्कि जीवन की बुनियाद है - यह सभी इंसानों का जन्मसिद्ध अधिकार है।' तर्क बिलकुल सीधा है। सबको ख़ुद में शामिल करने की प्रक्रिया - दुनिया को कोई बाहरी चीज़ न समझकर अपने एक अंश की तरह देखना - अलगाव के बीज को ही नष्ट कर देती है। 'आप जिस चीज़ को भी अपने एक हिस्से की तरह महसूस करते हैं, उसके साथ आपका कोई टकराव नहीं हो सकता।' आनंद भी इसी का एक हिस्सा है। शामिल होने की प्रक्रिया जैसे-जैसे गहरी होती जाती है, हमारा जीवन आनंद की तलाश नहीं, बल्कि आनंद की अभिव्यक्ति बन जाता है। 'आनंद हमेशा एक भीतरी चीज़ रहा है। आपके आनंद का स्रोत आपके भीतर ही है। हालाँकि इस वक़्त यह आपके भीतर है, लेकिन इसका बटन किसी दूसरे के हाथ में है। इसे चालू करने का बटन कहीं और है। यह या तो स्टॉक मार्केट में है, या आपकी पत्नी के हाथ में है, या आपके बच्चों के हाथों में है, या आपके पड़ोसी के हाथ में है। आपने यह बटन सभी को दे रखा है, सिवाय ख़ुद के। कोई ख़ुश है या दुखी, इसकी वजह वे चीज़ें नहीं है जो उसके जीवन में घटित हो रही हैं। या तो आप जानते हैं कि अपने अंदर के वातावरण को कैसे सँभालें या नहीं जानते। बात सिर्फ़ इतनी है।'

अगर शांति और ख़ुशी इस प्रक्रिया के हिस्से मात्र हैं, तो क्या अचेतनता से चेतनता की इंसान की इस पूरी यात्रा का कोई बड़ा मक़सद है? अंत में क्या हासिल होता है? क्या कोई विशाल उद्देश्य, कोई ब्रह्मांडीय योजना, या कोई भव्य योजना है?

ऐसा लगता है कि कुछ भी नहीं। मतलब या मक़सद या नतीजा वह आख़िरी भ्रम है, जिससे उपयोगिता को अहमियत देने वाला हमारा दिमाग़ बुरी तरह चिपका रहता है। लेकिन आख़िर में इसे भी छोड़ना होगा। सद्गुरु कहते हैं, 'चैतन्य व ईश्वर सब कुछ बिना मक़सद के करता है। उद्देश्य पूर्णता मन का भ्रम है। संसार एक ख़ाली पिंजर है, जिसमें आपका मन अनवरत उछल-कूद करता रहता है। अगर आप जीवन का खेल, खेल सकते हैं, सिर्फ़ तभी आप यह चीज़ जान पाते हैं। अगर आप बहुत गंभीर हैं, तो आप उससे चूक जाते हैं जो यहाँ है, और आप उससे भी चूक जाते हैं जो इसके परे है। अगर आप आनंद और जोश से भरपूर हैं, तो आप जीवन के प्रति ग्रहणशील होंगे। अगर आप बेहद गंभीर हैं तो इससे चूक जाएँगे।'

तो पहले के कई दिव्यदर्शियों की तरह, सद्गुरु भी हमें याद दिलाते हैं कि आत्मज्ञान का मतलब कहीं पहुँचना नहीं है, बल्कि इस बात का एहसास होना है कि कहीं जाना नहीं है। इसका मतलब जानकारी इकट्ठा करना नहीं, बल्कि हासिल किए गए ज्ञान को भी भूलना है। उन्होंने एक बार कहा था, 'जो सीमित ज्ञान था, वह असीमित अज्ञान बन गया। यह मेरे लिए काफ़ी शानदार था। अधिकतर लोग आंशिक ज्ञान और आंशिक अज्ञान की अवस्था में हैं। लेकिन आत्मज्ञान एक असीम अज्ञान की अवस्था है। जब आप वाक़ई नहीं जानते, तब आप सृष्टि की सीमाओं से बँधे नहीं होते। तब आपको सृष्टा की आज़ादी मिल जाती है।'

उस 'सीमा रहित अज्ञानता' या आत्मज्ञान के उस पल के बाद क्या बचता है? इसका अनुमान अगर हम अपने सामने मौजूद इंसान (सद्गुरु) को देखकर लगाएँ तो इसका जवाब है : जीवंतता - भरपूर, उन्मुक्त, गरजती हुई जीवंतता। सद्गुरु कहते हैं, 'यह जीवंतता कोई छोटी चीज़ नहीं है। इस धरती पर यह सबसे अद्भुत घटना है।'

जैसा कि एक बार उन्होंने श्रोताओं के एक समूह से ताज्जुब से पूछा, 'जब सृष्टिकर्ता ही आपके भीतर है, तो आप किस बारे में सोच रहे हैं? सृष्टि का स्रोत ही आपके भीतर धड़क रहा है। आप ऐसा क्या सोच रहे हैं जो उससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है?'

9

# 'बॉल गेम' और उसके आगे

## सद्गुरु की योजना

उनका जीवन ज़्यादातर दुनिया की नज़रों के सामने बीता है। ध्यानलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा के बाद पिछले दस वर्षों में सद्गुरु के कार्यक्रम और सत्संग आश्चर्यजनक तरीक़े से बढ़ गए हैं। उनके पासपोर्ट के कई पन्ने तमाम तरह की मुहरों से भरे पड़े हैं। वे दिल्ली के स्वागत-कक्षों और यूरोप के कॉन्फ़्रेंस-हॉलों में अमीर और रसूखदार लोगों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाते हुए दिखाई देते हैं, पर जनसाधारण से जुड़ी उनकी परियोजनाएँ - ग्रामीण उत्थान के कार्य (एक्शन फ़ॉर रूरल रिजुवनेशन) से लेकर स्थानीय लोगों के लिए सामुदायिक स्वास्थ्य सेवाएँ तक - आज भी उनके दिल के क़रीब हैं। तमिलनाडु में अपनी पथप्रदर्शक वृक्षारोपण परियोजना के कारण वे राज्य की प्रतिष्ठित हस्ती बन चुके हैं। इस काम के लिए ईशा फ़ाउंडेशन को राष्ट्रीय पुरस्कार - इंदिरा गाँधी पर्यावरण पुरस्कार - से सम्मानित किया गया। उनके सत्संगों में उमड़ती भीड़ यह संकेत देती है कि वे किसी रॉक-स्टार से कम नहीं हैं।

भीड़ पर वे जो असर छोड़ते हैं, उसे वे ख़ास महत्त्व नहीं देते और हल्के में लेते हैं। कोथगिरी में विस्फोटक ऊर्जा से भरपूर एक सत्संग से लौटते हुए उन्होंने कहा, 'इसमें बहुत उत्तेजित महसूस करने की बात नहीं है। यह तो घर लौटने जैसा है - आप उन लोगों के बीच में हैं, जो आपको उस बात के लिए पहचानते हैं, जो आप वाक़ई हैं। यह किसी पौधे का ख़ुद को उपजाऊ मिट्टी में पाने जैसा है।'

हालाँकि उनके कार्यक्रमों का सिलसिला थकाने वाला है, फिर भी उनके आंतरिक जीवन का गहन व गूढ़ आयाम अब भी सक्रिय है। उन्होंने अक्सर

कहा है कि उन्होंने जितने लोगों को आध्यात्मिक मार्ग पर दीक्षित किया है, उनमें वे लोग ज़्यादा हैं जिनसे वे कभी मिले नहीं हैं, उसके मुक़ाबले, जिनसे वे मिल चुके हैं। इससे समानांतर स्तर पर उनके गहन आध्यात्मिक कार्यों के संपादन का संकेत मिलता है। ध्यानलिंग के बाद कई दूसरी प्राण-प्रतिष्ठाएँ भी हुईं हैं, जिनमें टेनेसी में ईशा केंद्र का महिमा-हॉल और कोयम्बतूर में लिंग-भैरवी शामिल हैं।

*जो असली काम मैं करता हूँ, वह उसमें नहीं है जो मैं कह रहा हूँ या दुनिया भर में जो काम कर रहा हूँ। असली काम उन "अण्डों" में है जिन्हें मैं तैयार कर रहा हूँ। उन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता और वे हमेशा बरकरार रहेंगे।*

योजनाएँ और परियोजनाएँ हर दिन बहुत तेज़ी से बढ़ रही हैं। कोयम्बतूर का ईशा योग केंद्र लगातार निर्माण-कार्य की गतिविधियों से गूँजता रहता है। जिस तीव्रता से वहाँ काम चलता है, उससे आश्रम निवासी और आगंतुक हैरान रह जाते हैं। अपने आसपास विशाल आदियोगी आलयम, स्पंदा हाल, होम स्कूल और आवासीय कमरों की तेज़ी से बढ़ती संख्या की ओर ताज्जुब से नज़र डालते हुए एक संन्यासी कहते हैं, 'कौन यक़ीन कर सकता है कि सिर्फ़ पंद्रह साल पहले, हमने यहाँ अपनी शुरुआत एक छोटी-सी कुटिया और छप्पर की छत वाले मेडिटेशन हॉल से की थी।'

ईशा के लिए सद्‌गुरु की योजनाएँ वाक़ई में क्या हैं? वे इस बारे में शायद ही कभी कोई ब्यौरा देते हैं। लेकिन इसमें किसी को शक नहीं है कि कोई 'मास्टर-प्लान' ज़रूर है, जो अब तक सामने नहीं आया है। वे बड़े रहस्यमय अंदाज़ में कहते हैं, 'हर गुरु योजना बनाता है। गौतम बुद्ध ने बनाई। मैं भी बनाता हूँ। गौतम बुद्ध ऐसे गुरु हैं, जो अपनी शिक्षा का परिणाम अच्छी तरह जानते थे। मैं भी अपनी शिक्षा का परिणाम अच्छी तरह जानता हूँ। मैं बिना सोचे-विचारे कुछ भी नहीं सिखा रहा हूँ। अगर मैं आपको अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं, उन असंभव-सी जटिलताओं, और जिस अत्यधिक सटीकता के साथ मैं इन्हें अंजाम दे रहा हूँ, के बारे

में बताऊँ तो शायद आप मुझे बहुत निर्दयी मानेंगे – या हो सकता है कि आप सोचें कि मैं भगवान बनने की कोशिश कर रहा हूँ! लेकिन हर चीज़ के परिणाम होते हैं, शिक्षा देने के भी। क्योंकि शिक्षा देना भी कर्म है। ख़ासकर जब आप आध्यात्मिक कार्यों में लगे होते हैं, तो इसका परिणाम बड़े पैमाने पर सामने आता है। तो अगले सौ से पाँच सौ वर्षों में आप कौन से नतीजे पैदा करेंगे? यह एक ऐसी चीज़ है जिस पर हर गुरु को ध्यान देना होता है।’

तो फिर वे ईशा के भविष्य का मानचित्र कैसे तय करते हैं? ‘ईशा के मामले में यह प्रक्रिया अगले छह सौ से सात सौ वर्षों तक काफ़ी सक्रिय रूप से चलेगी। उसके बाद यह थोड़ी धीमी गति से जारी रहेगी। लेकिन इसका ऊर्जा वाला पक्ष शाश्वत है, इसे मिटाया नहीं जा सकता। हालाँकि इस वक़्त शिक्षा या उपदेश ही मुख्य दिखता है, पर असल में यह मेरे जीवन का बहुत छोटा-सा हिस्सा है। जो असली काम मैं करता हूँ, वह उसमें नहीं है जो मैं कह रहा हूँ या दुनिया भर में जो काम कर रहा हूँ। असली काम उन “अण्डों” में है जिन्हें मैं तैयार कर रहा हूँ। उन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता और वे हमेशा बरकरार रहेंगे।’ निश्चित रूप से ‘अण्डों’ से उनका मतलब कुछ ख़ास ऊर्जा संभावनाओं से है – उनके अंतर्ज्ञान का सार-तत्व – जिसे, वे कहते हैं, हर गुरु साधकों की भावी पीढ़ी के लिए छोड़ जाता है। यह अदृश्य, किंतु जीवंत और सक्रिय वसीयत ही हर गुरु की असली विरासत होती है।

एक बार उन्होंने कहा कि किसी एक को आध्यात्मिक उत्तराधिकारी बनाकर जाने की उनकी कोई योजना नहीं है। ध्यानलिंग ही मूल गुरु होंगे, और दूसरी ‘आध्यात्मिक संभावनाएँ’ भी उपलब्ध होंगी, जो विभिन्न लोगों द्वारा प्रदान की जाएँगी। यह बात साफ़ है कि नियम-क़ायदे ज़्यादा होंगे, और उनके जीवनकाल के बाद, आश्रम का जीवन ज़्यादा अनुशासित हो जाएगा। ‘फ़िलहाल आश्रम का माहौल सुनियोजित तरीक़े से रचा गया है – जहाँ अस्तव्यस्तता भी होती है और उल्लास भी, जो हर किसी को पर्याप्त भ्रम में रखने के लिए बरकरार रखी जाती है। यहाँ पर इतना भ्रम है कि आप साधना करते रहते हैं और इस सोच-विचार में भी पड़े रहते हैं कि, “क्या यह वाक़ई उपयोगी है?” लेकिन कभी भी भ्रम इतना ज़्यादा नहीं होता कि यहाँ पूरी तरह अव्यवस्था फैल जाए। इस संतुलन को क़ायम रखना

बड़े कमाल की बात है। इसके लिए काफ़ी कोशिश करनी पड़ती है। अगर लोग कुछ ज़्यादा निश्चिंत हो जाएँ, अगर यह संगठन बहुत ज़्यादा व्यवस्थित हो जाए, तो फिर आध्यात्मिक खोज ही नहीं बचेगी, और आश्रम एक कॉर्पोरेशन बन जाएगा। लेकिन साथ ही यह सवाल उठता है कि आप कितनी अव्यवस्था को पचा सकते हैं?' वे मानते हैं कि बदलाव को रोका नहीं जा सकता। वे समझाते हैं कि जब एक गुरु सशरीर मौजूद हो, तो कुछ हद तक लचीलापन संभव है। लेकिन उनके बाद, बड़े पैमाने पर व्यवस्था लाना ज़रूरी होगा।

एक ओर तो सद्‌गुरु ईशा की विस्तार परियोजनाओं को लेकर बच्चों जैसे उत्साहित दिखते हैं, लेकिन फिर भी वे अक्सर इस बात को दोहराते रहते हैं कि एक दूसरे स्तर पर, यह उनके लिए कोई मायने नहीं रखता। 'मैं चाहता हूँ कि हालात बेहतर हों। अगर ज़रूरी अवसर और संसाधन मिलें, तो मेरा मिशन इस धरती की ही प्राण-प्रतिष्ठा करने का होगा। मैं यही काम करना चाहूँगा। किसी भी पुरुष, स्त्री, बच्चे, जानवर, या कीड़े-मकोड़े को ऐसी जगह पर नहीं होना चाहिए, जो प्रतिष्ठित न हो। कोई भी बंजर जगह पर जन्म लेने और मरने का अधिकारी नहीं है। अगर हम पैसे, संसाधन और तकनीक का इंतज़ाम कर सकें तो दुनिया में ग़रीबी, भूख और बीमारी कम करने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। एक इंसान के तौर पर, मैं चीज़ों को बेहतर बनाने के काम में लगा हूँ और इसके लिए कोशिश करने और अपना जीवन दाँव पर लगाने को तैयार हूँ। लेकिन एक गुरु के तौर पर, मुझे इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। अगर आप कल ही खेल ख़त्म करना चाहते हैं, तो मैं इसके लिए तैयार हूँ। अगर यह कारगर होता है तो ठीक है। यदि नहीं होता तो भी ठीक है। शायद तब मेरी आँखों में आँसू और होंठों पर हँसी होगी। वैसे भी, अधिकतर समय मैं ऐसे ही रहता हूँ।'

हालाँकि उन्होंने इस बारे में कुछ नहीं कहा है कि वे दुनिया से कब जाएँगे। सद्‌गुरु अक्सर कहते हैं कि उनका इरादा यह सुनिश्चित करने का है कि इसका समय और तारीख़ वे ख़ुद तय करें। 'जब तक मुझे अपने आसपास आध्यात्मिकता की प्यासी आँखें दिखती रहेंगी, मैं यहाँ बना रहूँगा। जैसे ही मुझे वे आँखें दिखनी बंद हो जाएँगी, मैं चला जाऊँगा। मैं अपनी क़ब्र तक चलकर जाऊँगा। किसी को भी मुझे उठाकर वहाँ नहीं ले जाना

पड़ेगा, इसका मैं आपसे वादा करता हूँ। अगर आपको इसमें भरपूर महारत हासिल है, अगर आप सचेतन अवस्था में अपना शरीर छोड़ने में सक्षम हैं, तो आपको तभी जाना चाहिए जब सब कुछ ठीक-ठाक हो। मुझे कोई जल्दी नहीं है। लेकिन मैं भली-चंगी अवस्था में ही जाऊँगा। मैं अपने भीतर काफ़ी शानदार जीवन जीता हूँ, भले ही यह अधिकतर लोगों को दिखता न हो। मेरे मरने का तरीक़ा भी साफ़ तौर पर शानदार होगा - एक हस्ताक्षर की तरह।’

वे कुछ ज़्यादा कहने से इन्कार कर देते हैं। वे सहज भाव से हँसते हुए कहते हैं, ‘लेकिन ऐसा तभी है, जब सभी आकलन सही-सही हों। कुछ और भी हो सकता है - मेरी कार कहीं टकरा सकती है या कुछ और हो सकता है। लेकिन यह भी शानदार होगा, क्योंकि अगर मैं ऐसा करता हूँ, तो मैं इसे काफ़ी तेज़ रफ़्तार से क्रैश करूँगा!!’

उन्होंने घोषणा की है कि अपनी मृत्यु के बाद, अपने शिष्यों के लिए अस्सी वर्षों तक वे अपने सूक्ष्म-शरीर को क़ायम रखेंगे। जब मैं उनसे यह बात समझाने के लिए कहती हूँ तो वे नीची आवाज़ में कहते हैं, ‘जब कोई इंसान चेतना की अवस्था में अपना शरीर छोड़ता है, तो इसका मतलब विसर्जन होता है। तब इंसान का मूलभूत-तत्व भी विसर्जित हो जाता है। लेकिन अगर ज़रूरत हो, तो आप उसे आगे खिसका सकते हैं। जब आप शरीर छोड़ते हैं, तब यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि एक ख़ास तरह का विवेक आप में बचा रह जाए। ऐसे में इंसान की कोई भौतिक मौजूदगी नहीं दिखती, लेकिन तब भी आप आसपास मौजूद होते हैं। अगर आप चाहें, तो आप सत्संग भी आयोजित कर सकते हैं! दीक्षा तब भी जारी रहेगी, सिर्फ़ बोलना बंद हो जाएगा।’

बहरहाल, वे अपनी आँखों में एक चमक के साथ कहते हैं कि इस बात का कोई सबूत नहीं है कि अभी भी वे इस दुनिया में मौजूद हैं। हिमालय के तपोवन में बंगाली माँ नाम की एक बुजुर्ग महिला संत ने एक बार उनकी तसवीर की बारीकी से जाँच करके ज़ोर देकर कहा कि वे मर चुके हैं। जब भौंचक्के रह गए साधकों ने सद्गुरु को यह बात बताई, तो वे सिर्फ़ हँसे और कहा, ‘जहाँ तक अस्तित्व का सवाल है, मेरी गिनती नहीं है। शायद मैंने आप सबको बेवकूफ़ बनाया है, लेकिन यहाँ एक ऐसी महिला है, जिसे मूर्ख नहीं बनाया जा सकता।’ एक और मौक़े पर, जब उन्होंने अपनी कुछ

जाँचें करवाईं तो वैज्ञानिक उनके मस्तिष्क की गामा-किरणों को मापने पर भौंचक्के रह गए। 'उन्होंने मुझे बताया, या तो आप मर चुके हैं या आपका मस्तिष्क मर चुका है। मैंने कहा कि मस्तिष्क का मरना बड़ा अपमानजनक है, इसलिए मैं पहली चीज़ मान सकता हूँ।'

और अपनी मौत के अस्सी साल बाद तक अपने सूक्ष्म-शरीर में बने रहकर वे क्या हासिल करना चाहते हैं? वे संक्षेप में जवाब देते हैं, 'सब कुछ समेटने का काम - उन सभी लोगों का ख़याल रखने के लिए, जो किसी न किसी तरह ईशा से जुड़े हैं और मेरे बाद जीवित रहेंगे। उन सभी लोगों का कल्याण करने के लिए जिन्होंने एक पल के लिए भी मेरे साथ बैठने की ग़लती की है।'

मैंने पूछा, 'और उनके साथ क्या होगा? क्या आप उनकी मुक्ति सुनिश्चित करेंगे?' वे जवाब देते हैं, 'मुक्ति उनको, जो इच्छुक हैं। मरते वक्त ज़्यादातर लोगों की यही इच्छा होती है। बाक़ी सबके लिए, एक और बेहतर जीवन, जिसमें उनका आध्यात्मिक विकास तेज़ी से हो।'

*जब तक मुझे अपने आसपास आध्यात्मिकता की प्यासी आँखें दिखती रहेंगी, मैं यहाँ बना रहूँगा। जैसे ही मुझे वे आँखें दिखनी बंद हो जाएँगी, मैं चला जाऊँगा। मैं अपनी क़ब्र तक चलकर जाऊँगा। किसी को भी मुझे उठाकर वहाँ नहीं ले जाना पड़ेगा, इसका मैं आपसे वादा करता हूँ।*

मुझे आश्चर्य होता है कि क्या वे कभी भौतिक शरीर में लौटने के बारे में सोचेंगे? इस विषय पर समझौते की कोई गुंजाइश नहीं है। 'अब नहीं। मैं यह तीन बार कर चुका। एक बार जब आपको आत्मज्ञान हो जाता है, तो आप कल्पना नहीं कर सकते कि शरीर धारण करने और फिर से जन्म लेने की प्रक्रिया से गुज़रना कितनी बेवकूफ़ी की बात है। भौतिक शरीर में होने का मतलब है कि आपको दुनिया से खेलना होगा। इस 'बॉल गेम' से आप बच नहीं सकते। जैसे ही आप आत्मज्ञानी हो जाते हैं, तो यह खेल बच्चों के साथ खेलने जैसा लगता है। आप इसे या तो विरक्ति से खेलते हैं

या फिर प्रेम से। लेकिन इसमें कोई चुनौती नहीं होती। आप कुछ चीज़ों को एक सीमा के आगे सीमित जगह में कैद नहीं रख सकते। वैसे भी मैं बड़ी आसानी से छलक जाता हूँ। अब फिर कभी नहीं आऊँगा।'

# उपसंहार

हमारी यह बातचीत आश्रम के आस पास सुबह की सैर के समय हुई। वह सुबह मुझे अच्छी तरह याद है।

हमारे चारों ओर फैला जंगल हरियाली के विभिन्न रूपों को बिखेर रहा है : ओस की बूँदों से सजे जल के रंग, जिस पर प्रकाश छाया हुआ है, से लेकर तैल-चित्रकला के मनोहारी चित्रण तक, तोते के पंख जैसे चमकदार हरे से लेकर ज़ेड की तरह रहस्यमय गहरे हरे रंग तक। सुबह की हवा तेज़ और उम्मीदों से भरी है। छाँह में खड़े चौकन्ने पहाड़, जो अब भी बादलों और रात की ठंडी हवा की यादों में लिपटे नज़र आ रहे हैं। ऐसा लगता है कि सूर्योदय का उत्सव देखने के लिए उनकी नींद अभी नहीं खुल पाई है।

लेकिन मेरे सैर के संगी ज़रा भी निद्रालु नहीं हैं। वे इतने जगे हुए हैं, जितना जगा जा सकता है। उनकी बातचीत पैनी व स्पष्ट है, और उनका दिमाग़ विचारों पर झपटता रहता है। वे नीचे उगी घास-फूस के अंदर की गतिविधियों और प्रकाश की छाया के प्रति भी उतने ही सजग हैं, जितने कि अपने कुत्ते की हरकतों और मेरे मन के मौसम में हो रहे छोटे से छोटे बदलाव के प्रति।

मुझे सुबह की यह सैर बहुत अच्छी लगती है। सीखने के आदर्श वातावरण को लेकर मेरे मन में ऐसी ही छवि रही है। मैंने अक्सर अपने मित्र और शिक्षक के साथ मैदानों में और घुमावदार जंगली पगडंडियों पर घूमने की कल्पना की है - उनकी बातें सुनती हुई, सवाल पूछती हुई, और मनन करती हुई। घूमते हुए और चलते-फिरते शिक्षा पाना मेरे लिए बहुत मायने रखता है। मुझे शब्द, हँसी, और तर्क से खेलना पसंद है। लेकिन सबसे बढ़कर, मुझे मालूम है कि मैं सबसे अच्छा तभी सीखती हूँ, जब मैं सहज और शांत होती हूँ, जब मैं किसी वातावरण को आत्मसात कर सकूँ, किसी मौजूदगी में सराबोर हो सकूँ।

हम फिर आश्रम के गेट से अंदर आते हैं। सैर के दौरान हम बार-बार रुकते हैं, जब वे लोगों का अभिनंदन करने के लिए ठहरते हैं और साधकों के समूहों को आशीर्वाद देते हैं। सभी उन्हें आदर और उत्साह से देखते हुए उनके आसपास जमा हो जाते हैं। यह दृश्य मुझे विनम्र बनाने के साथ-साथ डराता भी है। लोगों के भरोसे की तीव्रता को देखकर मैं हैरान रह जाती हूँ। फिर भी, यह मेरे लिए नया नहीं है। मैंने भी कुछ मौक़ों पर उन्हें शायद उतनी ही तीव्रता से देखा है। मुझे ताज्जुब होता है कि वे इसे कैसे सँभालते हैं, कैसे वे उन सभी लोगों की ज़िम्मेदारी के साथ जीते हैं, जिन्होंने अपना जीवन उन्हें समर्पित कर दिया है। हमेशा की तरह, वे जिससे भी बात करते हैं, उस समय पूरी तरह उसके साथ होते हैं, और फिर अगले ही पल, बड़ी सहजता से मुझसे अपनी बातचीत जारी रखते हुए आगे चल देते हैं।

हमारी बातचीत बिना बहस के कभी ख़त्म नहीं होती। मैं उनकी उस बात को लेकर असहज हूँ, जो अख़बारों में छपी। वे कहते हैं कि उनकी बात को ग़लत तरीक़े से पेश किया गया। लेकिन फिर वे आधे घंटे तक उसी ग़लत बात को उचित ठहराते हैं। मेरे ख़याल से यह ज़िद्दीपन उनका अपना अंदाज़ है।

तब शाम में, मैं एक विचित्र ऊर्जा से सराबोर होकर आश्रम से बाहर निकलती हूँ, जैसा कि उनसे मिलने के बाद हमेशा होता है। साथ ही मैं उनके उन विचारों को लेकर धीरे-धीरे बड़बड़ाती रहती हूँ, जिनसे मैं सहमत नहीं हो पाती। फ़्लाइट के दौरान मैं इस बारे में फिर सोचती हूँ। 'यह आदमी मेरा गुरु क्यों है? अपनी तमाम उदारता के बावजूद वे सीधे-सीधे प्रतिक्रिया कर सकते हैं। मैं कई मुद्दों पर उनसे सहमत नहीं होती हूँ। वे रूखे हैं, बेसब्र हैं, और यह ज़िक्र करने की बात नहीं है कि वे असंगत भी हैं। किसी बहस को पूरा करने के लिए भरपूर वक़्त का न होना खीज दिलाने वाला होता है।'

विचारों का चक्र फिर लौट आता है। मुझे अचरज होता है कि क्या आध्यात्मिक राह दिखाने वालों को दुनियादारी के मामलों में इस सीमा तक गोते लगाने चाहिए? मुझे हैरानी होती है कि क्या वे बहुत बड़े आदमी होते जा रहे हैं? ईशा की योजनाएँ बहुत महत्त्वाकांक्षी तो नहीं होती जा रही हैं? मैं सोचती हूँ कि तमाम दूसरे लोगों की तरह, कहीं वे ताक़त और सत्ता हासिल होने से भ्रष्ट होने का ख़तरा तो नहीं उठा रहे हैं? मुझे अचानक उनमें आए

दंभ और ज़िद पर ताज्जुब होता है। मैं सोचती हूँ कि क्या मैं कभी समझौता कर सकूँगी उनके व्यक्तित्व से, या कभी सहज हो पाऊँगी उनकी व्यक्तित्व हीनता के साथ – एक ही समय में सबका होने और किसी का न होने की उनकी क़ाबिलियत को समझ सकूँगी?

मैं अपने शहर के दोस्तों के बारे में सोचती हूँ। मुझे अचरज होता है कि मैं क्या कभी उन्हें एक गुरु की इस विसंगति के बारे में बता पाऊँगी? मुझे उनके विनम्रतापूर्ण उत्सुक चेहरे याद आते हैं, जब मैं सद्‌गुरु की स्पष्टता, उनकी ऊर्जा की प्रचंडता, और उनके पिछले जन्मों की आध्यात्मिक दक्षता के बारे में बातें करती हूँ। मैं कल्पना कर सकती हूँ कि मेरा बार-बार आश्रम जाना उनकी समझ से बाहर है। किसी नए पंथ में मेरे डूब जाने और 'असली दुनिया' और इसके 'असली' मुद्दों को किसी आध्यात्मिक ख़ुशी से बदलने की मेरी ज़रूरत को लेकर मैं उनकी चिंता समझ सकती हूँ। क्या वे कभी समझ पाएँगे कि वह क्या चीज़ है, जो इस इंसान को और इस यात्रा को, मेरे जीवन में इतना महत्त्वपूर्ण बनाती है? क्या मैं पूरी ईमानदारी से कह सकती हूँ कि मैं ख़ुद यह बात समझती हूँ?

मुझे याद है कि पाँच साल पहले मैंने उनके बारे में अपने पहले लेख में क्या लिखा था : 'चलिए मान लेते हैं कि हम योग में उनकी महारत और आत्मज्ञान की उनकी इस पूरी कहानी पर यक़ीन नहीं करते। फिर भी हमारे लिए एक दिलचस्प सौदा बचता है। उनमें मौजूद है – एक ताजगी भरी हाज़िर जवाबी, धार्मिक कट्टरता का अभाव... पैनी बुद्धिमत्ता... आधुनिक शब्दावली, एक ऐसी ध्यान प्रक्रिया की शिक्षा, जिसके लिए किसी धर्म या आस्था की नहीं, बल्कि सिर्फ़ प्रतिबद्ध होकर अभ्यास करने की ज़रूरत है। सद्‌गुरु जग्गी वासुदेव का रंग-ढंग एक ऐसे इंसान का है, जिसने जान लिया है कि समझदारी से जीवन कैसे जिएँ। शायद यही काफ़ी है?'

क्या यह वाक़ई काफ़ी है? अगर बाक़ी सभी चीज़ें ले ली जाएँ और मेरे पास सिर्फ़ अभ्यास बचे, तो क्या यह सचमुच काफ़ी होगा? जब मैं जाने माने गुरुओं की प्रतिष्ठा को धराशायी होते हुए और उनके शिष्यों की भीड़ को दुख, द्वंद्व, और शुतुरमुर्ग की तरह की अवस्था में देखती हूँ, तो ख़ुद से पूछती हूँ कि क्या मैं ऐसे धोखे को सहन कर सकूँगी? मुझे उम्मीद है कि ऐसी चीज़ नहीं होगी। अगर ऐसा होता है, तो मुझे गहरी ठेस लगेगी और वाक़ई

बहुत ज़्यादा पीड़ा होगी। लेकिन वास्तव में मेरा विश्वास है कि इसका जवाब 'हाँ' है। मैं नहीं चाहती कि मेरा भरोसा टूटे, लेकिन इससे मुझे समय-समय पर ज़मीनी तथ्यों का सामना करने में मदद मिलती है। वाक़ई मेरा मानना है कि यह अभ्यास एक बहुत अहम तोहफ़ा है और उसकी बढ़ती गहराई अपने आप में इनाम है। इससे यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या ऐसा तोहफ़ा देने वाला सचमुच कभी मुझे धोखा दे सकता है?

थोड़ी देर के लिए अंतर्द्वंद्व रुक जाता है। मन शांत हो जाता है। मुझे 1997 का मौत जैसा अनुभव याद आता है। मुझे वह दहशत याद है। तरसने और निराशा के वर्ष याद हैं। शुष्क हो जाने के अनुभव याद हैं। मुझे ईश्वर की चुप्पी पर मुट्ठी तानना याद है। सात वर्ष बाद मार्गदर्शन मिला। वे सात वर्ष बहुत लंबे थे और उस मार्गदर्शन का मतलब मेरी कल्पना से कहीं बढ़कर था।

वर्षों पहले तीस की उम्र पार करने के बारे में मैंने एक कविता लिखी थी। उसकी आख़िरी लाइन थी - 'तीस तक तुम जान जाते हो कि तुम दूर चले जाना चाहते हो, कड़वाहट भरे सपनों के तबाह साम्राज्य से, उन विस्तृत और अनाटकीय इलाक़ों की तरफ़, जहाँ आगे हर क़दम एक जोखिम है, और हर क़दम एक आलंबन।'

मुझे एहसास होता है कि सद्‌गुरु यही चीज़ मेरे जीवन में ले आए हैं - जोखिम और आलंबन। उन्होंने यह दोनों चीज़ें एक साथ की हैं, जैसा मैं चाहती थी। अंदरूनी यात्रा की संभावना, जितनी मैंने कल्पना की थी, उससे ज़्यादा रोमांचक लगती है। साथ ही मुझे अपनी जड़ें पहले से ज़्यादा गहरी हो जाने का एहसास है। उन्होंने विरोधाभास को जीवंत बना दिया है।

जब मैं पक्ष और विपक्ष के सारे तर्कों को एक किनारे कर देती हूँ, तो जो मेरे पास बचता है, वह है - भरोसे का एक टुकड़ा। कुछ लोग इसका खंडन करेंगे कि यह भरोसा अनुचित है। लेकिन मैं सोचती हूँ कि यह काफ़ी मज़बूत है - अचूक नहीं, लेकिन वह तर्क से पोषित, और संदेह से सुदृढ़ हुआ है। इसकी अग्नि परीक्षा यह है कि मेरा मानना है कि सद्‌गुरु के साथ इतने वर्षों के संपर्क से उन पर मेरी निर्भरता कम हुई है, न कि बढ़ी है। मैं साफ़ तौर पर देख सकती हूँ कि अब मैं अपने जीवन में पहले से ज़्यादा शामिल होने लगी हूँ। यह चीज़ ईशा के कई संगी साधकों के लिए भी सच

है – सिर्फ़ गहराई और तीव्रता अलग-अलग है। कोई चीज़ है, जो काम कर रही है। इसीलिए चिंता और बाल-की-खाल निकालने के बावजूद भरोसा टिका हुआ है। मैं ख़ुद को बार-बार अचरज में पाती हूँ, जब मुझे एहसास होता है कि शायद उनका इसके सिवा कोई और मक़सद नहीं है, इसके बारे में वे स्पष्ट हैं – मुक्ति की दिशा में लोगों का मार्गदर्शन करने की उनकी प्रतिबद्धता। क्या यह वाक़ई सच हो सकता है? ऐसा लगता तो है। वे एक विचित्र इंसान हैं – सचमुच बड़े विचित्र – पर असल में उनका जीवन सत्य को ही समर्पित है।

मुझे उनसे सहमत होने की ज़रूरत नहीं है, या उनका अनुमोदन करने की ज़रूरत नहीं है, या पसंद करने की भी ज़रूरत नहीं है। लेकिन मेरा यक़ीन है कि जब अंतिम पल आएगा, जब पारगमन का वक़्त आएगा, जब साँस अटक-अटक कर बंद होने को होगी, जब वह दुनिया ढहेगी, जिसे मैं जानती हूँ, तो वे मेरे लिए मौजूद होंगे। मुझे लगता है कि उनके पास कोई और चारा नहीं होगा, जैसा कि सद्गुरुओं के पास नहीं होता। वे हमेशा की तरह भावुकता से रहित होंगे, पर तत्पर, सटीक और निर्णायक होंगे।

मैं यह चीज़ अपने किसी और जानने वाले के लिए नहीं कह सकती। मैं नहीं जानती कि इसके मायने क्या हैं। लेकिन मुझे यक़ीन है कि जब अंत आएगा तो वे वही करेंगे, जो उन्हें करना है। वे उसे करेंगे जिसमें उन्हें महारत हासिल है। जब अंत आएगा, तो सद्गुरु मुझे भवसागर को पार करा देंगे, मुझे यक़ीन है।

अस्तित्व की गुत्थियों को सुलझाने और सत्य की झलक पाने की कोशिश में मनुष्य हमेशा से यात्राएँ करता रहा है। उसकी यात्रा की कहानियाँ युगों पुरानी हैं। कई बार ये यात्राएँ कुछ वर्षों में पूरी हो जाती हैं, तो कई बार कोई यात्रा कई जन्मों तक चलती है।

पढ़िए एक ऐसी ही अनोखी यात्रा की कहानी, एक ऐसे असाधारण मनुष्य की कहानी, जिसने सत्य की खोज में अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया।

एक विद्रोही, जिसे समाज के नियमों का उल्लंघन करने के लिए मौत की सज़ा मिली। राह में आई चुनौतियाँ उसे डिगा नहीं सकीं। उसका संकल्प नहीं घुटा, उसके अरमान नहीं टूटे, उसकी दीवानगी नहीं उतरी। और तीन सौ साल बाद उसी इंसान ने एक ऐसी आध्यात्मिक क्रांति पैदा की, जिसने विश्व को हिला दिया। इस इंसान को आज हम सद्‌गुरु के नाम से जानते हैं।

सद्‌गुरु एक आत्मज्ञानी, युगद्रष्टा और योगी हैं, जिनकी सत्य की खोज उन्हें जीवन और मृत्यु के पार ले गयी। पढ़िए सद्‌गुरु के कई जन्मों की कहानी, इस पुस्तक में।

---

**'मरने के बाद भी जीवन है, सद्‌गुरु इसकी एक जीती-जागती मिसाल हैं।'**
**–दीपक चोपड़ा**

**'प्रभावशाली, अंतर्दृष्टि से पूर्ण और ज़बरदस्त ईमानदारी से भरी पुस्तक।'**
**–प्रह्लाद कक्कड़, विज्ञापन फ़िल्म निर्माता**

**'एक थ्रिलर से कम नहीं। पहला पृष्ठ पढ़ने के बाद मैं इसे छोड़ नहीं सका।'**
**–जेरी पिंटो, लेखक**

**'एक रोचक पुस्तक। अवश्य पढ़ने लायक।'**
**–सतीश पुरोहित, लाइफ़ पॉज़िटिव**

**'बख़ूबी लिखी गई किताब।'**
**–बरखा दत्त**

Hindi translation of *Sadhguru: More Than A Life*

www.manjulindia.com